सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की लम्बी कविताएँ : एक अनुशीलन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच०डी०
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-सार

2008

शोध निर्देशक

डॉ० एस.एन. शर्मा
एम०ए०(अंग्रेजी), एम०ए० (हिन्दी), पी०एच०डी०
रीडर, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

अनुसंधित्सुः

मनोज कुमार शर्मा
बी०एड०,एम०ए०(हिन्दी)

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़ (यू.पी.)

MAULANA AZAD LIBRARY
ACC No T-7200
Aligarh Muslim University, Aligarh

शोधसार

यह शोध प्रबन्ध छः प्रकरणों (अध्यायो) में विभक्त है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी का जीवन जिसमें 'निराला' जी के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व पर विचार किया गया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एक ऐसी बहुमुखी प्रभिता के धनी कवि हैं जिनका व्यक्तित्व एक ही साथ विभिन्न प्रकार के भाव संवेदनों और विभिन्न आयामों में अभिव्यंजित हुआ है कि किसी भी अध्येता और समालोचक से वह एक अद्वितीय धैर्य, तटस्थता और समझदारी की माँग करता है। 'निराला जी' का काव्य इतना प्रखर एवं ओजस्विता को लिए हुए है कि उन पर समग्रता में ही विचार करने का दबाव आलोचकों और शोधकर्ताओं पर रहा है। यही कारण है कि डा० रामविलास शर्मा, डा बच्चन सिंह, डा० दूधनाथ सिंह आदि विद्वानों ने निराला के समग्र काव्य-व्यक्तित्व पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इसके अतिरिक्त भी जो शोध एवं आलोचनात्मक ग्रन्थ निराला जी पर उपलब्ध हैं उनमें निराला काव्य के किसी एक पथ पर गहन विचार विश्लेषण का नितान्त अभाव है।

महाकवि निराला का जन्म बंगाल प्रान्त की महिषादल तदनुसार १३ फरवरी सन् १८९७ को पंडित रामसहाय के घर हुआ। इनके पिता गढ़ाकोला (उत्तर प्रदेश) के रहने वाले थे। 'निराला' जी का बचपन का नाम सुर्जकुमार अर्थात् सूरज जैसी प्रतिभा वाले, था १४ वर्ष की आयु में तुलमऊ के रामदयाल जी की पुत्री मनोहरा देवी से सन् १९१० ई० में इनका विवाह हुआ अक्खड़ स्वभाव होने के कारण परिवारजनों के साथ इनके सम्बन्ध स्नेहपूर्ण नहीं रहे। निराला जी को देशभक्ति के गीत प्रिय थे इसलिए उन्होंने अपने गीतो का आरम्भ देशप्रेम के भावों से ही किया। २२ दिसम्बर १९२३ ई० को 'मतवाला' में 'जूही की कली' प्रकाशित हुई। तब कवि का नाम था सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' । इस कविता का हिन्दी जगत के तरूण वर्ग ने बड़े तहेदिल से स्वागत किया। इसके साथ ही इनके लिए सफलता के द्वार खुलने शुरू हो गए।

अपनी कठोर मेहनत, लगन, कठोर परिश्रम से 'मतवाला' को निरालाजी ने अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। मतवाला की लोकप्रियता के साथ ही निराला जी पर हमले होने लगे।

जगन्नाथ चतुर्वेदी ने निराला के मुक्तछंद की पैरोडी तक लिख दी। वही मुक्त छंद आगे चलकर काव्य-जगत में अनूठी पहचान बन गए।

सन् १९२३ से लेकर सन् १९६९ तक निराला जी के कुल १३ काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। जिसके प्रकाशन क्रम के अनुसार अनामिका (प्रथम संस्करण) सन् १९२३ ई० में, परिमल (सन् १९३० ई० में) गीतिका (सन १९३६ ई० में) अनामिका द्वितीय संस्करण (सन्१९३८ ई० में) तुलसीदास (सन् १९३९ ई० में) कुकुरमुत्ता (सन् १९४२ ई०), अणिमा (सन् १९४३ ई०), बेला (सन् १९४६ ई०) नए पत्ते (सन् १९४६ ई०), अर्चना (सन १९५० ई० में), आराधना (सन् १९५३ ई०) गीतगुंज (सन १९५४ ई० में), मरणोपरान्त आठ वर्ष बाद सान्ध्य काकली (सन १९६९ ई०) में प्रकाशित काव्य संग्रह हैं। उपरोक्त सभी संग्रहों में कुल मिलाकर उनकी प्रकाशित मौलिक कविताओं की संख्या ६८६ ठहरती है। इसके अतिरिक्त १० अनूदित कविताएँ ५ रविन्द्र नाथ ठाकुर और ५ विवेकानन्द की भी हैं जिनमें सात अनामिका में संग्रहित हैं और दो नए पत्ते तथा एक अणिमा में।

माता-पिता से स्नेह की कमी, शीघ्र पत्नी का निधन, पुत्री वियोग, कुछ ऐसे झंझावात निराला जी के जीवन में आते रहे जिन्होंने 'निराला' जी को टूटने पर विवश कर दिया। झंझावातों को झेलते हुए मूल रूप से जनकवि होते हुए भी निराला ने सोष्ठव सम्पन्न प्रवाहमयी, दीर्घसामासिक एवं अंलकृत भाषा का प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि निराला हिन्दी साहित्य जगत में वास्तव में निराले हैं और महाकाव्य के अनुकूल पांडित्यमयी पृष्ठभूमि उनकी पहुँच से बाहर नहीं है।

इस प्रकार निराला जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व उनकी तत्कालीन परिस्थितियों तथा उनकी पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की देन है।

लम्बी कविता अवधारणा एवं स्वरूप शीर्षक से द्वितीय अनुक्रम लिया गया है जिसमें लम्बी कविताओं का रचना विधान, संरचनात्मक तत्त्व, अन्य विधाओं से तुलनात्मक अध्ययन तथा उद्‌भव एवं विकास, बिन्दुओं पर सविस्तार से विचार किया गया है।

प्रत्येक काव्यरूप अपने युग और समाज से प्रभावित होता है। जब भी समाज, परिस्थितियाँ और युगबोध परिवर्तित होते हैं तब उस बदले हुए युगबोध की अभिव्यक्ति के लिए एक नए काव्य-माध्यम की तलाश कवि के लिए जरूरी हो जाती है। साहित्य में लम्बी कविता की अवधारणा आधुनिक युग की चेतना के परिणाम स्वरूप अवतरित हुई। यह पूर्णतः सत्य है कि आधुनिक जीवन की संश्लिष्ट एवं जटिल जीवनानुभूतियों को व्यक्त करने के लिए परम्परागत प्रबन्धात्मक रूप-विधानों की सार्थकता के सामने प्रश्न चिह्न लग गया। साहित्य में अब ऐसे अभिव्यक्ति माध्यम की आवश्यकता हुई जो नई संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सफल हो परम्परा के रूप में चली आ रही रूढ़ियों से पूर्णतः मुक्त हो और जो आधुनिक जटिल संवेदनाओं द्वारा प्रभावित हो। लम्बी कविता इसी अभावपूर्ण स्थिति के प्रयास के परिणाम स्वरूप अस्तित्व में आई। किसी प्रचलित रूप विधान का अप्रासंगिक हो जाना वस्तुतः रचना की नव्य-नव्यतर प्रक्रियाओं का उत्स होता है।

प्रस्तुत अध्याय में लम्बी कविता के संदर्भ में विभिन्न विधान एवं परिभाषाओं के साथ-साथ, लम्बी कविता का रचना विधान एवं संरचनात्मक तत्त्व पर भी विस्तार से विवेचन किया गया है। लम्बी कविता के रचना विधान के संदर्भ में कई प्रकार की परस्पर विरोधी मान्यताएँ प्रचलित हैं, जैसे क्या कविता का लंबाययान होना लम्बी कविता के लिए पर्याप्त है ? केवल लंबाई में फैली हुई और प्रदीर्घ दिखने वाली कविता प्रगीत भी हो सकती है।

लम्बी कविता के रचना विधान में कुछ अनिवार्य तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है ये तत्त्व ही परस्पर मिलकर लम्बी कविता का स्वरूप तैयार करते हैं। लम्बी कविता के रचना विधान के प्रमुख तत्त्व निम्न हैं-

१. अन्विति

२. नाटकीयता

३. प्रदीर्घता

४. विचार तत्त्व

५. सृजनात्मक तनाव

६. अन्तहीन अन्त

आगे इसमें महाकाव्य व लम्बी कविता में अन्तर, खण्डकाव्य और लम्बी कविता में अन्तर, प्रगीत और लम्बी कविता में अन्तर लम्बी कविता और छोटी कविता में अन्तर तथा साथ ही साथ अध्याय में हिन्दी में लम्बी कविता के उदभव और विकास विषय पर भी प्रकाश डाला गया है। हिन्दी में लम्बी कविता के इतिहास की शुरूआत कब से मानी जाए ? क्लासिकल रचना-विधान की मुक्त होने की छटपटाहट को कब से रेंखाकिंत किया जाए ? क्या सुमित्रानन्दन पन्त की कविता 'परिवर्तन' (कविता संग्रह 'पल्लव' १९२३) से, जयशंकर प्रसाद की कविता 'प्रलय की छाया' (कविता-संग्रह 'लहर' १९३३) से, अथवा सूर्यकान्त त्रिपाठी की कविता 'राम की शक्ति पूज्य (कविता संग्रह 'अनामिका' १९३७) से, 'परिवर्तन' 'प्रलय की छाया' 'राम की शक्ति पूजा', उस दौर की कविताएँ हैं जब प्रबंधात्मक रचना-विधान को विशेष सम्मान प्राप्त था और उसके महत्त्व तथा प्रासंगिकता के बारे में किसी को संदेह नहीं था।

प्रस्तुत शोध का तृतीय अध्याय लम्बी कविता का रचना विधान और निराला की लम्बी कविताएँ इस शोध ग्रन्थ का केन्द्र बिन्दु रहा है। जिसमें निराला जी की चार लम्बी कविताओं का लम्बी कविता के रचना विधान के आधार पर विवेचनाा एवं विश्लेषण किया गया है। 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'सरोज स्मृति' चारों लम्बी कविताएँ कथ्य एवं मूल्य चेतना की दृष्टि से, रचना विधान की दृष्टि से और कवि की मौलिक दृष्टि से विशिष्ट स्थान की अधिकारी हैं।

'राम की शक्ति पूजा' -१९३६ ई० सही अर्थों में निराला जी की प्रतिनिधि काव्य रचना कही जा सकती है। 'राम की शक्ति पूजा' में वर्णित राम-रावण की लड़ाई युद्ध के मैदान में तो होती ही है साथ ही साथ कवि के मन में भी यह लडाई छिड़ी हुई है। इस दृष्टि से राम अर्थात निराला' सात्विक दृष्टि के प्रतीक हैं और रावण असत्य और तामसिक वृत्ति का प्रतीक है। सन् १९३८ में प्रकाशित निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना लम्बी कविता 'तुलसीदास' प्रकाशित हुई। 'राम की शक्ति पूजा' की तरह तुलसीदास भी आख्यानक काव्य

है इसमें १०० बंधों में ६०० पक्तियाँ हैं। इसमें भी निराला जी ने महाकाव्योचित औदात्य और गाम्भीर्यता को लाने का प्रसास किया है। आत्ममन्थन पर केन्द्रित रचना 'तुलसीदास' लम्बी कविता के रचना विधान के आधार पर एक श्रेष्ठ रचना है। सन् १९४२ में प्रकाशित 'कुकुरमुत्ता' निराला जी की हास्य व्यंग्य प्रधान एक ऐसी लम्बी कविता है, जो आज तक हिन्दी आलोचना को चुनौती देती आ रही है। इसमें निराला जी की यथार्थवादी प्रवृत्ति, व्यंग्य वृत्ति, नई प्रगतिशील सामाजिक चेतना की परिचायक है। लम्बी कविता के रचना विधान के आधार पर 'कुकुरमुत्ता' भी एक अद्वितीय और सटीक उदाहरण है। 'सरोज स्मृति' का प्रणयन निराला ने १९३५ ई० में अपनी पुत्री सरोज के असामयिक निधन से विषादग्रस्त होकर किया है। यह हिन्दी साहित्य की एकमात्र वैयक्तिक विलापिका है। जिसमें एक पिता धनाभाव के कारण अपनी पुत्री का उचित उपचार न करा सकने में असमर्थ, पुत्री को काल कवलित होते देखता है। 'सरोज स्मृति' विलापिका होने के साथ-साथ निराला की आत्मगाथा भी है। अन्विति, प्रदीर्घता, नाटकीयता, सृजनात्मक तनाव आदि रचना विधान के तत्वों के आधार पर 'निराला' जी की लम्बी कविताएँ हिन्दी काव्य जगत में अनूठा स्थान रखती हैं।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में निराला की लम्बी कविताओं में संवेदना के विविध आयाम विषय पर विवेचना की गई है। जिसमें निराला जी की लम्बी कविताओं में प्रकृति, राष्ट्रीयता, मानवता, लोकचेतना, भक्ति, दर्शन और अध्यात्म जैसे बिन्दुओं को उजागर किया गया है। प्रकृति और मानव के अन्योन्याश्रित संबंध को उजागार करते हुए निराला जी का प्रकृति प्रेम उनके अन्तस में पल रहे देशप्रेम के भाव, निराला की भक्ति और उनका वैयक्तिक दर्शन तथा अध्यात्म उनकी लम्बी कविताओं में दृष्टिगोचर होता है। उनकी लम्बी कविताओं में आध्यात्मिक चिंतन के दृष्टिकोण से 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' में अद्वैतवादी चिंतन दृष्टिगोचर हुआ है। 'कुकुरमुत्ता' और 'सरोज स्मृति लोक चेतना को जाग्रत करने वाली समाज को दिशा देने वाली और अध्यात्म के धरातल पर आधि-भौतिक रचना ठहरती हैं। शोध प्रबन्ध का पॉचवा अध्याय 'निराला' की लम्बी कविताओं में कला संयोजना को उभारता है। यहाँ निराला जी की लम्बी कविताओं में शिल्प विधान पर विचार करने से पहले 'शिल्प' और उसके स्वरूप पर विचार कर लेना प्रासंगिक समझा गया है।

साधारण अर्थ में चित्रकला अथवा मूर्तिकला के तराशने वाले को शिल्पकार कहते हैं साहित्य के क्षेत्र में इस कार्य को शैली के नाम से अभिहित किया जाता है साहित्य में शैली ही एक ऐसा माध्यम है जिसके बिना कोई भी लेखक या कवि अपने विचारों को अभिव्यक्त नहीं कर सकता। जिस लेखक या कवि की शैली जितनी अधिक आकर्षक प्रभावशाली एवं हृदयावर्जक होगी, उसकी रचना का प्रभाव भी पाठक वर्ग पर उतना ही अधिक होगा।

हिन्दी काव्य भारती के कण्ठ में मुक्त छंद में सृजित लम्बी कविताओं का प्रशस्त निर्मल हार पहनाने वाले अमर कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का आवाहन उनके प्रगतिवादी एवं क्रान्तिशील, शिल्पी व्यक्तित्व का मोहक परिचय देता है। छायावादी युग में लम्बी कविताओं का सर्जन कवि का आत्मविश्वास उसकी क्रान्तिदर्शिता और शब्द सामर्थ्य के साथ काव्यशिल्प पर अनूठी पकड़, निराला जी को अन्य कवियों से अलग स्थान प्रदान करती है। इस अध्याय में शिल्प के उपादान तत्त्व प्रतीकात्मकता, बिम्ब-विधान, अलंकार-विधान, भाषा आदि तत्त्वों को 'निराला' जी लम्बी कविताओं में से उजागार किया गया है।

निराला ने युग निर्माण की प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। केवल भाषा ही नहीं, निराला ने युग को चेतना, सामर्थ्य तथा गुणात्मक रूप से नूतन परिवेश प्रदान किया है। निराला का महत्व उनके युग में जितना विवेच्य नहीं उतना बदलते संदर्भ में है। किसी भी रचनाकार को केवल उसकी रचनाओं की संख्या और आकार के आधार पर मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। भाषा तथा विचारों की मौलिकता या एक भी पंक्ति यदि नूतन अर्थ और गुणात्मकता प्रदान करने की क्षमता रखती है तो वही रचनाकार की अमरता के लिए पर्याप्त होती है।

शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय में निराला जी की लम्बी कविताओं का अन्य छायावादी लम्बी कविताओं से साम्य तथा वैवम्य विषय को उजागार किया गया है। अन्य छायावादी लम्बी कविताओं में पन्तजी की 'परिवर्तन' और प्रसाद की 'प्रलय की छाया' प्रमुख रूप से द्रष्टव्य हैं। निराला जी की लम्बी कविताएँ अधिकतर सांस्कृतिक वस्तु विषय और तथ्य प्रस्तुत करती है। अक्षय प्रतिभा के धनी निराला की सांस्कृतिक चेतना अनेक

वस्तुभूमियों में अभिनव शिल्पसज्जा के साथ अभिव्यक्ति पाती रही है। 'परिवर्तन' कविता जीवन की उस वास्तविकता का प्रगीत है जो निष्ठुर है जिसका ताण्डव नर्तन विश्व का करूण-विवर्तन है। 'परिवर्तन' यथार्थ, वैचित्र्यपूर्ण, ओजययी कविता न केवल जीवन की कठोरतम और कटुतम अनुभवों की व्यापक दृष्टि की साक्षी है, प्रत्युत वह प्रबुद्ध मानस की सम्यक संतुलित मनः स्थिति का भी बिंब है। 'राम की शक्ति पूजा' की तरह 'परिवर्तन' की विशेषता मात्र वाणी का ओज ओर उसका उन्मुक्त विलास ही नहीं है बल्कि वेदना की वह करूणतम अनुभूति है जिसने आदि कवि बाल्मीकि को भी मुखर कर दिया था।

'प्रसाद' जी की लम्बी कविता 'प्रलय की छाया' भाव एवं कल्प दोनों दृष्टियों से उत्तम रचना है। यहाँ प्रसाद जी ने इतिहास की मूल घटनाओं में परिवर्तन न करते हुए रानी कमला के हृदय के अन्तर्द्वन्द्व को काफी तटस्थता से अंकित किया है। 'प्रलय की छाया' में लय का विधान पूरी कविता के नए-नए अर्थों को झलका देने में समर्थ है।

निराला की लम्बी कविताओं के समकक्ष अन्य छायावादी लम्बी कविताओं में दो बातें अपेक्षित साम्य रूप में जान पड़ती हैं। पहली बात यह है कि इन लम्बी कविताओं के विचार और संवेग, विवरण और बिम्ब का संतुलन बना हुआ है। ये छायावादी लम्बी कविताएँ बिम्बों, विचारों और विवरणों को प्रस्तुत ही नही करती बल्कि उन्हें परस्पर सम्बद्ध भी करती हैं, उनमें संतुलन साधती हैं और उसे एक साथ अनेक अर्थों आशयों से समृद्ध करती हैं। यही वजह है कि लम्बी कविता केवल बिम्बधर्मी नहीं होती, न ही केवल भावधर्मी। लम्बी कविता में भाव, विचार, विम्ब और विवरण एक दूसरे से अलग-थलग नहीं होते उनमें गहरा अन्तर्सम्बन्ध रहता है जो हमें इन छायावादी लम्बी कविताओं में देखने को मिलता है। हम देखते हैं कि 'परिवर्तन', 'प्रलय की छाया', कुकरमुत्ता', 'राम की शक्ति पूजा', लम्बी कविताओं में सामाजिक यथार्थ को ग्रहण करने की विशेष प्रवृत्ति प्रबल है। केन्द्रीय स्थितियों, समस्यओं और पात्रों को इन कविताओं में इस ढंग से अभिव्यक्त किया गया है कि उनके माध्यम से मानवीय और सामाजिक सरोकर के बिन्दु उभरकर सामने आये हैं।

छायावादी लम्बी कविताओं में वैषम्य की दृष्टि से पंतजी की 'परिवर्तन' लम्बी कविता में दो बातें स्वीकार की जा सकती हैं, कि एक आत्मगत संवेदना-प्रेम, विरह, अवसाद का चित्रण करने वाला दूसरा परिवर्तन के विराट बिम्ब को प्रस्तुत करने वाला। 'परिवर्तन' कविताओं में आत्मगत संदर्भ वृहत्तर संदर्भ की ओर संकेत तो करता है, पर संदर्भ में घुलता और रूपान्तरित होता नहीं दिखता। आत्मगत अनुभूति परिवर्तन के विराट बिम्ब और उसकी सक्रिय सत्ता से चेतना के धरातल पर बेशक जुड़ी हुई हो, इसकी संवेदनात्मक और वैचारिक भूमिका में साझीदार नहीं है। अनुभूति और चिन्तन के इस अन्तराल से कविता में शिथिलता आई है जिसे इस कविता के रचना विधान में स्पष्टतः देखा जा सकता है, लगता है जैसे यह एक कविता न होकर अलग-अलग कविताओं का समूह है।

'प्रलय की छाया' 'परिवर्तन' और 'राम की शक्ति पूजा' उस दौर की लम्बी कविताएं हैं जब प्रबन्धात्मक रचना विधान को विशेष सम्मान प्राप्त था और उसके महत्व तथा प्रासंगिकता के बारे में किसी को सन्देह नहीं था। ये तीनों लम्बी कविताएँ उन कवियों द्वारा, रचित हैं जो छायावादी कविता के शीर्षस्थ कवि हैं। इन कविताओं की रचना के दौरान ये कवि, निश्चय ही अपने रचनात्मक अभ्यासों और रचनाशील मानसिकता से जुझे होंगे और उन्हें अपने अभ्यस्त प्रगीतात्मक रूप विधान की सीमाओं से बाहर आने या ऊपर उठने के लिए रचनात्मक तौर पर संघर्षरत होना पड़ा होगा।

इस प्रकार छायावादी लम्बी कविताओं का आधोपान्त अध्ययन करने के बाद कहा जा सकता है कि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' अपनी प्रतिनिधिक लम्बी कविताओं में लम्बी कविताओं के रचना विधान के सशक्त प्रतिमान प्रस्तुत करते रहे हैं। 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा', 'कुकुरमुत्ता' एवं 'सरोज स्मृति' उनके इस वैशिष्ट्य का उज्ज्वलतम निदर्शन है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की लम्बी कविताएँ : एक अनुशीलन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच०डी०
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2008

शोध निर्देशक

डॉ० एस.एन. शर्मा
एम०ए०(अंग्रेजी), एम०ए० (हिन्दी), पी०एच०डी०
रीडर, हिन्दी विभाग
अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ

अनुसंधित्सु:

मनोज कुमार शर्मा
बी०एड०, एम०ए०(हिन्दी)

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़ (यू.पी.)

DEPARTMENT OF HINDI
FACULTY OF ARTS
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY, ALIGARH-202 002

CHAIRMAN

Telex : 564-230 AMU IN
Phones: Off. 2700920 } Ext.
2700921 } 1460
2700922 } 1461
Res. (0571) 2740041

This is to certify that **Mr. Manoj Kumar Sharma**, D.O.A. 28.10.2003, Research Scholar in Hindi has submitted his Ph.D. thesis on January 29, 2008 on the topic, **"Suryakant Tripathi 'Nirala' Ki Lambi Kavitayen : Ek Anushilan".**

He was regular for two years from the date of admission in department of Hindi and has completed his Ph.D. thesis under the supervision of Dr. S.N. Sharma (Reader), Department of Hindi, A.M.U. Aligarh.

(Prof. P.K. Saxena)
Chairman

DEPARTMENT OF HINDI
FACULTY OF ARTS
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY, ALIGARH – 202 002

Telex : 564-230 AMU IN
Phones: Off. 2700920 } Ext.
2700921 } 1460
2700922 } 146
Res. (0562) 2530134

DR. S.N. SHARMA
Reader

Certificate

It is hereby certified that the thesis entitled **"Suryakant Tripathi 'Nirala' Ki Lambi Kavitayen : Ek Anushilan"** submitted by **Mr. Manoj Kumar Sharma** for the award of Ph.D. degree in Hindi, is an original research work. It is the result of the scholar's own efforts and it has been completed under my supervision.

He has fulfilled all the conditions laid down in the ordinance in this regard.

I wish him all success.

(Dr. S.N. Sharma)
Supervisor

समर्पण

जिनकी प्रेरणा व आशीर्वाद मुझे
निरन्तर कार्य करने को प्रोत्साहित
करते रहे हैं,
पूजनीय माता–पिता
व
मित्रता की गहराई समझने वाले
मित्रों
को
सादर समर्पित

आत्मनिवेदन एवं आभार प्रदर्शन

मेरा प्रारम्भ से ही झुकाव हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति विशेष रूप से रहा है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल विशेष रूप से छायावादी कविता मुझे प्रिय रही है। स्नातकोत्तर कक्षा में अध्ययन के दौरान मुझे विशेष अध्ययन के रूप में 'निराला' पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। यों तो निराला का पद्य, उपन्यास, निबन्ध, रेखाचित्र सभी कुछ पाठ्यक्रम में था किन्तु मुझे विशेष रूप से 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति', 'तुलसीदास' और 'कुकुरमुत्ता', 'गीतिका', 'बादल-राग' आदि ने विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित किया। अध्यापन के दौरान निराला के काव्यरूपों की चर्चा करते समय निराला काव्य को पढ़ाने वाले डा० एस०एन० शर्मा ने, उनकी लम्बी कविताओं और विलापिका आदि का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि यद्यपि निराला ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा फिर भी वे अपनी इन लम्बी कविताओं के कारण महाकवि हैं। 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' में महाकाव्य के वे सभी तत्त्व विद्यमान हैं जो एक महाकाव्य में अपेक्षित होते हैं और फिर इन कविताओं के उदाहारणों के द्वारा हमें आश्वस्त किया। तभी से मेरे मन में निराला की लम्बी कविताओं को लेकर एक विशेष अनुराग जाग्रत हुआ। स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद और अन्यत्र भटकने के बाद मुझे हिन्दी में शोध कार्य का अवसर मिला और डा० एस०एन० शर्मा ने मुझे सहज ही अपने निर्देशन में लेने की स्वीकृति प्रदान की। मेरी रूचि और अनुराग को दृष्टिगत करते हुए मुझे गुरूवर ने 'निराला की लम्बी कविताएँ - एक अनुशीलन' विषय सुनिश्चित किया। मैनें प्रसन्न मन से विषय की रूपरेखा शोध समिति के समक्ष प्रस्तुत की जो सौभाग्य से स्वीकृत हुई और इस प्रकार में प्रस्तुत विषय का शोधार्थी बना।

प्रस्तुत विषय पर शोध प्रबन्ध को छः अध्यायों में विभक्त करके लिखा है। इसके प्रथम अध्याय में निराला जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विचार किया गया है। इसमें निराला जी का काव्य संसार और उनके ओजस्विता से पूर्ण व्यक्तित्व पर गहन दृष्टि डाली गयी है।

द्वितीय अध्याय में 'लम्बी कविता अवधारणा एवं स्वरूप' शीर्षक से मूल्यांकन किया गया है। इसमें लम्बी कविताओं का रचना विधान, संरचनात्मक तत्त्व अन्य विधाओं से तुलनात्मक अध्ययन तथा लम्बी कविताओं का उद्‌भव एवं विकास विषय पर सविस्तार विचार किया गया है।

प्रस्तुत शोध का तृतीय अध्याय 'लम्बी कविता कथ्य विश्लेषण और लम्बी कविता का रचना विधान', इस शोध का केन्द्र बिन्दु रहा है। जिसमें निराला जी की चार लम्बी कविताओं का लम्बी कविता के रचना विधान के आधार पर विश्लेषण किया गया है। शोर्ध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में निराला जी की लम्बी कविताओं में संवेदना के विविध आयाम विषय पर विवेचना की गई है जिसमें निराला जी लम्बी कविताओं में प्रकृति, राष्ट्रीयता, मानवता, लोकचेतना, भक्ति, दर्शन और अध्यात्म जैसे बिन्दुओं को उजागार किया गया है शोध प्रबन्ध का पंचम अध्याय निराला जी की लम्बी कविताओं में कला संयोजना को उभरता है।

शोध प्रबन्ध के अन्तिम, षष्ठ अध्याय में निराला जी की लम्बी कविताओं का अन्य छायावादी लम्बी कविताओं से साम्य तथा वैषम्य विषय को उजागर किया गया है। यह अध्याय लम्बी कविताओं के तुलनात्मक अध्ययन का रहा है।

उपलब्धियों के रूप में कहा जा सकता है कि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' श्रेष्ठ साहित्यकार होने के साथ-साथ विशिष्ट रूप से लम्बी कविता के क्षेत्र में सशक्त हस्ताक्षर हैं। लम्बी कविता के रचना विधान के आधार पर निराला जी की लम्बी कविताएँ काव्य जगत में मील का पत्थर साबित होती हैं।

शोध प्रबन्ध पूर्ण होने के शुभ अवसर पर आभार एवं कृतज्ञता ज्ञापन की सुखद अनुभूति हो रही है। परमब्रह्म की कृपा, आत्मचिंतन और परम आदरणीय गुरू डा० एस०एन० शर्मा जी के दिशा निर्देशन में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त होने के कारण मेरी निराशा का तिमिर गुरूजान के प्रखर आलोक से परास्त हो गया। अध्ययन एवं विचार विश्लेषण के क्रम में मुझे मेरे गुरू डा० एस०एन० शर्मा जी से अपूर्व प्ररेणा, प्रोत्साहन एवं

स्नेह प्राप्त हुआ। उन्होंने अपनी व्यस्त दिनचर्या में से बहुमूल्य समय देकर मेरी समस्त कठिनाइयों को दूर किया जिससे प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध व्यवस्थित रूपाकार प्राप्त कर सका।

आभार की इसी कड़ी में मैं प्रो० पी०के० सक्सेना, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता हूँ जिन्होंने न केवल मेरी समस्याओं का निराकरण किया अपितु कार्यालयी किसी भी समस्या के लिए अनवरत कृपादृष्टि बनाए रखी। मैं एक बार पुनः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

स्नातकोत्तर और बी०एड० के अध्ययन के दौरान लगभग तीन वर्षों तक मुझे श्रद्धेय आचार्य कृष्णमुरारि मिश्र भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग और पूजनीय चाची जी डा० मनीषा रानी शर्मा, रीडर हिन्दी वीमेन्स कालेज, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के साथ अन्तेवासी शिष्य रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रोफेसर कृष्ण मुरारि मिश्र जी के सानिध्य में मेरी अन्तः निहित शाक्तियों का विकास हुआ और मेरी चिन्तन एवं दर्शन क्षमता भी विकसित हुई। उनका अन्तेवासी शिष्य होना मेरे लिए गौरव की बात है।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के सभी गुरूजनों के प्रति मै अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनका स्नेह मुझे सहज ही मिलता रहा है। गुरूओं की आत्मीयतापूर्ण निकटता और निरन्तर अध्ययन की ओर उन्मुख करते रहने की प्रेरणा मुझे शिथिल एवं दिग्भ्रमित होने से बचाती रही। उनकी दृष्टि की व्यापकता ने मेरे लेखन कार्य को गतिशील बनाया। डा० एस०एन० शर्मा जी का आभार शब्दों में व्यक्त कर पाना मेरे सामर्थ्य से परे है जिनका पितातुल्य प्रेम मुझे विषमताओं से जूझने का नित्यनवीन आत्म विश्वास देता रहा। इस औपचारिक बिन्दु पर मैं मौन रहूँ यही सबसे बड़ा वक्तव्य है।

इस शोध अवधि में एक शक्ति मेरा मार्ग प्रशस्त करती रही है। उनके विराट अनुभव एवं साधना ने मुझे कठिनाइयों से उबारते हुए इस स्थिति के योग्य बनाया है कि मैं यह कार्य पूरा कर सका उन्हीं सत्य, श्रद्धा भक्ति एवं कर्मठता के प्रतीक पूज्य माताजी-पिताजी को मेरा शत्-शत् नमन्।

कहा जाता है कि दुनिया में हमारे सभी रिश्ते परमपिता परमेश्वर बनाकर भेजता है, परन्तु केवल एक रिश्ता ऐसा है जिसे हम स्वयं स्वेच्छा से बौद्धिक स्तर पर (कसौटी पर कसकर) जाँच परखकर बनाते हैं, वह रिश्ता होता है दोस्ती का, मित्र ईश्वर का दिया हुआ एक ऐसा उपहार होता है जिसके बिना जीवन अधूरा है और ऐसे अवसर पर उन्हें भूलना बहुत बड़ी भूल होगी। मैं दिल की गहराईयों से आभारी हूँ उन सभी मित्रों का जो मित्रता की परिभाषा को समझते हैं और उसका अनुसरण करते हैं। जिनके अपार सहयोग और प्रेरक क्षमता ने कदम-कदम पर मेरा साथ दिया है। इस शोध कार्य के दौरान जिन जिन विद्धानों, मित्रों आदि का मुझे आशीर्वाद और सहयोग मिला है उन सबके प्रति मेरा हार्दिक नमस्कार।।

मैं कृतज्ञ हूँ कार्यालय से सम्बद्ध, परवेज बाजी, जाने आलम भाई, सलीम भाई, शकील भाई, अब्दुल बहाब भाई, राजमीलाल भाई, अहमद भाई के प्रति, जिन्होने जो भी कार्य जिसके लिए हुआ उसमें पूरी-पूरी सहायता एवं सहयोग दिया तथा हिन्दी के सेमिनार प्रभारी मुवश्शिर भाई के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होनें जब जिस किताब की आवश्यकता पड़ी उपलब्ध करा दी।

अंतस की गहराइयों से मैं आभारी हूँ अपनी गुरूमाता डा० बीना शर्मा (रीडर) केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा का जिन्होंने दूरभाष से समय-समय पर मेरी कुञ्झटिकाओं का निराकरण का समाधान करके मुझे शब्दाशीश, स्नेहाशीष और हृदयाशीषों से आहलादित और आप्लावित किया और उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रस्तुतीकरण निर्दिष्ट टंकण के बिना असम्भव ही होता, अतः नईम भाई और संजय कुमार शर्मा भी मेरे लिए धन्यवादाई हैं, जिन्होंने समय पर शोध प्रबन्ध टंकित करके मेरा असीम सहयोग किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मैंने अपने शोध निर्देशक जी की सहायता से स्वयं तैयार किया है। शोध प्रबन्ध मौलिक है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तैयार करने में दूसरे विद्वानों के कार्य एवं पुस्तकों आदि से जहां सहायता ली गई है, उसका उल्लेख संदर्भ सूची में कर दिया

गया है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ द्वारा शोध छात्रों हेतु निश्चित किये गये सभी नियमों एवं कर्तव्यों का मैंने पालन किया है।

मेरे ज्ञान की सीमा का फलक इतना व्यापक नहीं है कि मैं कोई बड़ा दावा कर सकूँ। विश्वास इतना ही है कि प्रस्तुत अनुसंधानात्मक प्रयास विद्वजन से प्रोत्साहननरक संस्तुति प्राप्त करेगा।

अन्त में मैं उन समस्त जनों के प्रति आभारी हूँ जिनका आभार में व्यक्त न कर सका पर जिनका सहयोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मेरे साथ रहा है।

यथेष्ट ध्यान रखने के बाबजूद यत्र-तत्र जो वर्तनीगत अशुद्धियाँ रह गई हैं, उनके लिए मैं क्षमा याचना के साथ प्रस्तुत प्रबन्ध को परीक्षणार्थ प्रस्तुत करता हूँ।

(मनोज कुमार शर्मा)

विषय सूची

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की लम्बी कविताएँ- एक अनुशीलन

[पृष्ठ संख्या]

अध्याय–1: निराला का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व.....[१-३४]

- निराला का व्यक्तित्त्व
- निराला की कृतियाँ
- संदर्भ सूची

अध्याय–2: लम्बी कविता स्वरूप विश्लेषण एवं अन्य कविताओं से सम्बन्ध.....[३५-६५]

- लम्बी कविता: रचना-विधान एवं संरचनात्मक तत्त्व
- महाकाव्य और लम्बी कविता
- खण्डकाव्य और लम्बी कविता
- प्रगीत और लम्बी कविता
- लम्बी कविता और छोटी कविता
- हिन्दी में लम्बी कविता: उद्‌भव और विकास
- संदर्भ सूची

अध्याय–3: 'निराला' लम्बी कविताओं का कथ्य विश्लेषण और लम्बी कविता का रचना विधान.....[६६-१०७]

- राम की शक्ति पूजा-१९३६
- 'राम की शक्ति पूजा' और लम्बी कविता का रचना विधान
- तुलसीदास
- कुकुरमुत्ता
- सरोज स्मृति
- संदर्भ सूची

अध्याय–4: 'निराला' की लम्बी कविताओं में संवेदना के विविध आयाम.....[१०८-१३७]

- प्रकृति
- राष्ट्रीयता
- मानवता और लोक चेतना
- भक्ति और दर्शन
- अध्यात्म
- संदर्भ सूची

अध्याय–5: 'निराला' की लम्बी कविताओं में कला संयोजना .....[१३८-१८४]

- निराला की लम्बी कविताएँ: शिल्प
- निराला की लम्बी कविताएँ: प्रतीकात्मकता
- निराला की लम्बी कविताएँ: स्वछन्दतावाद
- निराला की लम्बी कविताएँ: अंलकार विधान
- निराला की लम्बी कविताएँ: बिम्ब योजना
- निराला की लम्बी कविताएँ: भाषा और संगीतात्मकता
- संदर्भ सूची

अध्याय–6: 'निराला' की लम्बी कविताओं का अन्य छायावादी लम्बी कविताओं से साम्य तथा वैषम्य .....[१८५-१९२]

संदर्भ ग्रन्थ सूची..... [१९३-१९७]

अध्याय-1

निराला का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

- निराला का व्यक्तित्त्व
- निराला की कृतियाँ

निराला का व्यक्तित्त्व

"निराला का जीवन सतत संघर्षों की अजब कहानी रहा है। हाँ वास्तव में एक ट्रेजडीपूर्ण कहानी के नायक की भाँति। परन्तु वह था जो झुका नहीं टूट गया। उसने वास्तव में जीना सीखा था। वह किसी की झूठी प्रशंसा में न लग पाया और यही कारण रहा कि आत्म प्रशंसा लोभी जगत् ने उसको न अपनाया। उसके लिए इन सबका महत्व न रहा और वह अपने जीवन में सतत् साधना-रत रहा, अभाव उसकों दबा न सके। वह किसी का दास न बन सका।

विश्व कवि निराला का जन्म बंगाल प्रांत की महिषादल तद्नुसार १३ फरवरी सन् १८९७ को पं० रामसहाय के घर हुआ। इनके पिता गढ़ाकोला (उत्तर प्रदेश) के रहने वाले थे। उत्तर प्रदेश प्रान्त के उन्नवा सूबे में गढ़ाकोला, वैसबाड़े का एक छोटा सा गाँव है। अवध प्रदेश वो पश्चिमी भाग को बैसवाड़ा कहते हैं। यहाँ की जनता अपनी भाषा, बोली, संस्कृति, ऐतिहासिक परंपराओं पर बहुत अभिमान करती है। यहाँ के लोग अपनी जीवट और हेकड़ी के लिए प्रसिद्ध हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बैसावाड़े की यात्रा के बाद लिखा था "यहाँ का हर आदमी अपने को भीम और अर्जुन समझता है। यहाँ की भाषा बैसवाड़ी कहलाती है। जो अवधी भाषा का भ्रंश रूप है और ओज तथा पौरूष गुण से सम्पन्न है।[1]

गढ़ाकोला के शिवधारी तिवारी नाम के गरीब ब्राह्मण थे, जिनके चार बेटे थे गयादीन, जोधा, रामसहाय और राम लाली। घटना प्रथम स्वाधीनता संग्राम के कुछ बाद की है। कृषि पर ही निर्भर परिवार के भाईयों में आपसी झगड़ा बढ़ गया। इस घटना से व्यथित एक भाई रामसहाय तिवारी घरबार त्यागकर नौकरी के लिए बंगाल प्रान्त चले गये, वह हष्ट-पुष्ट बलवान, होनहार जवान थे, वहाँ उन्हें बंगाल प्रान्त की पुलिस में नौकरी मिल गई। अंग्रेजों ने इनका स्थानान्तरण महिषादल रियासत में कर दिया। रामसहाय रामभक्त होने के साथ-साथ सीधी-सादे हनुमान भक्त ब्राह्मण थे। नमक हलाली, जीवन के सिद्धान्तवादी होने के कारण वहाँ के राजा ने इन्हें सिपाहियों का जमादार बना दिया।"[2] महिषादल में पं

रामसहाय सम्मानित जीवन बिता रहे थे, लेकिन एक चिन्ता ने इन्हें चिन्ताग्रसित कर लिया था इन्हें उस समय तक सन्तान सुख संभव नहीं हो पाया। पिता की चवालीस वर्ष की उम्र में उनकी चिरअभिलाषा "निराला" के रूप में पूर्ण हुई। यौवनावस्था में इन्होंने अपनी भाभी के सामने नग्न अवस्था में जूते से छछूंदर मारकर वशीकरण सिद्धि प्राप्त की। इनका बचपन का नाम सुर्जकुमार अर्थात सूरज जैसी प्रतिभा वाले, था। इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में अनेक मत हैं - निराला काव्य के विशेषज्ञ तथा उनके प्रिय पात्र डा० रामविलास शर्मा के अनुसार माघ की बसंत पंचमी सम्वत १९९६ बताई गई है।"[३] लेकिन "निराला की साहित्य साधना" को लिखते समय उन्होंने माघ शुक्ला एकादशी संवत १९५५ तद्नुसार २१ फरवरी १८९९ है।[४] इस घोषणा का मुख्य आधार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखा पत्र है। पत्रानुसार इनकी उम्र २२ वर्ष क़द ५ फुट ११ इन्च लम्बा, छाती ३९ इन्च तक चौड़ी, इनके जीवन का लक्ष्य निरे बाल्यकाल से परमपदलाभ। रामकृष्ण परम हंस मठ के संन्यासी की विशेष कृपा दृष्टि। स्वामी प्रेमानंद ने कहा था - तुम्हारा विचार ठीक है। ..... इनके पिता बंगाल प्रान्त के सैनिक अफसर थे।... महाराज महिषादल की भी विशेष कृपा। ... राज्य की गर्वनमैंट रेवेन्यू ३,३६,००० है और वार्षिक आय १२,००,००० थी।[५]

पत्रों के माध्यम से निराला जी महावीर प्रसाद द्विवेदी को प्रभावित करना चाहते थे जिससे कि इनकी रचना महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित पत्रिका "सरस्वती" में छपती रहे। उनके पत्र की बातें अतिरंजित तथा अतिश्याक्तिपूर्ण हैं। पत्र में अपनी वास्तविकता को इन्होंने बढ़ा चढ़ाकर वर्णित किया। यह भी संभव है कि इन्हें अपने चेहरे की कोमलता को या बुद्धि ज्ञान के भंडार को कम उम्र में अधिक ज्ञान के दिखावे के लिए अपनी उम्र लगभग २-३ वर्ष करके लिखी हो। अक्सर देखा गया है कि यौवन में उम्र कम बताने की प्रवृति अधिकांश लोगों में पाई जाती है। स्त्रियाँ भी इसके विपरीत नहीं हैं। हम कह सकते हैं कि अपनत्व स्वाभिमान की भावना से लिखा गया। वह पत्र प्रमाणिक नहीं माना जा सकता है क्योंकि अधिकांशतः लोग दिखावे की प्रवृति के पाये गये हैं। डा० रामविलास जी ने इस पक्ष में दो प्रमाण और दिये - निराला जी ने सबसे पहले अपनी उम्र महावीर प्रसाद द्विवेदी को लिखी "कविता कौमुदी" के संपादक रामनरेश त्रिपाठी को भी लिखी, वही

जन्मतिथि मिश्र बन्धुओं को बताई गई। द्विवेदी जी को लिखी गई उम्र इस तिथि से पुष्ट होती है। इतने प्रमाण यथेष्ट होने चाहिए।"[६] इस तरह निराला जी का जन्म संवत विवादास्पद रहा है। लेकिन स्वयं महाकवि अपनी स्मृति के आधार पर सन १८९६ के आसपास अपना जन्म बताया करते थे पं० राहुल सांकृत्यायन ने जब निराला जी का इण्टरव्यू (मौखिक व्यक्तित्व परीक्षा) लिया तो उन्होंने सन १८९६ ई० में अपना जन्म स्वीकार किया था।[७] कई विचारकों के अनुसार निराला मनगढ़ंत व्यक्तित्ववादी भी रहे। जो भी उन्हें सुनता और सतर्क न रहा तो चकमें में आ जाता था।" उन्होंने स्वंय लिखा कि राजा के भाई गोपालदास उन्हें गोद लेना चाहते थे।[८] निराला के व्यक्तित्व में कल्पनावादी की झलक देखने को मिलती थी निराला जी असत्य बोलकर लोगों का मनोरंजन भी किया करते थे। किसी लोभ या स्वार्थ के लिए उन्हें झूठ का सहारा इष्ट नहीं था। वह ताड़ी का प्रयोग रस लेने के लिए भी कर लिया करते थे। हालांकि निराला जी ने कई स्थानों पर अपनी आयु का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है- "मैंने अपनी कृतियों में अपने जीवन को लिख दिया।"[९]

निराला जी के विवाह के दो वर्ष बाद उनका गौना हुआ, उस समय वे अपने जीवन के सोलह बसंत पार कर चुके थे - "मैंने अपना सोलहवाँ साल पर किया - पं० रामगुलाम ने पिताजी से कहा था - लड़के का कंठ फूट आया है - अब बबुआ नहीं है, गौना कर दो।"[१०] ज्येष्ठ मास में उनका गौना हुआ।[११] गाँव में प्लेग की बीमारियों का बोलबाला था, उनकी पत्नी अधिक दिनों तक ससुराल नहीं रूक सकी थी। फलस्वरूप इनके ससुर अपनी बिटिया को विदा कराके ले गये। निराला जी ने एक बार अपने पिताजी के लिए एक पत्र लिखा - मैं कलकत्ता जा रहा हूँ, लिखने पढ़ने का नुकसान हो रहा है।[१२] वहाँ पहुँच कर इन्होंने अपनी पढ़ाई शुरू की। दसवीं कक्षा में वह असफल रहे, परीक्षाफल ने इन्हें इनके पिता की नजरों में आवारा घोषित कर दिया। पिताजी ने कहा कि अब तुम अपनी मेहरिया संभालो, स्वयं कमाओ-खाओ।[१३]

निराला जी अपनी ससुराल में रहने लगे। कुछ महीनों बाद इनके पिता ही झुके और बेटे-बहू को अपने गाँव ले आये। निराला जी की पत्नी शाकाहारी प्रवृति की थीं और

निराला मांसाहारी प्रवृति वाले थे। सन १९१४ ई० की लड़ाई के समय के आसपास इनकी पत्नी ने अपने मायके में निराला जी के पुत्र को जन्म दिया।[१४] इनके पुत्र का जन्म सन १९१४ में हुआ था। इनके पुत्र जन्म के समय इनकी आयु १७ वर्ष आठ-नौ महीने के आसपास रही होगी। कविपुत्र पं० रामकृष्ण त्रिपाठी का कहना है - "मेरा जन्म निराला के विवाह के तीन वर्ष बाद ११.०९.१९१४ को हुआ था।[१५] फलस्वरूप हम कह सकते हैं कि निराला का जन्म वर्ष १८९७ ई० ही मानना होगा। इनकी पत्नी की मृत्यु के समय इनकी उम्र २२ वर्ष थी।[१६] वास्तव में वे १३.०२.१९१९ ई० को २२ वर्ष के होने पर सन १९१८ ई० के अन्तिम दिनों में इनके २२ वर्ष के होने के प्रमाण थे। सन १९३७ में निराला ने अपनी उम्र ४० वर्ष बताई। १९७७ ई० में काफी चर्चा थी कि निराला अपनी जिन्दगी के ४० बसंत पार कर चुके थे।[१७]

जनवरी १९४७ ई० में निराला जी की स्वर्ण जयंती मनाई गई तब वे ५० वर्ष के थे।[१८] १३ सितंबर सन १९०७ ई० को महिषादल स्कूल में प्रवेश के समय इनकी उम्र १० वर्ष आठ महीने थी।[१९] कई पुष्टियों के बावजूद इनका जन्म वर्ष सन १८९७ ई० ही प्रमाणित होता है। इस संबध में पं० रामकृष्ण त्रिपाठी का साक्ष्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। - "मेरे पिता का जन्म संवत १९५३ विक्रमी, सन १८५६ या १८९७ ई० है। माघ मास की बसंत पंचमी के आसपास की कोई तिथि हो सकती है।[२०] संवत १९५३ का माघ मास १९ जनवरी १८९७ ई० से प्रारंभ होता है। अतः निराला का जन्म वर्ष सन १८९७ मानना तर्क संगत है। लेकिन प्रमाणों के द्वारा दी गई दलीलों पर भी इनकी जन्मतिथि की समस्या आज तक अनसुलझी ही रह गई। इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा कि इनकी पुत्री सरोज देवी ने इनकी जन्म कुण्डली ही जला दी थी। इसलिए इन्होंने बसंत पंचमी का दिन ही निर्धारित कर लिया क्योंकि इस दिन सरस्वती देवी (विद्या की देवी) की पूजा होती है। बालक सुर्जकुमार के बचपन के चन्द दिन ही सुखद रहे, अधिकांश जीवन कष्टप्रद रहा।

मृत्युपर्यन्त दुख के बादल मंडराते रहे। माँ के देहावसान के बाद उन्हें माँ जैसा पिता का प्यार नसीब नहीं हुआ, माँ के देहावसान के समय निराला जी की आयु दो वर्ष सात माह

थी। पं० रामसहाय ने उनकी माँ के अभाव को पूरा करना चाहा मगर सिपाहियों के व्यवहार के कारण निराला के जवीन में मधुरता नहीं आ पाई। शायद यह भी एक कारण निराला के बिगड़ैल स्वभाव का रहा होगा। पिता जो दण्ड सुर्जकुमार को देते, बच्चे निराला को वह अन्याय लगता। आठ वर्ष की आयु में सुर्जकुमार पिता के साथ अपने गाँव गढ़ाकोला गये वहाँ इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। कुछ दिन गाँव में रहने के बाद निराला पुनः महिषादल आ गये। १३ सितंबर १९०७ ई० को महिषादल के स्कूल में तीसरी कक्षा में उनका नाम लिखा गया। पाठ्य पुस्तकों से उन्हें लगाव कम रहा परन्तु इन्द्रजाल की पोथी पढ़कर मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन के बारे में वे बहुत कुछ जान गये थे।[२१] अधिकांश औरतें इनकी आदत से आतंकित रहती थीं। इनका मन खेलकूद, तैराना, फुटबाल आदि खेल में लगा रहता था। तुलमऊ के रामदयाल जी की पुत्री मनोहरा देवी से उनका विवाह १४ वर्ष की आयु में सन १९१० ई० में हुआ।[२२] हालांकि किसी भी संस्मरण में लेखक ने भी इनके विवाह की सही एवं सटीक पुष्टि नहीं की।

विवाह के बाद पुनः विद्यार्थी जीवन में आ गये फिर भी उनका मन पढ़ाई में नहीं लगा अन्ततः विद्यार्थी जीवन छोड़कर उन्होंने पुनः ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश किया। अक्खड़ स्वभाव होने के कारण मनोहरा देवी इनका प्यार न पा सकीं हालांकि वह पत्नी से पूर्ण रूपेण संतुष्ट थे। इनके ग्रहस्थ जीवन की झलक "सुकुल बीवी" कहानी में मिलती है। - एक बार वे जमींदार की बारात में जा रहे थे, "एकान्त में पत्नी जी मिली, बड़ी तत्परता से बोली - वहाँ नाच देखकर भूल न जाईएगा। 'राम भजो' मैंने कहा - "क्वसूर्यप्रभवोवंश, क्वचाल्पविषयामतिः।" मैं इसका मतलब भी समझूं? - मैंने कहा - कहाँ तुम्हारी बांस सी कोमल देह से सूरज का प्रकाश, कहाँ वह ज़हर से भरी मोटी रण्डी? 'चलो कह कर वह गर्व-गुरू गमन से काम को चल दीं"[२३] वर्ष १९१४ ई० तथा १९१७ ई० में एक पुत्र तथा पुत्री को जन्म देने के बाद सन १९१८ ई० को महामारी के प्रकोप में इनकी धर्मपत्नी श्रीमती मनोहरा देवी का देहावसान हो गया। "पत्नी की मृत्यु से इस विश्वकवि के दिल पर गहरी ठेस लगी, उस समय निराला की उम्र मात्र २२ वर्ष थी। मानो क्रूर झंझावातों ने एक ही झोंके में उनके प्यार की मीठी कल्पनाओं का हरा भरा

चमन उजाड़ दिया।"[२४] इनकी पत्नी का निराला के कवि जीवन में काफी योगदान रहा पत्नी की प्रशस्ति में निराला की "गीतिका" का समर्पण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

इसके बाद उन्होंने दूसरी शादी नहीं की। महामारी के प्रकोप से उनके दादा जात बड़े भाई, तीसने दिन भाभी, उसी रात भाई की दूध पीती बच्ची तथा इनके मामा रामलाल, एवं एक वर्ष पूर्व पिता का देहावसान हो गया। इस भयंकर विनाश लीला से उनका मस्तिष्क और मन विक्षुब्ध और अशान्त हो गया। फिर भी गृहस्थ जीवन का निर्वहन करते रहे। पिता की मृत्यु के बाद इन्हें महिषादल राज्य में क्लर्क जैसा कोई पद मिल गया, वर्ष १९२१ ई० में राजा के हाउस होल्ड अधीक्षक से अनबन होने के कारण सुर्जकुमार ने त्यागपत्र दे दिया। यद्यपि वह त्यागपत्र स्वीकार नहीं हुआ, इसके बाद निराला अपना सामान नीलाम करके स्व ग्राम चले गये। महिषादल में निराला ने साहित्य-साधना शुरू कर दी थी। बंगला पत्रों में रूसी क्रान्ति और वहाँ के नये समाज की रचना का हाल वे बड़े ध्यान से पढ़ रहे थे। देशभक्ति के गीत उन्हें प्रिय थे। उनका देशभक्ति पर स्वयं का गीत -

बुन्दूं मैं अमल-कमल,
चिरसेवित चरणयुगल।
शोभामय शान्तनिलय पाप-ताप हारी,
मुक्तबन्ध, घनानन्द मुद-मंगलकारी।।

गीत बनाने के पश्चात निराला को अपना पायदान अन्य कवियों के मुकाबले कुछ निचले पायदान पर महसूस हुआ। वह अपनी तुलना बंगला कवि गिरीश चन्द्र घोष के मुकाबले कर बैठे थे। सन १९२० ई० में सुर्जकुमार ने बहुत सोच-विचार कर अपने नाम में संशोधन किया, अपना नया नाम- सूर्यकान्त त्रिपाठी रखा। जून १९२० ई० में उक्त गीत "प्रभा" पत्रिका में प्रकाशित हुआ। "जन्मभूमि की वन्दना से रामसहाय तिवारी के पुत्र सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अपनी साहित्य साधना शुरू की।"[२५] सूर्यकान्त के एक लेख से प्रभावित होकर रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों ने उन्हें "समन्वय" में काम करने बुला लिया। जुलाई १९२२ ई० में वे 'समन्वय' में काम करने कलकत्ता गये। "पत्र का

संपादन सूर्यकान्त ही करते थे... जबकि नाम छपता था स्वयं माधवानन्द का।"[२६] इन दिनों में ही सूर्यकान्त त्रिपाठी ने 'अधिवास', 'पंचवटी-प्रसंग', 'जूही की कली' आदि अति सुन्दर कविताओं का सृजन किया। २६ अगस्त १९२३ ई० को "मतवाला" पत्र का प्रकाशन हुआ। निराला जी "समन्वय" छोड़कर "मतवाला" में आ गये। "पुराने महारथी", "निराला" आदि प्रच्छन्न नामों से उन्होंने अनेक कविताएँ प्रकाशित कीं। २२ दिसम्बर १९२३ ई० को "मतवाला" एवं "जूही की कली" प्रकाशित हुई कवि का नाम था - सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"। इस कविता का हिन्दी जगत के तरूण कार्य ने बड़े तहे दिल से स्वागत किया। इसके साथ ही इनके लिए सफलता के सभी द्वारा खुलने शुरू हो गये। अपनी कठोर मेहनत, लगन, कठोर परिश्रम से "मतवाला" को अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। मतवाला की लोकप्रियता के साथ ही निराला पर हमले होने लगे। जगन्नाथ चतुर्वेदी ने निराला के मुक्तछन्द की पैरोडी लिखी-

कविता है,
छन्दोबद्ध; किन्तु नही-
गद्य है न पद्य है,
दोनो का मिश्रण है,
अजब-अनूठी अकथ कहानी है।
क्षम्य है बेतुका छन्द
बेली बोलचा की भी,
किन्तु अमार्जनीय है
छन्दच्युत पदावली।"[२७]

रूढ़ीवादी साहित्यकार उन पर बेतुके छन्द एवं नियम विरूद्ध स्वेच्छाचारित का दीप लगा रहे थे, कभी-कभी आवेश में आकर कटु आलोचना भी करते थे। "मनोरमा" में निराला का उपहास करते हुए कविता भी छपी थी - भंगी की मौज

टाँग तोड़ने में कविता की मैं ही संतुष्ट निराला हूँ।
मित्र सदा मैं भंगरंग में मस्त हुआ मतवाला हूँ।।

आक्षेपों के 'मतवाला' मंच से करारे प्रत्युत्तर दिये जा रहे थे। उन्हीं दिनों सितंबर १९२४ ई० में ''प्रभा'' में भी ''युत भावुक'' नाम से एक लेख प्रकाशित हुआ।

भावों की भिड़ंतः- इसमें रवीन्द्रनाथ की ''विजयिनी'' तथा ''निरूद्देश्य यात्रा'' और निराला की ''तट पर'' तथा ''कहाँ देश है?'' कविता में भाव साम्य की चर्चा की गई थी। दोनों ओर की कविताओं में कुछ छोटे-मोटे भेद भी दिखाए, जिसमें यह मालूम हो कि क्या भाव साम्य छिपाने के लिए निराला ने कारीगरी की है। अन्त में लिखा - क्या हिन्दी संसार, इस गौरव-वृद्धि के लिए श्री त्रिपाठी जी महाराज को बधाई या धन्यवाद न देगा? कोई भव्य भावुक इस वक्त का अन्वेषण न करेगा कि इसी प्रकार उनकी और कविताएं भी रविबाबू या और किसी की कविताओं से टकराती हैं या नहीं।[२८] भावों की भिड़ंत से ''मतवाला'' कार्यालय में सन्नाटा छा गया। सेठ महादेव प्रसाद और मुंशी नवजादिलाल को भी अभी तक यह पता न था कि निराला ने कई कविताएं पूरी की पूरी रवीन्द्रनाथ की रचनाओं के आधार पर लिखीं हैं। रवीन्द्र के भावों की चोरी के आरोप से निराला की प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुँचा। निराला अपनी तुलना विवेकानन्द में बड़ी समानता देखते थे। उनका कथन है - जब मैं बोलता हूँ तो यह मत समझो कि निराला बोल रहा है, तब समझो मेरे भीतर से विवेकानन्द बोल रहे हैं। तुम यह जानते हो कि मैंने विवेकानन्द का सारा ''वर्क'' हजम कर लिया है। जब मेरे अन्दर से इस तरह की बातें निकले तो समझो कि यह विवेकानन्द बोल रहा है।[२९]

निराला ने स्वामी विवेकानन्द के साहित्य तथा कविताओं का अनुवाद भी किया है।[३०] इसके अलावा रामकृष्ण परमहंस के साहित्य का भी निराला ने अनुवाद किया।[३१] 'सरोज स्मृति' नामक कविता में निराला ने सरोज के लिए 'जीवित कविते, गीते मेरी'[३२] और 'भास्कर' यह रत्नाहार लोकोत्तखर[३३] आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया है। सरोज इनकी पुत्री का नाम है। पुत्री वियोग में लिखा गया शोक गीत ''सरोज स्मृति'' निराला की व्यथा भरी लघु आत्मकथा है। निराला की रचनाओं की सरेआम लोग, खिल्लियाँ उड़ाने लगे और अवसर की तलाश में रहते, ऐसा अवसर वे कब चूकने वाले थे, निराला की इस आलोचना के संदर्भ में डा० नलिन के विचार उल्लेखनीय हैं - ''ऐसा लगता है कि समय कलाकार

की शक्ति परीक्षा लेता है। प्राचीनता और परम्परा की मद्धिम धीमी ज्योति में पली आँखों की नवीनता के तीव्र आलोक को सहन नहीं कर सकती है।"[३४] निराला को आर्थिक तंगी के हाल से अपनी आर्थिक समस्या सुलझाने के लिए मारवाड़ी सेठों के लड़कों को ट्यूशन पढ़ाना पड़ा। कभी बालोपयोगी साहित्य का सृजन करते तो कभी निम्नस्तर के लेखन के लिए विवश हो जाते। इनके परिश्रम का फल प्रकाशक खा रहे थे। निराला को तो बस छिलके मिल रहे थे। अथक परिश्रम करने पर भी उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिल पाता। इन प्रखर, प्रबल विरोधों और कष्टों के कारण ही कदाचित उनकी प्रतिभा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। सन १९२९ई० में निराला लखनऊ की "गंगा पुस्तकमाला" में काम करने लगे। "सुधा" के संपादन का अधिकांश कार्य निराला स्वयं ही करते थे, परन्तु नाम छपता दुलारे लाल भार्गव का। उन्हें तो सिर्फ रू० ४० प्रतिमाह मिलते थे जो घर गृहस्थ परिवार के लिए नाकाफी थे। १९३५ई० में बेटी सरोज के बीमार होने पर दुलारे लाल भार्गव से चिकित्सा के लिए निराला ने पैसे माँगे, लेकिन दुलारे लाल भार्गव ने इन्कार कर दिया। पुत्री की मृत्यु को वह सहन नहीं कर पाये-

चल रहा नदी-तट को करता में विचार-
हो गया व्यर्थ जीवन, मैं रण में गया हार।[३५]

पुत्री सरोज की मृत्यु ने निराला के जीवन को तहस नहस कर डाला। वियोग में पुत्री वियोग में उन्होंने उन बालों को कटवा दिया जिसके कारण निराला का व्यक्तित्व देवोपम (देवताओं के जैसा) लगता था। उनको संसार से लगाव नहीं रहा, वे फकीरों जैसा जीवन जीने लगे। फिर उन्होंने "सुधा" से संपर्क तोड़ दिया। सरोज की मृत्यु पर लिखा गया शोक गीत "सरोज स्मृति" निराला की व्यथा भरी लघुकथा है।

तत्पश्चात काव्य-सुधा से (काव्य जगत) से संपर्क तोड़ने का दृढ़ संकल्प कर लिया। परन्तु कुछ दिनों बाद किसी अज्ञात प्रेरणा वश वे पुनः कर्मयोगी की तरह पुनः काव्यजगत की साहित्य सेवा में लग गये। सन १९३५-४० ई० तक निराला ने विपुल गद्य साहित्य की रचना की। इसके बाद वे प्रगतिशील आन्दोलन के साथ रहे और यथार्थवादी काव्य तथा कथा का सृजन किया करते थे।[३६] साहित्य सृजन न करने के कारण उनका आर्थिक संकट

गहरा गया। उनकी विपन्नता का एक चित्र दृष्टव्य है - "निहायत गन्दे कपड़े, कई दिनों में खाना पकाते हैं, राशन वगैरह के झंझट से सिर्फ साग ही उबाल कर खा लेते हैं। सारा जाड़ा खत्म हो गया, एक चादर तक नहीं ओढ़ी यूँ ही काट दिया।.... रात भर जागते हैं सोचते हैं, हँसते हैं।[३७] एक दृष्टव्य में - निराला इतने गमगीन, आलसी हो गये थे कि उन्हें खाने पीने की सुध ही नहीं रहती थी। जब किसी तरह इनको होश आता तो यह लौकी, सरसों, मूली, गाजर, बथुआ, मेंथी, पालक आदि साग भाजियों को उबाल कर हल्के नमक से खा लिया करते थे।[३८]

निराला का मानसिक संतुलन बिगाड़ने में सबसे बड़ा हाथ उनके साथ घटित विषम परिस्थितियाँ, आर्थिक तंगी, तथा उनके विरोधियों का रहा।[३९] जब वर्ष १९४० ई० के बाद उन्हें साहित्य परिषद का सभापति बनाया गया। १९४७ ई० में उनकी स्वर्ण जयन्ती मनाई गई कई पत्रों ने उनके जन्म दिवस के उपलक्ष्य में विशेषांक भी निकाले। स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में निराला को एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया गया तथा ग्यारह हजार की निधि उनको भेंट की जाती है, यह घोषणा हुई। बाद में पता चला कि उस डिब्बे में कुछ नहीं था। निराला जी को एक पैसा भी नहीं मिला। साहित्य के इतिहास में इससे बड़ी धूर्तता और ठगी का कोई दूसरा उदाहरण नहीं है।[४०] सन १९५०-५७ ई० तक निराला ने २४० गीत लिखे, जो अर्चना, आराधना, गीतकुंज, सांध्यकाकली में संगृहीत हैं। इन गीतों में विनयभाव और प्रणति स्पष्ट है। साहित्य का घड़ा का दामन भरते भरते वह स्वयं मृत्यु के इतने करीब पहुँच गये।[४१] निराला वर्ष १९५० ई० के आस-पास व्याधि के कारण भी वे असंतुलित हो जाया करते थे तथा आत्मस्थ होकर वे सोचा करते थे कि उनके अन्दर पहले जैसी प्रतिभा और कवित्व नहीं रहा। इसलिए वह कहा करते थे "अब यहाँ निराला नहीं हैं" वे हर समय असंतुलित नहीं रहते थे। उनके मानसिक असंतुलन को हम विक्षप्तता कदापि नहीं कह सकते, लेकिन यह मानसिक असंतुलन तो अवश्य था - इतना निश्चित है फिर भी निराला तो एक मानव ही थे यदि उनमें भी कुछ मानवगत कमजोरियाँ हों तो भी आश्चर्य की कोई बात नहीं। साहित्य जगत की सेवा के अन्तिम तथा स्वयं के अन्तिम दिनों जलोदर से पीड़ित शरीर, को मुक्ति हेतु उन्होंने तीर्थराज प्रयाग को ही चुना। तीर्थराज

प्रयाग के एक कला मंदिर के छोटे से कमरे में दारागंज में हिन्दी जगत के महामहिम, विश्वकवि, हिन्दी साहित्य के भीष्म पितामह महाप्राण, हिन्दी जगत के सूर्य, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुर्जकुमार, महाकवि के पार्थिव शरीर, भौतिक शरीर का १५ अक्टूबर सन् १९६१ ई० को अवसान हुआ और हिन्दी जगत का एक सूर्य हमेशा के लिए अस्त हो गया। हालाकि निराला जी की मृत्यु के निश्चित समय के बारे में भी विभिन्न मत हैं। १५ अक्टूबर सन् १९६१ प्रातः दस बजकर तेइस मिनट।[४२] १५ अक्टूबर, सन् १९६१ को प्रातः नौ बजकर तेईस मिनट।[४३] वास्तव में सच्चा कवि कभी नहीं मरता, उसे काल नहीं खा सकता, आग उसे जला नहीं सकती, भस्म नहीं कर सकती, पारा उसे गला नहीं सकता, चोर उसे छीन नहीं सकता, विश्व उसे बाँट नहीं सकता। काव्य में निहित निराला की आत्मा जो अशरीर है। आज भी विश्वकवि, महाकवि निराला हमारे-विश्व के बीच अशरीर अजर-अमर हैं। उनके मृत्यु के बाद ''सरस्वती'' ने लिखा - ''हमारा मत है कि तुलसीदास जी के बाद से अब तक हिन्दी काव्य जगत में निराला जी की काव्य प्रतिभा का कोई कवि नहीं हुआ।''[४४] साहित्य जगत में निराला की साहित्य सेवा की पैरवी का कोई सानी नहीं है।[४५] ''निराला जैसा साहित्यकार हर भाषा और हर देश में पैदा नहीं होता।''[४६] निराला जी के जीवन वृत्त के सन्दर्भ में उनके जन्म, उनके कृतित्व के प्रकाशन यहाँ तक कि उनके जीवन के बारे में, उनकी रचनाओं आदि के बारे में अभी तक सही-सही समय सीमा का निर्धारण, विद्वानों द्वारा आज तक नहीं किया जा सका है।[४७] इनके कृतित्व से लेकर जीवन बेला के अन्तिम क्षणों तक विद्वानों में मतभेद रहा है।[४८]

निराला की कृतियाँ

यों तो सम्पूर्ण शोध का लक्ष्य महाकवि निराला के काव्य विश्लेषण में उनकी लम्बी-कविताओं का विश्लेषण-विवेचन अभीष्ट है किन्तु यहाँ हम निराला के निराले कृतित्त्व पर एक विहंगम दृष्टि से विचार करेंगे जिसमें उनकी काव्यता का क्रमिक विकास भी परिलक्षित हो सके।

काव्य कृतियाँः-

निरालाजी के काव्य विकास पर दृष्टि डालने के लिए हमें उनके काव्य ग्रन्थों का अनुशीलन करना होगा। निरालाजी की मृत्यु (१५ अक्तूबर १९६१) के लगभग साढ़े सात वर्ष बाद प्रकाशित उनके अन्तिम काव्य-संग्रह 'सांध्यकाकली' (जनवरी १९६९) के साथ ही उनकी सम्पूर्ण काव्य-रचनाओं का प्रकाशन-क्रम एक प्रकार से पूरा हो गया है। अभी भी, सम्भव है, इधर-उधर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ कविताएँ संकलनों में आने से रह गयी हों, लेकिन उनकी संख्या ज्यादा नहीं मालूम पड़ती। श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा सम्पादित 'अपरा' (संग्रहों से चुनी हुई कविताओं का संकलन) को छोड़कर निराला के कुल कविता-संग्रहों की संख्या १३ है। प्रकाशन-क्रम के अनुसार उनके संग्रह इस प्रकार हैंः-

१. 'अनामिका' (प्रथम संस्करण, सन् १९२२ ई०)

२. 'परिमल' (सन् १९३० ई०)।

३. 'गीतिका' (सन् १९३६ ई०)।

४. 'अनामिका' (द्वितीय संस्करण, सन् १९३८ ई०)।

५. 'तुलसीदास' (सन् १९३९ ई०)।

६. 'कुकुरमुत्ता' (सन् १९४२ ई०)।

७. 'अणिमा' (सन् १९४३ ई०)।

८. 'वेला' (सन् १९४६ ई०)।

९. 'नये पत्ते' (सन् १९४६ ई०)।

१०. 'अर्चना' (सन् १९५० ई०)।

११. 'आराधना' (सन् १९५३ ई०)।

१२. 'गीत-गुंज' (सन् १९५४ ई०)।

१३. 'सान्ध्य-काकली' (सन् १९६९ ई०)।

उपरोक्त सभी संग्रहों में कुल मिलाकर उनकी प्रकाशित मौलिक कविताओं की संख्या ६८६ ठहरती है। इसके अतिरिक्त १० अनूदित कविताएँ (५ रवीन्द्र नाथ ठाकुर की

कविताएँ और ५ स्वामी विवेकानन्द की) भी हैं जिनमें सात अनामिका में संग्रहीत हैं और दो 'नये पत्ते' तथा एक 'अणिमा' में।

वस्तुतः निरालाजी सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। कविता के अतिरिक्त निराला ने अन्य साहित्यिक विधाओं में रचनाएँ की हैं- जिनमें उपन्यास, कहानी, संस्मरण, नोट्स, टिप्पणियाँ और अनेक विषयों पर लिखे गये लेख शामिल हैं। उनके ग्रन्थों की निम्नलिखित तालिका से यह तथ्य भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है-

उपन्यास - अप्सरा, अलका, निरूपमा, प्रभावती, काले कारनामें, चमेली तथा चोटी की पकड़ (अपूर्ण)

कहानी संग्रह - लिली, चतुरी चमार, सुकुल की बीबी, सखी, देवी।

रेखाचित्र - कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

निबंध संग्रह - प्रबंध पद्म, प्रबंध प्रतिमा, चाबुक, चयन।

समीक्षा - रवीन्द्र कविता कानन, पंत और पल्लव।

नाटक - समाज, शकुन्तला (दोनों अप्रकाशित)

जीवनी - भक्त ध्रुव, महाराणा प्रताप, भक्त प्रह्लाद, भीष्म।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के विविध अंग-उपांगों को समुन्नत करने का श्रेय निराला को प्राप्त है। अब हम निरालाजी के काव्य-संग्रहों का विवेचन करना अभीष्ट समझते हैं।

अनामिका

वैसे तो निरालाजी की कविता सन् १९१६ ई० के आसपास लिखी जाने लगी थी पर उनका पहला काव्य-संग्रह 'अनामिका' नाम से सन् १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ। अनामिका के प्रथम संस्करण में निराला की सात कविताएँ संग्रहीत थीं। सम्प्रति इसका प्रथम संस्करण उपलब्ध नहीं है। इसके प्रथम संस्करण में प्रकाशित सातों कविताएँ विभिन्न संकलनों में आ गई हैं। 'अनामिका' निराला का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है साथ ही स्वच्छन्दतावाद का भी। 'अनामिका' के एक छोर पर 'प्रेयसी' जैसी रचनाएँ हैं और दूसरे पर 'राम की शक्ति पूजा'। इनके बीच एक रूप 'तोड़ती पत्थर' और 'वन बेला' का है, दूसरा 'सरोज स्मृति'

का। एक ओर 'दान' जैसी व्यंग्य प्रधान रचनाएँ हैं, तो दूसरी ओर 'नर्गिस' जैसी महाकाव्यात्मक कल्पना-प्रधान रचनाएँ। एक ओर पराजय और निराशा है, तो दूसरी ओर उद्दाम आत्मविश्वास का जागरण गीत और उद्‌बोधन। निराला के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनकी अन्तर्विरोधी वृत्तियाँ हैं। एक ही ग्रन्थ में यह अन्तर्विरोधी रूप उनकी व्यापकता और विविधता, अविराटता और विस्तार का ही परिणाम है। डॉ० धनंजय वर्मा के शब्दों में सब दृष्टियों से 'अनामिका' निराला का ही नहीं, पूरे स्वछन्दतावादी युग का प्रतिनिधि काव्य-संग्रह है।''[४६]

परिमल

निराला जी की सन् १६२४ ई० से सन् १६२७ ई० तक की रचनाएँ 'परिमल' संग्रह में सन् १६३० ई० में प्रकाशित हुई। 'अनामिका' की प्रशान्त और प्रसन्न भावधारा में कुछ नये तत्व जुड़े। ओजस्विता, प्रखरता और प्रवेग की दृष्टि से 'परिमल' की कुछ रचनाएँ नूतन दिशा का संकेत करती हैं। 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'बादलराग', आदि ऐसी ही कृतियाँ हैं। साथ ही निरालाजी की गीतसृष्टि भी यहीं से प्रारम्भ होती है। 'परिमल' के गीत प्रकृति-सौन्दर्य और ऋतु-सौन्दर्य से सम्बन्धित हैं। 'यमुना' में अतीत का स्वर्णस्वप्न समाया हुआ है। ये सब छायावाद या स्वच्छन्दतावाद की नई भूमियाँ हैं, जिनसे निरालाजी का काव्य समृद्ध हुआ है। इन समस्त रचनाओं में प्रयास की कृत्रिमता कहीं नहीं है। ये यौवन काल की आस्थामयी अभिव्यक्तियाँ हैं।

''परिमल एक ऐसा काव्य-संग्रह है जिसमें उनके कवि का सबल व्यक्तित्व अपनी पूरी विविधता में उभर कर 'जूही की कली', 'संध्या सुन्दरी', 'यमुना के प्रति', 'विधवा', 'भिक्षुक' जैसी कविताओं के साथ 'बादल राग' के रूप में, न केवल पूरी प्रचण्डता के साथ गरज ही सका है, वरन् 'जागो फिर एक बार' के रूप में समूचे युग को अपनी निद्रा त्याग कर जाग उठने के लिए भी झकझोर सका है। 'परिमल' की ये तथा अन्य कविताएँ सचमुच इतनी मार्मिक रससिक्त, प्रभावशाली एवं पूर्ण हैं कि मात्र उन्हीं के आधार पर वे वर्तमान हिन्दी कविता के निर्माताओं की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित किए जा सकते हैं।[५०]

गीतिका

निरालाजी की गीत रचनाओं का एक संग्रह 'गीतिका' नाम से सन् १९३६ ई० में प्रकाशित हुआ। महाप्राण निराला ने 'गीतिका' के पदों में जहाँ शास्त्रीय संगीत की अनेक रूढ़ियों को तोड़कर उसमें आधुनिकता का समावेश करने का उपक्रम किया है वहीं उसमें उदात्त काव्यात्मकता की सन्निहिति की भी व्यवस्था की है। 'गीतिका' के गीत संग्रह शास्त्रीय राग-रागिनियों से बँधे पूर्णतः गेय हैं और छायावादी गीत सृष्टि के अत्याधिक सुन्दर रूप को व्यक्त करते हैं। गीतों की रचना किसी एक विषय की परिधि में न होकर विविध प्रकार के विषयों को अपने में समेटे हुए है। कुछ मे सरल, निश्छल, आत्मनिवेदन है, कुछ नारी-सौन्दर्य तथा श्रृंगार एवं प्रकृति से सम्बन्धित है। अनेक गीत ऐसे भी हैं जो कवि की अद्वैतवादी रूझान को दार्शनिकता की पूरी गम्भीरता में प्रकट करते हैं एवं कतिपय ऐसे भी हैं जिन्हें राष्ट्रीय भावना-प्रधान कहा जा सकता है। सारे गीतों के ऊपर कवि की व्यापक मानवतावादी स्वच्छ सौन्दर्य दृष्टि छाई हुई है, जो उत्तरोत्तर परिष्कृत होते हुए उसे समस्त लोक की पीड़ा को दूर करने के लिए आकुलता से अपने आराध्य की ओर उन्मुख कर सकी है।

काव्यात्मक दृष्टि से 'गीतिका' के पदों में भाव और भाषा सौन्दर्य का समुचित निर्वाह हुआ है। भाषा की साहित्यिकता एवं अर्थ की गम्भीरता तथा संगीत-विधान गीतिका के पदों की विशेषता है। तीनों का अद्भुत संयोग ही निरालाजी की कला का स्पष्ट निदर्शन है। डॉ० राम कुमार सिंह गीतिका के संदर्भ में अपना मत प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं: ''सरस्वती के अनेक वरद् पुत्रों से 'गीतिका' एक विशिष्ट अपेक्षा करती है। मेरी दृष्टि में तो 'निराला' की यह सर्वश्रेष्ठ कृति है। वह उदात्त मौलिक भावनाओं की प्रतिनिधि रचना है। उसके गीतों में एक दिव्य प्रभा है। शब्दों और वाक्यों में एक प्रयोगात्मक विशिष्ट भंगिमा है। साथ ही यह भी कहने का साहस करता हूँ कि हिन्दी में उसे वही सम्मान प्राप्त होना चाहिए जो बंग साहित्य में 'गीतांजलि' को प्राप्त है। अन्तर केवल लक्ष्य विशेष का है: एक उद्देश्य संगीत ओर प्रकृत प्रगीत काव्य का मधु मिश्रण है,

दूसरा विशुद्ध काव्य है और अनजाने ही संगीतधारा में बह गया है जैसा कि प्रीति का सहज स्वभाव होता है।''[५१]

अनामिका (द्वितीय)

सन् १९३६ ई० से लेकन सन् १९३९ ई० तक का समय निराला के काव्य में संक्रान्ति का काल माना जाता है। और इसी काल में (सन् १९३९ ई०) निरालाजी की अनामिका (द्वितीय) प्रकाशित हुई जिसमें पहली अनामिका के कोई अंश नहीं थे। इस दूसरी अनामिका में सामाजिक विद्रोह के भाव अधिक मुखर हुए हैं। 'प्रेयसी' कविता इसका उदाहरण है। 'रेखा' नामक रचना में आत्मजीवनी के अंश दिखाई देते हैं। प्रस्तुत संग्रह में जीवन के प्रति महान आस्था व्यक्त करने वाली और अवरोधों को पराजित करने वाली प्रगल्भ रचनाएँ देखने में आती हैं। हम कह सकते हैं कि ये कविताएँ निरालाजी की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के सशक्त उदाहरण हैं। परन्तु इसी 'अनामिका' में 'सरोज-स्मृति' जैसी वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित एक वेदनागाथा की विलापिका भी है, और 'वनबेला' जैसी सामाजिक वैषम्य पर आक्रोश प्रकट करने वाली कृति भी है, जिसमें एक अन्तर्व्याप्त करूणा की आभा प्रमुखता के साथ उभरी है। इसी में राजनीतिक प्रवंचना और विकृति का संकेत-स्वर भी मुखर हो उठा है। इन रचनाओं को देखकर यह स्पष्ट होने लगता है कि सन् ३५-३६ के आसपास निरालाजी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी तरलता के पश्चात एक नया भाव-गांभीर्य, सामाजिक और राजनीतिक वैषम्य के प्रति एक स्पष्ट आक्रोश उत्पन्न हो गया था। सन् १९३७ ई० में लिखी गई 'तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता को समीक्षकों ने निरालाजी के काव्य में एक नई दिशा का उन्मेष करने वाली रचना कहा है। स्वर्गीय सौन्दर्य से उतर कर पृथ्वी की कुरूपता की ओर दृष्टिपात इस कविता की मूल विशेषता है। शैली की दृष्टि से 'खुला आसमान' जैसी यथातथ्य चित्रण करने वाली प्रवृत्ति भी इस संग्रह में उपलब्ध होती है। 'अनामिका' में उसे पूरी तरह खुलकर खेलने का अवसर मिला है। इस कृति में न केवल अपने विविध क्षेत्रीय प्रसार को ही सूचित किया गया है, वरन् 'वन बेला', 'नरगिस', 'सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति', 'तोड़ती पत्थर', 'सरोज-स्मृति' और इन सबसे परे 'राम की शक्ति-पूजा' के रूप में कतिपय मूल्यवान उपलब्धियाँ भी हैं। 'सरोज-स्मृति', 'राम की शक्ति-पूजा' वे कविताएँ

हैं, जिनमें महाकाव्य का औदात्य, उसकी गरिमा एवं उसका वातावरण सब कुछ विद्यमान है। भाव-भाषा, शैली, विचार कल्पना, चिन्तन, गहराई एवं प्रसार- सभी इसमें देखे जा सकतें हैं। कुछ कविताएँ और भी हैं जो कवि की अनुभूतियों के दूसरे स्तरों को खोजती हैं एवं कुछ में बड़ी ही हल्की कलम से बड़े ही यथार्थ और सरल प्रकृति के चित्र खींचे गए हैं। इन समस्त कविताओं के आधार पर 'अनामिका' को कवि की छायावादी कविता की एक अत्यधिक मूल्यवान देन माना जा सकता है।"[५२]

'अनामिका' में भाव एवं कलात्मक सौन्दर्य का सफल निर्वाह हुआ है। 'परिमल' की भाँति इसमें संग्रहीत कविताएँ भाव एवं भाषा - दोनों ही दृष्टियों से उच्चकोटि की हैं। 'सरोज-स्मृति' शोक-गीत/विलापिका की परम्परा में एक नई कड़ी है। 'राम की शक्ति-पूजा' में कलात्मक उत्कर्ष एवं नवीन दृष्टि विद्यमान है।

तुलसीदास

'तुलसीदास' निरालाजी का प्रतिष्ठित काव्य-संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् १९३९ ई० में हुआ। इसमें भारतीय संस्कृति के इतिहास का चित्र प्रस्तुत किया गया है। कविता का प्रारम्भ ही भारतीय संस्कृति की संध्या से होता है-

"भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिङ् मण्डल,
उर के आनन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान
है ऊर्मिल जल, निश्चल प्राण पर शतदल।"[५३]

मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचार के कारण भारतीय जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। कवि ने तत्कालीन उसी परिवेश को स्वर देने के लिए इस काव्य की रचना की। तुलसीदास की वस्तुयोजना नाटकीय गरिमा से पूर्ण है। इसकी कथावस्तु कई मोड़ों को पार करती अन्तिम रूप में पहुँचती है। निराला मध्यकालीन भारतीय दुर्व्यवस्था के चित्रण के

साथ तुलसी के जीवनवृत्त को प्रस्तुत करते हैं। 'तुलसीदास' छायावादोत्तर युग की रचना होने के कारण स्वस्थ प्रकृति का चित्रण चित्रित करती है।

'तुलसीदास' चिन्तन प्रधान एवं भाव बोध के अक्षय भण्डार से परिपूर्ण है। इसमें प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता भी विद्यमान है और आध्यात्मिकता भी। काव्य का बौद्धिक तत्त्व अपनी समग्रता में यहाँ चित्रित है। सम्पूर्ण काव्य में शब्द संयोजन के प्रति कवि सजग है और शब्द-संयोजन की विशिष्टता के कारण ही इस काव्य का भाषिक सौन्दर्य बढ़ गया है।

'तुलसीदास' के रूप में निराला एक सफल और सक्षम प्रबन्ध कवि के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। ''महाकाव्यों का वही औदात्य यहाँ भी है। उदात्त भाषा, उदात्त शैली एक और लोक विश्रुत चरित्र के लिए 'निराला' की कला, कल्पना और चिन्तन की वही उच्चतर परिणति भी यहाँ है। यदि 'राम की शक्ति-पूजा' में राम का अन्तसंघर्ष था तो यहाँ तुलसी का है। कवि की दृष्टि यहाँ मध्यकालीन समाज और संस्कृति की तहों में भी पहुँची है और उन्हें सफलतापूर्वक उभारकर सामने ला सकी है। 'रत्नावली' और 'तुलसी' दोनों ही चरित्र कवि की सधी तूलिका के परिचायक हैं। इस प्रकार 'निराला' एक बार पुनः छायावादी कविता को एक अमूल्य वस्तु प्रदान कर सके हैं।''[५४]

कुकुरमुत्ता

'कुकुरमुत्ता' का प्रकाशन सन् १९४२ ई० में हुआ और इससे पूर्व यह काव्य रचना मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थी। यह व्यंग्य-प्रधान काव्य-ग्रन्थ है। इसके वर्ण्यविषय १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन और बंगाल के अकाल के परिणाम है। बंगाल का अकाल, जो प्रकृति के प्रकोप का परिणाम नहीं, वरन् मानव निर्मित था। उस अकाल की विभीषिका से तड़पती मानवता और १९४२ का आन्दोलन, जो दमन और अत्याचारों की पराकाष्ठा का प्रतिफलन था - इन दोनों स्थितियों के कारण भारत की अस्त-व्यस्त मानवीय व्यवस्थाओं ने कवि-हृदय को झकझोरा था।

'कुकुरमुत्ता' में गुलाब और कुकुरमुत्ता प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। गुलाब पूँजीवादी वर्ग का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का। कुकुरमुत्ता गुलाब पर व्यंग्य करता है-

"अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो-आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहाया जाड़ा घाम।"[५५]

कुकुरमुत्ता काव्य-रचना में निरालाजी टी०एस० इलियट की सन्दर्भ गर्भित शैली से प्रभावित हुए हैं। कुकुरमुत्ता में कई स्थानों पर ऐसे अपरिचित एवं गूढ़ सन्दर्भ दिए गए हैं जिनका अर्थ समझने में गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए एक बानगी देखिए-

मैं कुकुरमुत्ता हूँ
पर बेनजोइन (Bengoin) वैसे,
बने दर्शनशास्त्र जैसे।
ओमफलस और ब्रह्मावर्त
वैसे ही दुनियाँ के गोले और पर्त।[५६]

जिस तरह भारतीय दर्शन का परिचय हुए बिना इलियट की 'दत्त दयध्वम्। दम्यत।' की शब्दावली नहीं समझी जाती, या 'शान्तिः, शान्तिः शान्तिः[५७] का वाक्य किसी अंग्रेज पाठक के लिए निरर्थक हो जाता है, वैसे ही निरालाजी के कुकुरमुत्ता काव्य के कुछ स्थलों को पाश्चात्य दर्शन की जानकारी के बिना समझा नहीं जा सकता।

जैसा कि पहले कहा गया है कि कुकुरमुत्ता व्यंग्यप्रधान काव्य-रचना है। इसमें तत्कालीन हिन्दी कविता में तथाकथित प्रगतिवादी और प्रयोगवादी धाराओं की अव्यवस्था और अराजकता के प्रति व्यंग्य किया गया है। टी० एस० इलियट का अनुकरण करने वाले प्रयोगवादियों पर व्यंग्य निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"कहीं का रोड़ा, कहीं का लिया पत्थर,
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा

पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर,

कहा, ''कैसा लिख दिया संसार सारा'।''[५८]

निरालाजी का कुकुरमुत्ता में व्यंग्य सीमित और एकोन्मुख नहीं है और उसकी चपेट में अव्यवस्थित, असम्बद्ध जितने हैं सब आ आते हैं। उसकी शैली भी निराला के पिछले काव्य की तुलना में साधारण है, क्योंकि ''युग के अनुकूल इसकी रूपरेखा है। उसका व्यंग्य भी युग पर है और इस कथन में कुछ न कुछ सत्य अवश्य है कि निराला ने इस कविता में सारे विश्व को बाँधने और उसके विकास का पथ खोजने की चेष्टा की है।''[५९] निरालाजी ने अन्य रचनाओं की अपेक्षा इसमें सरल भाषा का प्रयोग किया है। सुबोध शब्दों के माध्यम से तीखा व्यंग्य करने में कवि को अप्रतिम सफलता मिली है। व्यंग्य-प्रहार के क्रम में कवि ने अंग्रेजी के शब्दों का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग किया है। शैली की दृष्टि से कुकुरमुत्ता इस कवि का नवीन संधान है।

अणिमा

'अणिमा' का प्रकाशन सन् १९४३ ई० में हुआ। द्वितीय महायुद्ध के दिगंतव्यापी प्रभाव ने भारत के राष्ट्रीय जीवन में निराशा और पराजय की भावना उत्पन्न कर दी थी। इसी के परिणामस्वरूप निरालाजी की इस काल की कविताओं में व्याप्त निराशा चित्रित है। द्वितीय विश्वयुद्ध में हुई बरबादी के कारण सामान्य जन-जीवन विश्रृंखलित हो गया था। विकलता, वितृष्णा और अभाव का वातावरण चारों ओर विद्यमान था। मानसिक पीड़ा और उदासीनता जैसे भाव 'अणिमा' के गीतों में रेखांकित हैं। व्यक्ति की निराशावादिता इन पंक्तियों में अभिव्यक्त है-

''मैं अकेला

देखता हूँ आ रही

मेरे दिवस की सान्ध्य वेला

× × ×

जानता हूँ, नदी झरने,

जो मुझे थे पार करने,

कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख,

कोई नहीं मेला।''[६०]

अणिमा में एक ओर विषाद और निराशा के स्वर हैं तो दूसरी ओर रहस्य आलोक और भक्ति की भावधारा। एक ओर अतीत का लेखा-जोखा है, आत्म-परिचय है, तद्रूप संतोष है, साहित्यिक बन्धुओं का प्रशस्ति-अंक है, तो दूसरी ओर विश्रृंखलता, असम्बद्धता, अस्पष्टता और भ्रम। ''परिमल, गीतिका और अनामिका में जो आशावादिता के भाव-गर्भित चित्र बनाए गए थे वे अनामिका की दीवारों पर नहीं टाँगे गए। यहाँ तो जीवन की निराशावादिता का टूटा हुआ व्यक्ति अभिचित्रित है। इसमें वृक्षों को सूखी डाल, क्षार हुए जीवन की कथा कहती है। यहाँ परिमल, गीतिका और अनामिका के काल की कोयल पंचम तान नहीं छेड़ती। यहाँ तो अंधकार है, घनघोर अंधकार, अमावस्या की काली रात। भाव यह हे कि जीवन की निराशावादिता गम्भीर रूप में चित्रित है।''[६१]

'अणिमा' की संकलित कविताएँ विविध विषयक हैं। इसकी कविताएँ वर्णनात्मक शैली में हैं और वर्णन-शैली इतिवृत्तात्मक है। इसकी अल्पल्प कविताएँ ही भावगर्भित हैं, गद्यात्मकता का आग्रह अधिक है। सम्भवतया इसीलिए इसे उनकी प्रतिभा और कला का विघटन माना जाता है।[६२]

बेला

निरालाजी की बेला काव्य-रचना सन् १९४३ ई० के आसपास लिखी गई थी किन्तु इसका प्रकाशन कुछ विलम्ब से सन् १९४६ ई० में हुआ। इसके गीत गीतिका की परम्परा में है। बेला के गीत विविधि विषयक हैं। इन गीतों में जहाँ निरालाजी ने प्रेम और सौन्दर्य के गीत गाए हैं वहाँ विद्रोह का स्वर भी गुंजायमान हुआ है। बेला का प्रथम गीत प्रकृति का चित्र है। चित्र प्रातःकाल का है। और रवि किरणें रेशमी रथ पर सवार होकर निकलती हैं, कमल प्रस्फुटित हो गए हैं, पक्षी कलरव कर रहे हैं। और समीर बह रहा है। कवि ने शुद्ध रूप से प्रकृति का वर्णन किया है:

''शुभ्र आनन्द आकाश पर छा गया,

रवि गा गया किरण-गीत।

श्वेत शतदल कमल के अमल खुल गए,

विहग-कुल कण्ठ उपवीत।''[६३]

बेला में कुछ स्वतन्त्र गीतों के अतिरिक्त अधिकतर ग़ज़ल शैली की रचनाएँ हैं जिन्हें निरालाजी ने उर्दू के अनुकरण में लिखा है। इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता इसकी बदली हुई भाषा और इसके उर्दू छंद हैं, जिसके कारण इसे प्रयोगशील कृति के रूप में देखा गया है। उर्दू ग़ज़लों का चमत्कार लाने के लिए निरालाजी ने उर्दू काव्य की अलंकृतियों ओर मुहावरों का भी प्रयोग किया है:-

चढ़ी हैं आँखें जहाँ की, उतार लाएँगी।

बढ़े हुओं को गिराकर, सँवार लाएँगी।

परन्तु इस प्रकार के प्रयोगों के द्वारा निरालाजी टकसाली उर्दू ग़ज़लों की कारीगरी को नहीं पा सके हैं और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि हिन्दी की भूमि पर उर्दू के मुहावरेदानी और तराश लाना सम्भव नहीं है। यह दो भाषाओं की प्रकृति और परम्परा का अन्तर है।

भाषा की दृष्टि से इसमें संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के शब्दों की खिचड़ी मिलती है। निराला ने उर्दू के जिन छन्दों को हिन्दी में प्रयुक्त किया है, उनके प्रयोग में कवि सफल नहीं दीखता। ''यह तो मानना ही होगा कि उर्दू भाषा के माध्यम से जो भी काव्यात्मक रचनाएँ उपस्थित हुई हैं, उनमें भाव-विचार-गाम्भीर्य कहाँ?''[६४] प्रो० सीताराम दीन की इस स्थापना में सत्यता का पुट विद्यमान है जैसाकि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है-

''कली न खिली समीरण से खेलने के लिए,

न मन्द गन्ध में कलेजा ताजा तर होता।''[६५]

इस प्रकार के उदाहरण 'बेला' भरे हैं, जिन्हें देखने से ऐसा लगता है कि निराला प्रयोगशाला में बैठ नयी शैली का सन्धान कर रहे हों। इसी कारण निरालाजी के 'बेला' संग्रह को एक नये प्रयोग के अतिरिक्त अधिक नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसी काव्य-संग्रह में निरालाजी ने हिन्दी शैली के कुछ सधे हुए गीत भी लिख हैं, जिनकी तुलना उनके श्रेष्ठतम गीतों से की सकती है। इनमें उनकी नैसर्गिक अनुभूति का सहज विन्यास है।

नये पत्ते

निरालाजी का 'नये पत्ते' काव्य-संग्रह हिन्दी में प्रचलित प्रगतिवादी काव्य-धारा की पृष्ठभूमि है और इसका प्रकाशन सन् १९४६ ई० में हुआ। इसमें यथार्थवाद अपनी पूर्णता में गृहीत हुआ है। 'नये पत्ते' में निराला की चेतना सामाजिक है, बाह्योन्मुखी और समाजशास्त्रीय है जो कला पर आधारित होकर व्यंग्य-सृष्टि करती है। इस काव्य-संग्रह में विरोधाभास, विलक्षण प्रयोग तथा स्वतन्त्र भाव-संयोग की स्थितियाँ मिलती है जिन्हें अति यथार्थवादी कला से सम्बद्ध किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में प्रो० धनंजय वर्मा ने अपना अभिमत देते हुए कहा है- ''नये पत्ते' में 'ठूँठ' (अनामिका) की वह अन्तिम पंक्ति कदाचित् काव्य-रूप लेती है, जिसमें एक वृद्ध विहग ठूँठ पर बैठा कुछ याद करता है। उसकी आँखों के सामने यथार्थ जीवन की तीव्रता है, उसकी विषण्ण विद्रूपता है। 'नये पत्ते' सामान्य और निम्न वर्ग के प्रति निराला की सहानुभूति उसके वास्तविक जीवन-चित्रों, संघर्षों को चित्रित करने के माध्यम से व्यक्त हुई है।''[६६]

'नये पत्ते' की अधिकांश कविताओं में व्यंग्य देखने को मिलता है। गर्म पकौड़ी अति यथार्थवादी कविता है जिसे डॉक्टर बच्चनसिंह ने रोमांस विरोधी रचना कहा है।[६७] इस कविता में कवि ने कृपण व्यक्तियों पर व्यंग्य किया है-

''मेरी जीभ जल गई
सिसकियाँ निकल रहीं,
लार की बूँदें कितनी टपकीं,
पर दाढ़ तले तुझे दबा ही रखा मैंने
कंजूस ने ज्यों कौड़ी।''[६८]

किन्तु इसमें कंजूसों पर केवल व्यंग्य-प्रहार ही नहीं है? वरन् कवि ने प्रतीक-शैली का प्रयोग करते हुए मानवीय नवीन मूल्य-बोध को स्वर दिया है। 'गर्म पकौड़ी' नये विचार और नई व्यवस्था का प्रतीक है। उसी प्रकार 'प्रेम-संगीत', 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झिंगुर डटकर बोला', 'छलाँग मार गया', 'डिप्टी साहब' जैसी कई कविताएँ 'नये पत्ते' में संगृहीत हैं, जिनमें यथार्थवादी विचारधाराएँ अभिचित्रित हैं और अंकित हैं कवि के तीखे व्यंग्य।

'नये पत्ते' की कुछ रचनाएँ अस्पष्ट और असम्बद्ध-सी हैं जिनके अर्थों का कोई भी सूत्र नहीं मिलता। स्फटिक शिला[६६] को एक अश्लील कुत्सित चित्र और प्रतिक्रियावादी कहा गया है।[७०] डॉ० रामविलास शर्मा इसे मानवीय भावनाओं द्वारा उनके अध्यात्मवाद को दी गई झकझोर समझते हैं।[७१] कुछ लोगों ने इसे भावना की उठान और आकस्मिक मोड़ के कारण रस और मनोविज्ञान की द्वन्द्वात्मक भूमि पर खड़ी अकेली कृति माना है।[७२] कुछ अन्य समीक्षकों के लिए यह अति यथार्थवादी कला का उदाहरण है जिसमें उत्तान-श्रृंगार और अनन्य भक्ति का, रति और विरति का विचित्र मिश्रण है।[७३] इस तरह उनकी कुछ अस्पष्ट और विवादास्पद कविताओं को छोड़कर 'नये पत्ते' का निरालाजी के काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस काव्य में उनकी प्रगतिशीलता और सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि अधिक प्रकाश में आई है।

अर्चना

अर्चना भक्तिपरक गीतों का संकलन है जिसका प्रकाशन सन् १९५० ई० में हुआ। गीतिका में जहाँ निराला ने मुख्य रूप से प्रेम और सौन्दर्य के गीत गाए हैं वहाँ अर्चना में उन्होंने परमात्मा के चरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणति निवेदित की है। 'अर्चना' की भूमिका में निरालाजी कहते हैं, "अर्चना का अन्तरंग विषय यौवन से अतिक्रान्त कवि के परलोक से सम्बद्ध है, इसलिए यहाँ सम्मति का फल निष्काम में ही होगा।"[७४] इतना ही नहीं, वे आगे कहते हैं कि 'अर्चना' के विषय में प्राचीन परम्परा से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि-

भाव कुभाव अनख आलसहू;
राम जपत मंगल दिशि दसहू।[७५]

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि निरालाजी श्रंगारिक और सौन्दर्य-काव्य की भूमिका को छोड़कर विनय और आत्म-साधना प्रधान काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए हैं। इतना कहना होगा कि इन समसत रचनाओं में निराला का काव्य-सौष्ठव, उनका संगीत-ज्ञान, उनकी लयप्रियता सर्वत्र देखे जाते हैं।

अर्चना के सभी गीत कलात्मक और प्राणवान् हैं। अन्य गीतों की अपेक्षा इस काव्य-संग्रह के गीतों में गीतात्मकता अधिक प्रबल है। होली से सम्बन्धित कई गीत हैं, जिनमें लोकगीतों की लयात्मकता अधिक है। 'फूटे हैं आमों में बौर' होली के सभी गीतों में श्रेष्ठ और मधुर है। इसमें ग्रामीण चित्र अधिक स्पष्टता के साथ उभरकर आए हैं। गीतों की कला को निराला ने जितना सशक्त बनाया है उतना हिन्दी के अन्य कवियों से सम्भव नहीं हो पाया है।

आराधना

'आराधना' काव्य-संग्रह अर्चना का ही अग्रिम रूप है और इसका प्रकाशन सन् १९५१ ई० में हुआ। निरालाजी ने पूजा के लिए जो अर्चना की थी, वस्तुतः 'आराधना' में वह आराधना बनी रही। कवि यहाँ एक सच्चे आराधक के रूप में दृष्टिगत होता है। आराधना के भक्तिपरक गीत जहाँ एक ओर हृदय को छूते हैं, वहीं दूसरी ओर वर्तमान सामाजिक विषमताओं से त्रस्त जन-जन की पीड़ा को मूर्त कर देते हैं। तथा श्रृंगारपरक गीत मानसिक उल्लास की एक नई मांसल भूमि और लोक गीतों की-सी शैली का एक अभिनव और सुथरा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।"[७६]

'आराधना' में निरालाजी की वैयक्तिक भक्ति-भावना अधिक प्रगाढ़ हो गई है जिससे उनके गीतों में शान्त और करूण रस का गहरा पुट मिलने लगता है। यह सत्य है कि इन गीतों में निरालाजी की मानवतावादी भूमिका भी स्थान-स्थान पर उभरी है:-

रंग रंग से यह गागर भर दो,
निष्प्राणों को रसमय कर दो।
माँ, मानस के सित शतदल को
रेणु-गन्ध के पंख खिला दो
जग को मंगल मंगल के पग
पार लगा दो, प्राण मिला दो;[७७]

संगीतात्मक की तीव्रता निराला के गीतों की आत्मा है। नाद और लय का आराधना के गीतों में भी अभाव नहीं है। कहीं-कहीं तो कवि ने अन्त्यानुप्रास का अम्बार लगा दिया है। जैसा कि निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है:-

ज्योति प्रात, ज्योति रात,
ज्योति नयन, ज्योति गात।
ज्योति चरण, ज्योति चाल,
ज्योति विटप, आल बाल,
ज्योति सलिल, ज्योति ताल,
ज्योति कलश, ज्योति पात।[७८]

''आराधना में भक्ति-गीतों की बहुलता के बाद भी जन-जीवन और युग का चित्रण हुआ है। प्रकृति के चित्र यहाँ हैं, राष्ट्रीय-भावना के गीत हैं, जागरण गीत हैं और लोक-गीतों की सहज संवेद्य भावभूमि है। यहाँ भी निराला का तटस्थ श्रृंगार-दर्शन मिलता है। 'अर्चना', 'आराधना' उनकी असफलता की परिणति नहीं। वहाँ काव्य में एक नूतन-प्रयोग और जीवन की एक आवश्यक उपलब्धि है। निराला-काव्य का यह एक और नया आयाम है।''[७९]

गीत-गुंज

निरालाजी के जीवनकाल का अन्तिम गीत-संग्रह 'गीत-गुंज' सन् १९५४ ई० में प्रकाशित हुआ। 'गीत-गुंज' की भाव-भूमि वही है जो अर्चना और आराधना की है। यह तीनों रचनाएँ मूलतः निरालाजी के आत्म-समर्पण या प्रपत्ति-भावना की प्रतिनिधि हैं जो संभवतः उनके बढ़ते हुए शारीरिक और मानसिक विकारों के उपचार रूप में लिखी गई है।

सुख का दिन डूबे डूब जाय
तुम से न सहज मन ऊब जाय।[८०]

'गीत-गुंज' में कवि हृदय की साधना गहराई के साथ अंकित है। यत्र-तत्र बुद्धि-तत्त्व का पुट मिलता है, किन्तु हृदय की रागात्मक गति का स्फुरण ही अधिक हुआ है। ''तुलसी, सूर, मीरा के गीतों में जो रंजनगुण हैं, वह यहाँ भी हैं। असल में निराला के ये गीत वैयक्तिक दुःखों के साथ-साथ सामूहिक दुःखों को भी प्रकाशित करते हैं और ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जबकि बुद्धि का थोड़ा भी हस्तक्षेप हो।''[८१] जहाँ तक बुद्धि-तत्त्व के हस्तक्षेप की बात है, वह 'गीत-गुंज' में वर्तमान है।

वर्ण्यविषय की दृष्टि से 'गीत-गुंज' में भक्ति, श्रृंगार, प्रकृति और व्यंग्य-विषयक गीत हैं। प्रधानता भक्ति तथा प्रकृतिपरक गीतों की है। निरालाजी की सारी रचनाओं में व्याप्त प्रकृति सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का भाव बना हुआ है। ऋतु वर्णन सम्बन्धी गीत निरालाजी अपनी अस्वस्थावस्था में भी लिखते ही थे। कदाचित् प्रकृति की रमणीयता ही उन्हें आश्वासन देती रही थी। यही एक प्रवृत्ति थी, प्रकृति के प्रति सहज सम्बन्ध की, जो निराला की कविताओं में आदि से अन्त तक पाई जाती है।

''मूलतः 'गीत-गुंज' के गीत 'अर्चना' और 'आराधना' की नव्य-गीत परम्परा के हैं और उनकी भूमि भी उन्हीं की तरह सहज संवेद्य, सरल बोध-गम्य है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि काव्य की भूमि वहाँ उदात्त नहीं है। काव्य के उस स्तर की रक्षा करते हुए भी इन गीतों में नैसर्गिकता वरेण्य है। एक शब्द में उनकी यह परम्परा जन-गीतों की है और हिन्दी में जन-गीतों की विरलता है। जन-गीतों को हम लोक-गीतों से पृथक् देख रहे हैं। गीतिका के शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा यहाँ सहजगेयता है, लोकधुनों का प्रयोग। प्रतीक, भाव, व्यंजना, शैली और अभिव्यक्ति सब में ये गीत लोक-गीतों के अधिक निकट है।''[८२]

'गीत-गुंज' में कवि ने हृदयगत भावनाओं की अपेक्षा जीवन-दर्शन को अधिक विस्तार दिया है। डॉ० सुधाकर पाण्डेय ने इसकी भूमिका में लिखा हैः ''गीत-गुंज उस साधना-परम्परा का वह स्वर है, जिसे आत्मद्रष्टा ने जीवन के प्रांगण में देखा है।'' डॉ० सुधाकर पाण्डेय की यह मान्यता 'गीत-गुंज' में चरितार्थ है। इस काव्य-संग्रह के गीतों में भावों की अपेक्षा पौरुष और बौद्धिकता का आग्रह अधिक है। 'गीत-गुंज' ही नहीं, इससे और पूर्व से ही इनकी कविताओं में भावों की गौणता देखी जाती है। डॉ० सुधाकर पाण्डेय ने एक अन्य स्थल पर पुनः कहा है कि ''निरालाजी के पहले के गीतों से इधर के गीत इस माने में भिन्न हैं कि भावों के पीछे अपने पौरुष के कारण कल्पना की तितलियों को खुलकर खेलने का अवसर नहीं दिया।'' 'गीत-गुंज' जीवन की साधना के विविध चित्रों की चित्रशाला है। कवि ने कल्पना की अपेक्षा यथार्थ को अधिक प्रश्रय दिया है।

सांध्य-काकली

सांध्य-काकली निरालाजी द्वारा जीवन के अन्तिम दिनों में लिखी गई कविताओं का संग्रह है जिसका प्रकाशन उनकी मृत्यु के लगभग साढे सात वर्ष बाद सन् १९६९ ई० में हुआ। इस संग्रह के गीतों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यह गीत निरालाजी के भोगे हुए जीवन के प्रतिफल हैं। संभवतः इसीलिए अनुभूति की गहराई इस काव्य-संग्रह के गीतों में सर्वाधिक है। यहाँ पर कवि ने माधुर्य रस की स्त्रोतस्विनी ही बहा दी है। इस काव्य-संग्रह के सभी गीत आशावादी स्वर लिए हुए हैं और निराशावादिता इन गीतों की आत्मा को छू तक नहीं पाई।

सांध्य-काकली में गीतात्मकता के साथ-साथ संगीतात्मकता का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। नाद-सौन्दर्य के कारण गीतों का सौन्दर्य एवं संगीतात्मकता बढ़ गई है। यथाः-

"छन-छन-छल-छल जीवन प्रतिपल
बहता निर्मल, गंगा का जल,
सौरभ जैसे समीर मलय से।
विश्व विजय के-से लेखन-फल।"[८३]

काव्य-संगीत का सुन्दर सामंजस्य हमें निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शनीय है-

वारि वन वनवारि,
वनवारि वनवारि।
वारिज विपुलवारि
पुलवारि कुलवारि
द्रुम लता तुलवारि,
कूलकलि कुलवारि,
आकुल मुकुल वारि,
विहग संकुल वारि।।[८४]

संगीतात्मक तत्त्वों के नियोजन के बाद भी उपरिलिखित गीत का भाव बाधित नहीं होता और न ही काव्यत्व के कारण संगीतात्मकता खण्डित होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उनके इस काव्य-संग्रह में काव्य और संगीत अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है।

निराला के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि उनके गीत सांगीतिक तत्त्व और काव्य-तत्त्व से पूर्ण हैं। कुछ गीतों को निरालाजी ने राग-रागिनियों जैसी शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर लिखा है परन्तु फिर भी उनमें काव्य-तत्त्व हनित नहीं होता। जहाँ कवि ने श्रृंगारिक प्रवृत्तियों का उद्‌घाटन किया है, नारी और प्रकृति के अनुरागमय सौन्दर्य का चित्रण किया है, वहाँ भावगत लालित्य और भाषिक सौन्दर्य दर्शनीय है। समग्रतः यह कहें कि निराला को भाव और भाषा के अनुष्ठान में अद्वितीय सफलता मिली है तो कोई अतिशयाक्ति नहीं होगी। निराला का विद्रोही व्यक्तित्व-काव्य में सर्वत्र वर्तमान है। निराला पहले कवि हैं, जिन्होंने मुक्त छंद में खड़ी बोली हिन्दी-काव्य को इतना विस्तार दिया है। भाषा के क्षेत्र में भी कवि का देय अमूल्य है। उन्होंने हिन्दी भाषा को न जाने कितनी भाव-भंगिमा प्रदान की है। प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी में मुक्त छनद के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में श्री महेश नारायण शर्मा[८५] का नाम भले ही आता हो किन्तु इसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय तो निरालाजी को ही है।

*****

संदर्भ सूची

१. डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना (प्रथम) पृष्ठ १४.

२. डा० बुद्धसैन निहार - विश्व कवि निराला पृष्ठ १७.

३. डा० रामविलास शर्मा - निराला पृष्ठ ७.

४. डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना (प्रथम) पृष्ठ १७.

५. डा० रामविलास शर्मा - निराला का पत्र - महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम दिनांक ११.०१.१९२१.

६. डा० रामविलास शर्मा का पत्र - लेखक के नाम दिनांक २७.१०.१९७२.

७. विश्वम्भर अरूणः ''निराला'' स० कमलेश पृष्ठ १०.

८. डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना (प्रथम) पृष्ठ ४३४.

९. राजकुमार शर्माः महाकवि निरालाः संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ पृष्ठ २६.

१०. कुल्टीभाट, पृष्ठ १५.

११. वहीः पृष्ठ १६.

१२. कुल्टीभाट, पृष्ठ १६.

१३. निराला की साहित्य साधना (प्रथम), पृष्ठ ३०.

१४. निराला की साहित्य साधना (प्रथम), पृष्ठ ३९.

१५. पं० रामकृष्ण त्रिपाठी का लेखक को पत्र २०.०२.१९८१.

१६. कुल्टीभाट, पृष्ठ ७६ (तार आया - तुम्हारी स्त्री सख़्त बीमार है। अंतिम मुलाकात के लिए आओ। तब मेरी उम्र २२ वर्ष थी।). कुल्टीभाट, पृष्ठ १३७.

१७. निराला की साहित्य साधना (प्रथम), पृष्ठ ४५३.

१८. निराला की साहित्य साधना (प्रथम), पृष्ठ ४४३.

१९. पं० रामकृष्ण त्रिपाठी का लेखक को पत्र दिनांक २०.०२.१९८१.

२०. निराला की साहित्य साधना (प्रथम) पृष्ठ ४४३.

२१. सुब्रहमण्यम भारती और निराला के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ ७९.

२२. निरालाः ''देवी'' कहानी संग्रह, पृष्ठ ४९.

२३. शचीरानी गुर्टूः साहित्यदर्शन, पृष्ठ २२४.

२४. निराला की साहित्य साधना (प्रथम) पृष्ठ ४०.

२५. निराला की साहित्य साधना (प्रथम) पृष्ठ ४०.

२६. ''मतवाला'' - १० मई १९२४.

२७. निराला की साहित्य साधना (प्रथम) पृष्ठ ९३.

२८. निराला अभिनन्दन ग्रंथ, ३७ वाँ संस्करण, पृष्ठ ११४.

२९. भारत में विवेकानन्द आदि तथा कवितावली.

३०. श्री रामकृष्ण वचनामृत, (भाग ३) आदि.

३१. अनामिका, पृष्ठ ११८.

३२. अनामिका, पृष्ठ ११७.

३३. डा० जयनाथ नलिनः काव्य पुरूष निराला, पृष्ठ १३.

३४. अनामिकाः बनबेला, पृष्ठ ८६.

३५. रामरतन भटनागरः ''निराला'', पृष्ठ ४३.

३६. रामकृष्ण त्रिपाठी का पत्र, रामविलास शर्मा को, दिनांक १६.०२.१९४६.

३७. राज किशोर शर्माः निराला का जीवन वृत्त, पृष्ठ ३९.

३८. राज किशोर शर्माः निराला का जीवन वृत्त, पृष्ठ ३९.

३९. निराला की साहित्य साधना (प्रथम), पृष्ठ ३७९.

४०. राज किशोर शर्माः निराला का जीवन वृत्त, पृष्ठ ४१.

४१. डा० बुदद्धसैन निहारः विश्वकवि निराला, पृष्ठ ३१.

४२. डा० उपेन्द्र कुमार शर्माः निराला और नजरूल जीवन वृत्त एवं व्यक्तित्व, पृष्ठ १३.

४३. सरस्वती, दिसम्बर, १९६१.

४४. राज किशोर शर्माः निराला का जीवन वृत्त, पृष्ठ ४३.

४५. डा० उपेन्द्र कुमार शर्माः निराला और नजरूल.

४६. राज किशोर शर्माः निराला का जीवन वृत्त.

४७. डा० बुदद्धसैन निहारः विश्वकवि निराला.

४८. धनंजय वर्मा, निराला काव्य पुनर्मूल्यांकनः पृ० १४२-१४३.

४९. डॉ० शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य, पृ० ७६.

५०. डॉ० रामकुमार सिंह, निराला और उनकी गीतिका, पृ० ५७.

५१. डॉ० शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य, पृ० ७७.

५२. निराला, तुलसीदास, पृ० ११.

५३. डॉ० शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य, पृ० ७७ .

५४. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ३६.

५५. वही, पृ० ६-७.

५६. T.S. Elliot : Waste Land, Lines – 432-433.
'Datta, Dayadhvam, Damyata, Shantih shantih Shantih'.

५७. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ४६.

५८. गंगाप्रसाद पांडेय, महाप्राण निराला, पृ० २००.

५९. निराला, अणिमा, पृ० १२.

६०. डॉ० शशिप्रभा सिन्हा, निराला के काव्य प्रतिमान और उनका काव्य, पृ० ३४.

६१. वही, पृ० ३६.

६२. निराला, बेला, पृ० ३८.

६३. संपादक ओंकार शरद, निराला-स्मृति-ग्रन्थ (प्रो० सीताराम दीन के लेख 'बेला' से उद्धत), पृ० १३५.

६४. निराला, बेला, पृ० १००.

६५. धनंजय वर्मा, निराला काव्य पुनर्मूल्यांकनः पृ० १७६.

६६. डॉ० बच्चन सिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० ४४.

६७. निराला, नये पत्ते, पृ० ४४.

६८. वही, पृ० ४१.

६९. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, वही, पृ० २१८-२१९.

७०. डॉ० बच्चन सिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० १३१.

७१. डॉ० रामविलास शर्मा, निराला, पृ० १९१.

७२. जानकीवल्लभ शास्त्री, अवन्तिका, अगस्त १९५४.

७३. प्रभाकर माचवे, साहित्य (त्रैमासिक), जनवरी '५१.

७४. निराला, अर्चना की स्वयोक्ति.

७५. वही

७६. डॉ० शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य, पृ० ७६.

७७. निराला, आराधना, पृ० ८.

७८. वही, पृ० ५४.

७६. धनंजय वर्मा, निराला काव्य पुनर्मूल्यांकनः पृ० १३०.

८०. निराला, गीत-गुंज, पृ० ४७.

८१. ओंकार शरद (सं०), निराला-स्मृति-ग्रन्थ (डॉ० गोपाल जी स्वर्णकिरण के लेख से उद्धत).

८२. धनंजय वर्मा, निराला काव्य पुनर्मूल्यांकनः पृ० १३५.

८३. श्रीनारायण चतुर्वेदी (सं०), सांध्यकाकली, पृ० ७८.

८४. वही, पृ० ५२.

८५. डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२३.

अध्याय-2

लम्बी कविता स्वरूप विश्लेषण एवं अन्य कविताओं से सम्बन्ध

- लम्बी कविताः रचना–विधान एवं संरचनात्मक तत्त्व
- महाकाव्य और लम्बी कविता
- खण्डकाव्य और लम्बी कविता
- प्रगीत और लम्बी कविता
- लम्बी कविता और छोटी कविता
- हिन्दी में लम्बी कविताः उद्‌भव और विकास
- संदर्भ सूची

"नहीं होती, कहीं भी खत्म कविता नहीं होती
कि वह आवेग त्वरित कालयात्री है।"[1]

मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'चकमक की चिंगारियाँ' के अन्तिम भाग की यह दो पंक्तियाँ लम्बी कविताओं के विशिष्ट वैशिष्ट्य की अवधारणा को पुष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। कविता को 'आवेग त्वरित काल यात्री' मानने वाला कवि कविता को बाकायदा समाप्त करने की रस्म निभा ही नहीं सकता।

प्रत्येक काव्यरूप अपने युग और समाज से प्रभावित होता है। जब भी समाज, परिस्थितियाँ और युगबोध परिवर्तित होते हैं, तब उस बदले हुए युगबोध की अभिव्यक्ति के लिए एक नए काव्य-माध्यम की तलाश कवि के लिए जरूरी हो जाती है। आधुनिक युग की बदलती परिस्थितियों में भी जीवन की सम्पूर्णता विराटता या भव्यता को चित्रित करने वाले, प्रबन्ध या प्रगति जैसे परम्परागत काव्य-विधान अप्रासंगिक हो गये हैं। बौद्धिकता प्रबल हो रही है। कवि के लिए जीवन की यथार्थवादी चेतना तथा युग-बोध प्रबल हो रहा था। कवि जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं को उघाड़ कर रख देना चाहता है, कविता का इतिहास संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। ऐसे में कवि को तलाश थी ऐसे काव्य-माध्यम की जो उसकी बदलती संवेदनाओं को वहन कर सके। परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त, नए काव्य-सत्य को वाणी दे सकें, आत्मगत भावों तथा वस्तुगत स्थितियों के परस्पर संघात से उभरते अंतर्विरोध को सशक्त अभिव्यक्ति दे सके। अभिव्यक्ति का यह स्वरूप उसको कविता के किसी बँधे बंधाये ढाँचे में नहीं ढाल सकता था। अभिव्यक्ति की इस समस्या से जूझते हुए ही कवि लम्बी कविता के रचना विधान की ओर मुड़ा।

साहित्य में लम्बी कविता की अवधारणा आधुनिक युग की चेतना के परिणाम स्वरूप अवतरित हुई है। यह पूर्णतः सत्य है कि आधुनिक जीवन की संश्लिष्ट एवं जटिल जीवनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए परम्परागत प्रबन्धात्पक रूप-विधानों की सार्थकता के सामने प्रश्न चिह्न लग गया। साहित्य में अब ऐसे अभिव्यक्ति-माध्यम की आवश्यकता हुई जो नई संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सफल हो। परम्परा के रूप में चली आ

रही रूढ़ियों से पूर्णतः मुक्त हो और जो आधुनिक जटिल संवेदनाओं द्वारा प्रमाणित हो। लम्बी कविता इसी अभावपूर्ति के प्रयास के परिणामस्वरूप अस्तित्त्व में आई। किसी प्रचलित रूप-विधान का अप्रासंगिक हो जाना वस्तुतः रचना की नव्य-नव्यतर प्रक्रियाओं का उत्स होता है रचना-प्रक्रिया के विषय में सच ही कहा गया है-

"रचना-प्रक्रिया वस्तुतः एक खोज और ग्रहण का नाम है"[२]

"हम कह सकते हैं कि अपने व्यापक अनुभवों को वृहद फलक पर प्रस्तुत करने के लिए लम्बी कविता अपने अस्तित्त्व में आई है। समसामयिक जीवन सन्दर्भों में हमारा आज का सारा जीवन आ जाता है जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियाँ तो होती ही हैं, धर्म, शिक्षा, कला-संस्कृति और अनेक भेद-विभेद सम्बन्धी स्थितियाँ भी होती हैं। लम्बी कविता से यह अपेक्षा की जाती है कि उसमें बाहरी जीवन का चित्रण हो, पर व्यक्ति के भीतर प्रवेश करके उसके दर्द की अभिव्यक्ति भी हो। इसके साथ ही यह देखना भी आवश्यक है कि उसमें अभिव्यक्ति की कलात्मकता का स्तर कितना प्रभावी है।"[३]

मूलतः लम्बी कविता की उत्पत्ति प्रबन्ध काव्य के विकल्प के रूप में हुई है। यह प्रबन्ध काव्य के विकल्प के रूप में किन्तु उससे भिन्न स्वरूप के साथ एक स्वतन्त्र विधा के रूप में आई। इस प्रकार- "लम्बी कविता प्रबन्धात्मक काव्यरूपों के विकल्पस्वरूप उत्पन्न हुई विधा है जिसके पीछे आधुनिक युगीन स्थितियों की अनिवार्यता है इस अनिवार्यता के तहत लम्बी कविता प्रगति और प्रबन्ध से भिन्न विशिष्ट काव्य रूप है।"[४]

लम्बी कविता की परिभाषा के विषय में भी विद्वानों में अलग-अलग मान्यताएँ प्रचलित हैं यथा-

१. **हरिवंशराय बच्चनः** "लम्बी कविता वह है जो लम्बी हो।"[५]

२. **राजीव सक्सेनाः** "आज की लम्बी कविता एक अनुभूति एक क्षणिक-भावावेग, एक संघटना खण्ड को उसके समस्त सन्दर्भों और सम्पूर्ण परिवेश से जोड़ने की प्रक्रिया में एक व्यापक और जटिल अनुभव को प्रतिफलित करती है।"[६]

३. **डा० रामदरश मिश्रः** ''लम्बी कविता वह है जो लम्बी होने के साथ-साथ जीवन के कई घुमावदार मोड़ों से गुजरती हुई एक जटिल यथार्थ का बोध और अनुभूति उभारती हो। यह अपने सफल रूप में स्वतन्त्र ईकाई कही जा सकती है। असफल रूप में इसे छोटी कविताओं का फूहड़ विस्तार या द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मक कविता की वशंज कह सकते हैं।''[७]

४. **डा० परमानन्द श्रीवास्तवः** ''कविता में प्रबन्धात्मकता की कला कई मोड़ों से होकर उस काव्य-विधा तक पहुँची है, जिसे हम लम्बी कविता कहते हैं।''[८]

५. **डा० रमेश कुन्तल मेघः** ''लम्बी कविताएँ एक सम्पूर्ण परिवेश और जटिल सन्दर्भों का आयतीकरण करती हैं। इसीलिए इनमें अनुभूति खण्डों का गड्ड-मड्ड काव्य-वस्तु में, कवि और व्यक्ति के, कवि और समाज के, द्वन्द्वों का साक्षात्कार कराता है।''[९]

६. **डा० नरेन्द्र मोहनः** ''लम्बी कविताओं की अनिवार्य सृजनता के लिए बाध्य करने वाला प्रमुख तत्त्व सृजनात्मक तनाव ही है, यह सृजनात्मक तनाव विविध रूपों में, आयामों में आजकल के जीवन में व्याप्त रहता है। यह तनाव व्यक्ति और व्यक्ति के बीच का, संस्कृति, भाषा और राजनीतिक शक्तियों के बीच का तो है ही, बुनियादी तौर पर और सृजनात्मक स्तरों पर यह सामाजिक स्तरों से प्रेरित विचार और लहू के बीच के रिश्तों का तनाव है- एक क्रूर परिस्थिति में जिन्दा रह पाने की तीव्र बेचैनी, गहरी वेदना हर जोखिम उठाकर मानवीय प्रेम के धरातल को पुष्ट करते रहने की

बलवती इच्छा से पैदा हुआ तनाव; तनाव की इन्हीं सन्दर्भों में, धरातलों, आयामों, रंगों और आशयों से निर्मित होती है लम्बी कविता। तनाव की इस विविध धर्मिता का नाम है लम्बी कविता, जो महज वैचारिकता से सध नहीं सकती, न कोरे संवेग, आवेग और उत्तेजना से निभ सकती है।''[१०]

कविता के परिवर्तित नए स्वरूप के साथ आलोचकों के लिए भी इस नए रचना विधान को परिभाषित करना आवश्यक हो गया। सर्वप्रथम डा० नरेन्द्र मोहन ने लम्बी कविता को आज के कवि के लिए एक जरूरी काव्य माध्यम के रूप में स्वीकार किया। वे मानते हैं कि आधुनिक जीवन की जटिल वास्तविकता ने ही कवियों को बाध्य किया कि वे क्लासिकल ढाँचे की जकड़न से मुक्त हों। डा० रामदरश मिश्र के अनुसार लम्बी कविता का विशेष महत्व है। लम्बी कविता जहाँ एक ओर अपने मूर्त परिवेश को चित्रित करती है वहीं दूसरी ओर जिन्दगी के वर्त्तुल एवं संश्लिष्ट स्तरों को व्यापक रूप से अभिव्यक्ति प्रदान करती है। वास्तव में लम्बी कविता एक लय की अभिव्यक्ति नहीं है, वरन जिन्दगी की अनेक लयों की संश्लिष्ट लय है। कविता के केन्द्र में किसी भी विचार को उसके व्यापक परिप्रेक्ष्य के साथ प्रस्तुत करने की अनिवार्यता ही कवि को लम्बी कविता की ओर उन्मुख करती है।

सबसे पहले 'परिवर्तन' कविता में बिना किसी कथा के आग्रह के कवि परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया और स्वरूप को विभिन्न बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। यद्यपि इस कविता में 'दीर्घकालिक सृजनात्मक तनाव' जैसे वे तत्त्व नहीं हैं जो बाद में लम्बी कविता के पहचान बिन्दु बने। लेकिन यहाँ सभी बिंब परिवर्तन के केन्द्रीय विचार से जुड़े हुए हैं। एक ही विचार बिन्दु से फैलने वाली यह एक महत्वपूर्ण लम्बी कविता है। इसी क्रम में यदि 'प्रलय की छाया' को देखें तो वहाँ यद्यपि कथा का आश्रय लेने के कारण प्रबन्ध विधान का आभास होता है लेकिन कहीं भी कविता प्रबन्ध के परम्परागत ढाँचे को पूरी तरह नहीं अपनाती। इस कविता की विशिष्टता है इसकी लय संयोजना। कहीं-कहीं कविता की लय

भी गीतात्मक पद्धति के अनुकूल लगती है किन्तु पूरी कविता की परिकल्पना जिस नाटकीय विधान को सामने लाती है कवि जिस तरह छोटे-छोटे तनाव शिखर रचता है ये सभी तत्त्व इस कविता को लम्बी कविता के रचना-विधान को ही निकट रखते हैं। 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' में लम्बी कविता की विशिष्टता की पहचान करने वाले तत्त्व अधिक स्पष्ट होकर सामने आते हैं। यहाँ युद्ध की वस्तुस्थिति में राम का अन्तःसंघर्ष, पूरी कविता में दीर्घकालिक सृजनात्मक तनाव की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करता है। कवि नाटकीय पद्धति से बिम्बों, विवरणों, आत्मालापों तथा पात्रगत संवादों के बीच संतुलन साधता है।

छायावादी युग में लिखी गई ये सभी कविताएँ लम्बी कविता के क्रमिक विकास को सूचित करती है। इन कविताओं में लम्बी कविता के किसी न किसी तत्त्व को प्रमुखता मिली, लेकिन यह जरूर है कि एक नए काव्य माध्यम के लिए छटपटाहट इस युग में ही दिखाई पड़ने लगी। लम्बी कविताओं का यह प्रारम्भिक दौर प्रबन्धात्मक ढाँचे की जकड़बन्दी से मुक्त होने का पहला काव्यात्मक अभियान था।

जब समकालीन कवि के पास अनुभवों की विषमता और गहराई आ जाती है और रचनाकार पर बाहर-भीतर के अत्यधिक दवाब पड़ते हैं जिनकी सम्यक अभिव्यक्ति छोटी कविता में नहीं हो पाती तो उनका अनुभावन लम्बी-कविता में उतर आता है। कहा जा सकता है कि अपने व्यापक अनुभवों को वृहद फलक पर प्रस्तुत करने के लिए ही लम्बी-कविता अपने अस्तित्त्व में आई हैं, जिसे अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसके माध्यम से उन अनुभव-खण्डों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता है जो सामान्यतः अन्य काव्य-रूपों में इस रूप में समाहित नहीं हो सकते।

लम्बी कविताः रचना–विधान एवं संरचनात्मक तत्त्व

लम्बी कविताओं के रचना-विधान के संबंध में कई प्रकार की परस्पर विरोधी मान्याताएँ प्रचलित हैं। क्या कविता का लंबायमान होना लम्बी कविता के लिए पर्याप्त है? केवल लंबाई में फैली हुई और प्रदीर्घ दिखने वाली कविता प्रगीत भी हो सकती है। लम्बी कविता बनाने वाली कोई केन्द्रीय स्थिति ही होती है, जिसके इर्द-गिर्द संदर्भ, प्रसंग और अनुस्पंदन उभरते रहते हैं। कई बार छोटी कविताओं को एक क्रम में रखकर फैला दिया जाता है

और इस ढंग की प्रदीर्घता के आधार पर इसे लम्बी कविता कर दिया जाता है। ऐसा करना कहाँ तक उचित है? छोटी कविताओं की क्रमबद्धता और परस्पर संबद्धता के बल पर लम्बी कविता का विधान करने वाली युक्तियाँ, सामान्यतः लम्बी कविता की प्रकृति और रूपविधान के अनुकूल नहीं है। हाँ, यह उस हालत में लम्बी कविता का एक रचनारूप हो सकता है जब इस क्रमबद्धता और सम्बद्धता को सृजनात्मक धरातल पर अंतर्गृथित करने वाला कोई केन्द्रीय व्यापार, विचार या बिम्ब हो।

लम्बी कविता के रचना विधान में कुछ अनिवार्य तत्त्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ये तत्त्व ही परस्पर मिलकर लम्बी कविता का स्वरूप तैयार करते हैं। लम्बी कविता भावात्मक आवेश की क्षणिक अभिव्यक्ति नहीं होती अपितु यह लम्बी पीड़ादायक संघर्षपूर्ण मानसिकता में रूप लेता हुआ काव्य विधान है। इसके रचना विधान में जो तत्त्व सहायक होते हैं वह हैं-

१. अन्विति,

२. नाटकीयता,

३. प्रदीर्घता,

४. विचार तत्त्व,

५. सृजनात्मक तनाव, और

६. अन्तहीन अन्त।

अन्विति लम्बी कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। लम्बी कविताएं बाह्य रूप से तो असम्बद्ध या विश्रृंखल दिखाई पड़ सकती हैं किन्तु आन्तरिक धरातल पर ये तथ्यों, कथात्मक अंशों, प्रसंगों और संदर्भ संकेतों को गूँथकर एकसूत्रता में बाधें रखती है। आधुनिक परिवेशगत जटिलताओं संश्लिष्टताओं के साथ बाह्य संघर्ष के साथ विभिन्न आयाम और आन्तरिक द्वन्द्व के अनेक स्तर पर इस कविता की रचना प्रक्रिया को जटिल बनाते हैं। लम्बी कविता का आधार विचार या बिम्ब पर निर्भर करता है। ''यह अनुमान किया जा सकता है कि लम्बी कविता का गठन जहाँ बिम्बात्मक हो वहाँ अन्विति और अखण्डित दिखे और जहाँ बिम्ब संकेन्द्रण पर आग्रह न होकर सन्दर्भों और प्रसंगों की

सन्निधि और टकराव पर बल दिया गया हो, वहाँ अन्विति बिम्बात्मक और वैचारिक मिलते हैं। पहले प्रकार की अन्विति में सभी विवरण, सन्दर्भ और प्रसंग केन्द्रीय बिम्ब द्वारा संतुलित रहते हैं तो दूसरी अन्विति में किन्हीं विचार-सूत्रों से जुड़े बिम्बों का अनवरत क्रम।''[११]

लम्बी कविता विभिन्न अनुभव-खण्डों, व्यक्ति, समाज और राजनीति, मनोविज्ञान और इतिहास, मिथक और फैंटेसी, भूत, भविष्यत् और वर्तमान, धर्म और नीति राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज को अपने कथानक में समेट कर चलती है किन्तु उसमें ये सभी आयाम, स्थितियाँ, विषय कला ग्रथित होकर एक संवेदनात्मक उद्देश्य को प्रकट करते हैं। ''यह अनेकरूपता आन्तरिक अन्विति तभी प्राप्त कर पाती है जब किसी सर्जनात्मक सूत्र को पकड़कर गहरे शैल्पिक अनुशासन में उन्हें संगठित करता है। तब असम्बद्ध प्रसंगों-सन्दर्भों में भी एक सम्बद्धता दिखती है, अनेकरूपता में एकरूपता आ जाती है।''[१२]

प्रगीत तथा छोटी कविताओं की अन्विति का मूल उद्देश्य एक ही भाव को बाँधकर रखना होता है। गीत भावावेशमयी अवस्था में केवल व्यक्ति विशेष की सीमा में रहता है। लम्बी कविता की वैचारिकता का सम्बन्ध सामाजिक यथार्थ से होता है। लम्बी कविताओं में वाह्य रूप (भाषा, छन्द, बिम्ब आदि) में विषमता दिखाई पड़ सकती है। परन्तु आन्तरिक रूप से यह अन्विति को तभी प्राप्त कर पाती है जब वह सभी विवरणों तथा प्रसंगों के केन्द्रीय सूत्र या विचार द्वारा संतुलित या संगठित करती है।

लम्बी कविता में बिम्बात्मक एवं वैचारिक - दोनो प्रकार की अन्विति एक साथ रह सकती है इन दोनों प्रकार की अन्वितियों का परस्पर टकरावपूर्ण संयोजन लम्बी कविता की संरचना में एक संतुलित आधार तैयार करता है। इस तरह की दोनों संरचनाएं लम्बी कविता में देखी जा सकती हैं। प्रथम स्थिति में प्रक्रिया, बिम्ब से शुरू होकर विचार की ओर बढ़ती है तथा दूसरी में विचार से शुरू होकर बिम्ब की ओर। यह प्रक्रिया विचार से विचार या बिम्ब से बिम्ब की ओर भी हो सकती है। जहाँ तक हिन्दी में रचित लम्बी कविताओं की बात है दोनों प्रकार की अन्विति वाली लम्बी कविताएँ हिन्दी साहित्य में उपलब्ध होती हैं। मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' संवेदना को बिम्बों, प्रतीकों आदि में

परिवर्तित कर वैचारिक अन्विति प्रदान की गई है। निराला कृत 'राम की शक्ति पूजा' में आख्यान द्वारा ही सर्जनात्मक तनाव को बिम्बात्मक रूप प्रदान किया गया है। अज्ञेय अपनी कविता 'असाध्यवीणा' में आख्यान से शुरू होकर बिम्ब की ओर अग्रसर होते हैं। तथा राजकमल चौधरी द्वारा अपनी कविता 'मुक्ति प्रसंग' में सर्जनात्मक तनाव को केन्द्रीय बिम्ब-प्रतीक द्वारा संतुलन प्रदान किया गया है। धूमिल ने अपनी कविता 'पटकथा' में रूपक द्वारा प्रसंगों, कथा-सन्दर्भों एवं काव्य को एक विचार सूत्र में बाँधकर एक अन्विति प्रदान की है, किन्तु आख्यान इस कविता पर हावी नहीं होने पाता। अपितु भावों की टकराहट कमला के मन का अर्न्तद्वन्द-कविता को आकार देती चलती है। 'वह एक संध्या थी' पंक्ति की आवृति इस कविता में अनेक वार होती है। किन्तु इसके कारण उसके पूर्व और उत्तर में नई स्थितियाँ और टकराहटें होती हैं कविता की लयात्मकता इसे अराजक होने से बचाती हैं। भाग्य की विडम्बना कमला के सन्दर्भ में लय और विधायक टेक इसमें अन्विति बनाए रखते हैं। इस प्रकार अन्विति लम्बी कविता का अनिवार्य तत्त्व है इसके अभाव में लम्बी कविता का स्वरूप सम्भव नहीं है।

नाटकीयता लम्बी कविता का एक और अनिवार्य तत्त्व है। आधुनिक युग में जीवन की जटिलता और संश्लिष्टता के कारण व्यक्ति के दैनिक व्यवहार में भी अनेक जटिलताएँ उत्पन्न हो गई हैं। परिवेशगत असंगतियाँ, राजनीतिक गतिविधियाँ, समाज तथा परिवार में उत्पन्न अन्तर्विरोधों ने मनुष्य के व्यवहार में भी छद्म और द्वैध उत्पन्न कर दिया है। लम्बी कविता वर्तमान समाज, परिवेश और व्यक्ति की स्थितियों, परिस्थितियों, गतिविधियों, सोच और निर्णय की जीवन गाथा है अतः इसके संरचना विधान में नाटकीयता स्वाभाविक और अनिवार्य गुण माना गया है। लम्बी कविता में नाटकीयता के महत्व के विषय में डा० नरेन्द्र मोहन कहते हैं।- ''''लम्बी कविता के रचना-विधान का अनिवार्य लक्षण है नाटकीयता। इसके बिना आज के जीवन की अन्तः विरोधी परिस्थितियाँ उजागर नहीं हो सकती। स्थितियों के पीछे की स्थितियों, व्यवहारों, मानसिक-आत्मिक क्रिया कलापों को अभिव्यक्त करने के लिए नाटकीय विधान लम्बी कविता की अनिवार्य संरचना माना जा सकता है''[१३] डा० बल्देव वंशी के अनुसार - ''नाटकीयता लम्बी कविता का अनिवार्य गुण

है। बिना नाटकीय रचना-विधान के युगीन यथार्थ की छद्मता, द्वैधता और अन्तर्विरोध पूर्ण स्थिति के विविध पक्षों, रंगों को उखाड़ फैंकना सम्भव नहीं। युगीन यथार्थ के बहुरूपीयेपन के मुखौटों को छीलने उतारने के लिए नाटकीय संरचना ही कारगर सिद्ध हो सकती है।''[१४]

वस्तुतः लम्बी कविताओं में नाटकीयता का संचालन कविता स्वयं करती है। सर्जना के क्षण में कविता को कविता बनाए रखना अनिवार्य है अथवा कविता की सबसे पहली कसौटी उसका कविता बने रहना ही है। लम्बी कविताओं को पढ़ते हुए पाठकों को एक प्रकार की मंचीय अनुभूति होती है। इस अनुभूति को पाठक कभी चरित्रों द्वारा तो कभी उक्तियों के द्वारा प्राप्त करता है। समग्रता में लम्बी कविताओं में नाटकीयता का तात्पर्य यही है कि इन कविताओं को पढ़ते हुए पाठक कविता के केन्द्रीय पात्र, केन्द्रीय विचार व केन्द्रीय मनोदशा के अति समीप हो जाता है और सारे दृश्य उसकी कल्पना से आँखों के आगे साकार होने लगते हैं। डा० बल्देव वंशी के अनुसार आधुनिक गतिशील एवं सतत परिवर्तनीय यथार्थ को पकड़ने की विधि लोचदार होती है। वे कहते है- ''लोच पात्रों, स्थितियों, सम्बन्धों, संवादों के आपसी टकराव या नाटकीय रचाव से लाई जा सकती है, जिससे स्थितियों के पीछे की स्थितियों चेहरों के पीछे छिपे असली चेहरों और आशयों को नग्न रूप में सामने लाया जा सके।''[१५] डा० नरेन्द्र मोहन का नाटकीयता के सम्बन्ध में विचार है- ''कार्यों और व्यापारों को नाटकीय विधान में प्रस्तुत करके अन्तर्विरोधों का बोध जगाया जा सकता है। इसमें नाटकीय संवादों की योजना विशेष कारगर हो सकती है। लम्बी कविता की संरचना में जिन गहरे कलात्मक संयम की आवश्यकता होती है वह भी नाटकीयता विधान द्वारा प्रभावी तौर पर सम्पन्न हो सकता है।''[१६]

मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' नाटकीयता को अनेक स्थलों पर गहरी अनुभूति से प्रकट करती है। इस कविता के आरम्भ में ही एक नाटकीय विधान दृष्टिगत होता है। इस कविता के तीसरे अंश में जो प्रोसेशन दिखाया जाता है, वह रंगमंचीय विधान के लिए एक भव्य योजना है। इस अंश में गैसलाइट, पंक्तियों के साथ-साथ वस्त्र-आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, सैनिक तथा अन्य कई लोगों का वर्णन नाटकी की संवेदना को मूर्त करता है। निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' नामक लम्बी कविता में भी नाटकीयता का सफल निर्वाह

हुआ है। कविता का आरम्भ ही 'रवि हुआ अस्त' नाटकीय व्यापार से होता है। रवि के अस्त होने के संकेत में भी नाटकीयता है इसके बाद युद्ध वर्णन में तो आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अभिनय के अनेक सुन्दर प्रसंग हैं।

प्रदीर्घता या लम्बाई भी लम्बी कविता की एक अनिवार्य विशेषता है। लम्बी कविता की लम्बाई और विस्तार के विषय में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं।

डा० हरिवंश राय बच्चनः- ''लम्बी कविता वह है जो लम्बी हो।''[१७]

राजीव सक्सेनाः- ''लम्बी कविता प्रबन्ध काव्य का संस्करण है''[१८]

डा० नरेन्द्र मोहनः- ''केवल लम्बाई में फैली हुई या प्रदीर्घ दिखने वाली कविता प्रगीत भी हो सकती है जिसमें लम्बी कविता का एक गुण भी न हो। लम्बी कविता को लम्बी बनाने वाली कोई केन्द्रीय स्थिति ही होती है, जिसके इर्द-गिर्द सन्दर्भ-प्रसंग और अनुस्पंदन उभरते रहते हैं।''[१९]

लम्बी कविता के फलक में 'विचार तत्त्व' प्रमुख कारण है जो उसे प्रदीर्घता के लिए अवसर प्रदान करता है। कविता की अन्विति के लिए भी विचार को आवश्यक माना गया है। वस्तुतः लम्बी कविता की प्रदीर्घता में विचार का अनिवार्य योग होता है। अतः लम्बी कविता केवल आकारगत लम्बाई के कारण ही लम्बी नहीं होती हैं, अपितु लम्बाई के मूल में किसी अनुभूति या विचार की उपस्थिति होती है। इस प्रकार लम्बी कविता में लम्बाई उसके कथ्य, या संवेदना से अलग होकर अपने आप में स्वतन्त्र या मुक्त नहीं है। उसका अपना कोई अलग अस्तित्त्व नहीं है और वह कविता की रचना प्रक्रिया से आन्तरिक रूप से जुड़ी हुई एक अनिवार्यता हैं अनेक छोटी-छोटी कविताओं को जोड़कर उनकी वाह्य लम्बाई तो बढ़ाई जा सकती है, लेकिन इस उद्योग से लम्बी कविता के स्वरूप को नहीं प्राप्त किया जा सकता। कभी-कभी छोटी-छोटी कविताओं को भी क्रम में रखकर, और एक दूसरे से सम्बद्ध कर लम्बी कविता का रूप दे दिया जाता है। यह उस परिस्थिति में कविता का रूप ले सकता है जब पूरी कविता को सर्जनात्मक धरातल पर अन्तर्ग्रहीत करने वाला कोई बिम्ब या विचार हो। सुमित्रानंदन पन्त की कविता 'परिवर्तन'एक ऐसी ही कविता है। अगर वाह्य रूप से देखा जाए तो इस कविता में स्वतन्त्रत काव्य खण्डों का सम्बद्धता पूर्वक

संकलन दिखाई पड़ता है। किन्तु निस्संदेह यह एक लम्बी कविता है क्योंकि परिवर्तन की बिम्बात्मकता में पूरी कविता गम्भीरतापूर्वक जकड़ी हुई है। यह सत्य है कि इस पद्धति पर लिखी गई लम्बी कविताएँ सफल नहीं हुई हैं। लम्बी कविता के रचना विधान में एक और पद्धति देखने को मिलती है इसमें कविता की व्याख्या कर उसे गद्यात्मक रूप दिया जाता है और उसके माध्यम से संवेदना की जटिलता को व्यक्त किया जाता हैं इस प्रक्रिया का दोष यह हे कि इसमें कविता की लम्बाई व्यर्थ में बढ़ती है। इस प्रकार लम्बी कविता आकार की दृष्टि से तो लम्बी अवश्य होती हैं किन्तु इनकी लम्बाई अनियंत्रित, असीम और अराजक नहीं होती। लम्बी कविता में अनुभूति-विचार एवं तनावयुक्त अन्तः प्रसंग ही आपस में सघनतापूर्वक गुँथकर उसे प्रदीर्घता प्रदान करते हैं

लम्बी कविता का एक महत्वपूर्ण तत्त्व है विचार तत्त्व। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के हमारे परिवेश, हमारी जीवन-पद्धति, हमारी भावना, हमारे विश्वास और अन्धविश्वास, हृदय, मन, मस्तिष्क और चिन्तन-मनन की बनी बनाई परिपाटी को निश्चित रूप से हिला दिया है। ज्यों-ज्यों जीवन के कठोर यथार्थ की बाध्यताएँ प्रत्यक्ष होती गई और संघर्ष से पलायन करना जीवन में असम्भव होता गया, त्यों त्यों इस प्रकार की सांसारिकता से मुक्ति के लिए कलाकार की छटपटाहट भी बदली गई। परिणामस्वरूप साहित्य के क्षेत्र में भी भाव तत्त्व का स्थान विचार तत्त्व ने ले लिया। विचार या चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है विचार की उत्पत्ति समस्या से होती है और जब तक वह समस्या हल नहीं हो जाती, तब तक यह निरन्तर क्रियाशील रहता है। विचार-प्रक्रिया में वास्तव में एक प्रकार का प्रवाह होता है, क्योंकि समस्या पर चिन्तन के समय उससे सम्बन्धित अन्य समस्या भी सामने आती हैं।

डा० बल्देव वंशी के अनुसार कविता में विचार तत्त्व की मौजूदगी को पाँच विशेष अवस्थाओं, चारित्रिक गुणों में बाँटकर देखा जा सकता है। लम्बी कविताओं में इन तात्विक गुणों का दखल और भी गहरा एवं अनिवार्य होकर उभरा है। ये अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

१. **परिज्ञानः** संक्षेप में वस्तुस्थिति का वह व्यापक पूर्ण ज्ञान ही परिज्ञान है जिसमें कविता मानसिक क्षमताओं-स्मृति, कल्पना, अनुभव संवदेना आदि का देशकाल की शर्तों पर प्रत्यक्षीकरण किया जाता है।

२. **अनुचिन्तनः** प्रत्यक्षीकरण में बाहरी संवेदना-प्रक्रिया अधिक मुखर रहती है तो अनुचिन्तन में व्यक्ति के भीतरी पक्ष भी अधिक सक्रिय हो उठते हैं तथा तनाव की दिशा में प्रभावी कार्य करते हैं।

३. **द्वन्द्वात्मक तनावः** युग की स्थितियाँ-सम्बन्धों, व्यवहारों की स्वाभाविक परिणतियों के कारण भी आज के व्यक्ति की मानसिकता द्वन्द्वपूर्ण है। यह द्वन्द्व और इसके कारण उत्पन्न तनाव आज के व्यक्ति की नियति बन गया है।

४. **निष्कर्षात्मक प्रकृतिः** विचार की प्रकृति निष्कर्षात्मक होती है किन्हीं निर्णयों या निष्कर्षों से विहीन विचार की कल्पना काव्य में आज सम्भव नहीं है।

५. **संवेदनात्मक उद्देश्यः** प्रत्येक कवि जाने-अनजाने किन्हीं हेतुओं से परिचालित होता है। इन हेतुओं को उसका कथ्यात्मक उद्देश्य कहा जा सकता है। विभिन्न काव्य तत्त्वों का विशिष्ट संयोजन संवेदनात्मक उद्देश्य में निहित होता है।

मुक्तिबोध कृत 'अंधेरे में' विचार तत्त्व की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कोटि की कविता है। इस कविता में कवि का वैचारिक चिन्तन पूरी तरह व्यक्त हुआ है। स्वतन्त्रता के पश्चात स्वाधीन भारत में घटित घटनाओं की अनुभूति कर कवि ने वैचारिकता प्रदान की है। विचारों के टकराहट और अन्तर्विरोधों का जो स्वरूप इस कविता में दृष्टिगत होता है वह स्वयं में अद्वितीय है।

लम्बी कविता के रचना-विधान में सर्जनात्मक तनाव का अनिवार्य योगदान होता है। सर्जनात्मक तनाव द्वारा ही लम्बी कविता अपनी प्रदीर्घता प्राप्त करती है। कवि जब सृजन कर्म करता है तो उसके मूल में एक प्रकार की प्रेरणा या कारण कार्य करता है। इस कारण का दबाब कवि के विचार तन्त्र को निरन्तर आडोलित करता रहता है। और एक प्रकार का दबाब तैयार होने लगता है। यह दबाब जब एक सीमा से अधिक होने लगता है तो कवि अपने इस दबाब से मुक्ति पाने के लिए सृजन कार्य के लिए विवश हो जाता है।

''सृजनात्मक चेतना जीवनगत तनावों की सुदीर्घ श्रृंखला में जकड़ी है। ..... लम्बी ही नहीं समकालीन छोटी कविता का उत्स भी तनाव और यातना का बिन्दु है। उसके रचना कार्य में प्रवृत्त होने का आधार तनाव होता है, जो अनुभूति और विचार के द्वन्द्व पर आधारित होता है।''[२०] ''अनुभव या विचार के लगातार दबाब से या किसी विधायक बिम्ब या रूपक की उपस्थिति से ही सर्जनात्मक तनाव निष्पन्न होता है।''[२१]

आधुनिक युग की वर्तमान व्यवस्था में जीवनयापन करने वाले संवेदनशील कवि के मानस में निरन्तर तनाव व्याप्त होता रहता है। इस तनाव के आयाम अनेक हो सकते हैं। जैसे समाज, परिवार, संस्कृति, विज्ञान, राजनीति आदि। ये सभी मिलकर तनाव को और अधिक सघनता प्रदान करते हैं। कवि इसे अब केवल भावात्मक स्तर पर ही नहीं ज्ञानात्मक और वैचारिक स्तर पर भी जीता रहता है। वस्तुतः सर्जनात्मक तनाव भाव और विचार पर आधारित होता है। हिन्दी की लम्बी कविताओं में जहाँ प्रसाद कृत 'प्रलय की छाया' अज्ञेय कृत 'असाध्यवीणा' धर्मवीर भारती कृत 'प्रेमयुग गाथा' में सर्जनात्मक तनाव भावनापरक हैं वहीं निराला कृत 'राम की शक्ति पूजा' मुक्तिबोध कृत 'अंधेरे में' धूमिल कृत 'पटकथा' राजकमल चौधरी कृत 'मुक्तिप्रसंग' आदि में सर्जनात्मक तनाव विचारपरक है। ऐसा नहीं है कि इस तरह की विचारपरक कविताओं में भावनात्मकता का अभाव है। इनमें भावनात्मकता और वैचारिकता में उचित सामंजस्य दिखाई पड़ता है। सर्जनात्मक तनाव के निर्माण मे बिम्ब और अनुभूति भी रचना-प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होते हैं। अनुभूति, विचार, बिम्ब, विवरण, तथ्य, सन्दर्भ और संकेत कविता में केन्द्रीय विचार से जुड़े होते हैं।

लम्बी कविता का अन्त भी अन्तहीन होता है चूँकि लम्बी कविता अपने आप में गतिशील जीवन के यथार्थ को लेकर चलती है, इसलिए वह कभी अन्त को प्राप्त नहीं करती। लम्बी कविता किसी सिद्धान्त विशेष पर आधारित न होकर विचार प्रधान होती है, इसीलिए कवि इसे विचार के किसी अभीष्ट मोड़ पर लाकर विराम दे देता है। लम्बी कविता के अन्त के विषय मे मुक्तिबोध का यह कथन कितना महत्वपूर्ण कितना सार्थक लगता है-

"नहीं होती कहीं भी खत्म कविता नहीं होती,
कि वह आवेग-त्वरित काल यात्री है।"[२२]

इस प्रकार लम्बी कविताएँ कालयात्री की भांति अन्तरहित होती हैं। "गतिशील यथार्थ के परस्पर रूप के कारण ही लम्बी कविताएँ लम्बी हो जाती हैं और अन्तरहित अन्त वाली।"[२३]

यहाँ अब तक हमने लम्बी कविता के स्वरूप एवं अवधारणा पर दृष्टिपात किया और उसके स्वरूप के संदर्भ में कतिपय विद्वानों के अभिमत को देखा। समग्रता में लम्बी कविता आधुनिक युग की अभिव्यक्ति की एक अनिवार्य पहचान बन गयी है। मात्र कलेवर की प्रदीर्घता लम्बी कविता नहीं होती। लम्बी कविता जीवन के विविध संदर्भों, प्रसंगों, घात-प्रतिघात के निष्कर्षों को अपने में समेटे एक अंतहीन कालयामी के मानिन्द निरंतर अग्रसर होने वाली विधा है जिसे अन्विति, नाटकीयता, प्रलम्बता, सृजनात्मक तनाव एवं वैचारिकता मिल कर इसे स्वरूप प्रदान करते हैं। लम्बी कविता के स्वरूप को और अधिक स्पष्टता प्रदान करने के लिए हमें यहाँ इस काव्य-रूप का अन्य परंपरागत काव्य-रूप के समक्ष रखकर तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से देखना अभीष्ट है।

महाकाव्य और लम्बी कविता

महाकाव्य और लम्बी कविता के स्वरूप एवं रचना-प्रक्रिया में नितान्त भिन्नता है। महाकाव्य की कथावस्तु उत्पाद्य अथवा अनुत्पाद्य आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथाओं से अनुस्यूत होता है। जीवन के समग्रता के साथ लौकिक वर्णनों में प्रकृति, नगर तथा वाटिका आदि के विस्तृत वर्णन से वह गति प्राप्त करता है। किन्तु लम्बी कविता युगीन सामाजिक सन्दर्भ, वर्तमान जीवन की जटिलता तथा बहुआयामी जीवनानुभव से कथ्य गढ़ती है। इनमें संवेदना वस्तु अथवा घटनाप्रधान नहीं होती। महाकाव्य में अनेक युगों की संचित जातीय अनुभूतियों, संवेदनाओं, सत्यों, दृष्टिकोणों तथा संघर्षों का विराट रेखांकन होता है। महाकाव्य में स्वच्छन्द भावों का प्रवाह-नैरन्तर्य दिखाई पड़ता है। लम्बी कविता में समसामयिक युग सत्य को उसकी सम्पूर्णता, संश्लिष्टता और नाटकीयता में पकड़ने की

बड़ी कोशिश होती है। महाकाव्य में स्वछन्द भावों का प्रवाह में नैरन्तर्य दिखाई पड़ता है किन्तु लम्बी कविता में ऐसा नहीं है। वह ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान के घात-प्रतिघात को उद्‌घाटित करती है और वैविध्यपूर्ण, स्वछन्दशील और यथार्थ-बोध के दबाब से सहज रूप में प्रस्फुटित होती है। महाकाव्य के कथानक में धर्म, दर्शन, नीति, भक्ति, उपदेश आदि तत्त्वों का भी समावेश किया जाता है। लम्बी कविता में ऐसा सम्भव नहीं हो पाता, क्योंकि इनके समावेश से आधारगत विचार या बिम्ब गहराने की अपेक्षा टूटने बिखरने लगते हैं। महाकाव्य में कल्पना तथा पारलौकिक तत्त्व कथा-प्रवाह में सहायक होते हैं जबकि लम्बी कविता में गद्यात्मक व्याख्याएँ, स्वप्न और फंतासी की शैली तले मुक्त साहचर्य की पद्धति कथ्य को विस्तार देती है।

लम्बी कविता में महाकाव्य के समान अन्त नहीं होता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जीवन-प्रक्रिया का कोई अन्त नहीं होता है केवल रूप परिवर्तन होता है। महाकाव्य एक भाव प्रधान काव्य विधा है, जबकि लम्बी कविता विचार प्रधान होती है। "लम्बी कविता की प्रकृति और संरचना सैद्धान्तिक न होकर वैचारिक होती है। इसी से उसका अन्त भी प्रवाहमान किसी मोड़ पर लाकर छोड़ दिया जाता हैं। महाकाव्य में शक्ति-शील और सौन्दर्य आदि आदर्शों के भण्डार आभिजात्य नायकों के प्रति पाठक श्रद्धा भाव रखता है और उससे साधारणीकृत होने के लिए भावकत्व तथा भोजकत्व व्यापार की कल्पना की जाती है। इसके विपरीत लम्बी कविता का नायक मध्यवर्गीय तथा जीवन के यथार्थ से टकराता हुआ चित्रित होता है।" अतः यहाँ साधारणीकरण में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती। यदि महाकाव्य युग को सन्देश नहीं दे पाया तो उसकी महत्ता कम हो जाती है। इसके विपरीत लम्बी कविता का उद्देश्य है- चेतना की सीमा का विस्तार या सघनीकरण, संवेदना की गहनता, ग्रहणशीलता को चुनौती देकर मानसिक विक्षोभ और अरक्षा की चेतना का उभार। लम्बी कविताओं का कथानक महाकाव्य के कथानक की भांति पहले से सुनिश्चित किया हुआ नहीं होता। बल्कि युग चेतना को मूर्त करने के लिए रचना-प्रक्रिया के दौरान ही बनता चलता है। इस प्रकार महाकाव्य और लम्बी कविता में स्वरूप और संरचना- दोनों स्तरों पर नितान्त भिन्नता देखी जा सकती है।

खण्डकाव्य और लम्बी कविता

भारतीय काव्यशास्त्र में खण्डकाव्य के विषय में भी आचार्यों के अनेक मत हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार- महाकाव्य के एक देश अथवा अंश का चित्रण अथवा अनुसरण करने वाला काव्य खण्डकाव्य है।[२४]

बाबू गुलाबराय के अनुसार खण्ड काव्य में जीवन के एक ही पहलू या एक ही घटना को महत्व दिया जाता है। इस प्रकार खण्डकाव्य में जीवन का बहुआयामी चित्रण नहीं होता, अपितु जीवन के किसी एकांगी, रोचक एवं मार्मिक क्षणों का उद्‌घाटन होता है। कवि की प्रतिभा काल्पनिक घटनाओं को जीवन्त और विश्वसनीय रूप प्रदान करती है। खण्डकाव्य अनुभूत जीवन के किसी एक पक्ष से सम्बन्धित होते हुए भी पूर्ण होता है। लम्बी कविता एक नवीन काव्य माध्यम है जो जीवनाभूतियों के वैविध्यपूर्ण स्वरूपों की अभिव्यक्ति में अत्यन्त समर्थ है। लम्बी कविता के नायक उद्‌देश्य और वर्णन शैली का स्वरूप खण्डकाव्य से सर्वथा भिन्न होता है। खण्डकाव्य की भांति लम्बी कविता छन्द-विधान और सर्गबद्धता में बंधी नहीं होती। जिस प्रकार खण्डकाव्य में काव्य नायक का चरित्र-चित्रण विस्तार को प्राप्त करता है और कवि जहाँ-तहाँ अवसर प्राप्त कर परोक्ष रूप से कुछ कहता है। वहीं लम्बी कविता में यह अवस्था नहीं होती। खण्ड काव्य की तरह रस निष्पत्ति के संदर्भ में भी लम्बी कविता रूढ़िवादी नहीं होती कहना चाहिए कि लम्बी कविता वैचारिक धरातल पर एक उदबोधन गीत है, जिससे भावों की घटाएँ नहीं उमड़ती अपितु तनाव और चिन्तन की टकराहट और घात-प्रतिघात होता है जिसको पाठक भी अनुभव करता है। खण्डकाव्य में प्रकृति-चित्रण एवं वस्तु-वर्णन की प्रधानता रहती है। इसके विपरीत लम्बी कविता में युगीन जटिलताओं एवं समसामयिक समस्याओं का ही यथार्थपरक निरूप्रण होता है। इसके अतिरिक्त खण्डकाव्य स्वरूप और शैली की दृष्टि से पारम्परिकता तथा रूढ़िवादिता को ढोने में सक्षम होता है जबकि लम्बी कविता इन बन्धनों एवं रूढ़ियों को तोड़कर स्वछन्द रूप में प्रवहमान रहना उचित समझती है।

प्रगीत और लम्बी कविता

लम्बी कविता अपने स्वरूप और प्रकृति में प्रगीत से भी भिन्नता रखती है। लम्बी कविता और प्रगीत के संरचनात्मक अवयव भिन्न भिन्न होते हैं। प्रगीत तीव्र आत्मानुभूतियों एवं उद्दाम भावावेगों की निश्छल अभिव्यक्ति है और भीतर की दोहरी मार से उत्पन्न हुई है। प्रगीत और लम्बी कविता के विषय में डा० रामदरश मिश्र का कथन है- "लम्बी कविता का कथ्य समकालीन परिवेश, इतिहास, समाज और व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्व का विराट चित्र-फलक पर विराट चित्रण है। उसका जन्म इस अनिवार्य मनोभूमि पर होता है, लेकिन जहाँ मानव मन किसी सौन्दर्य, राग, सत्य के किसी कोण से गहरा छू जाता है, वहाँ गीत की भूमि होती है। यह कथ्य अपेक्षाकृत आत्मप्रधान होता है, यह विश्लेषणात्मक बुद्धि-बोझिल, लम्बा और जटिल नहीं होता।"[२५]

डा० नरेन्द्र मोहन की दृष्टि में लम्बी कविता और प्रगीत की संरचना में एक तात्त्विक भेद है और वह है वैचारिकी एवं भावमूलकता का। उन्हीं के शब्दों में "प्रगीत की संरचना मुख्यतः भावमूलक या भावना प्रधान होती है, जबकि लम्बी कविता की संरचना में विचार या वैचारिक अनुभूति का महत्वपूर्ण योग होता है। ..... प्रगीत में अन्विति का जो रूप मान्य है, वह लम्बी कविता के काम का नहीं है। प्रगीत में आवयविक गठन का विशेष ध्यान रहता है, जबकि लम्बी कविताओं में स्थितियों एवं सन्दर्भों का टकरावपूर्ण संयोजन रहने से आवयविक अन्विति आवश्यक है। प्रगीत में अन्विति सीधी-सपाट सतह पर झलकती दिख जाती है - एक क्रम में, एक तर्क में एक निष्कर्ष में ढली और परिणत हुई, जबकि लम्बी कविता अपने रचना विधान में क्रम और निष्कर्ष का प्रायः अतिक्रमण कर जाती है।"[२६]

डा० बलदेव वंशी के मतानुसान "प्रगीत में एक निश्चित मूड की सरल रेखीय प्रकृति निहित रहती है, जबकि लम्बी कविता अपने झुकावों-दबाबों को आत्मसात् कर चलने के कारण वक्र एवं संकुलाकार संरचना का परिचय देती है।"[२७]

प्रगीत आत्मपरक होता है जिससे पूरी की पूरी रचना भावात्मकता एवं रागात्मकता के रंग में सरावोर रहती है। इसमें बौद्धिक तटस्थता को स्थान नहीं मिल पाता है, इसके विपरीत लम्बी कविता विचार प्रधान होती है और इसमें बौद्धिक तटस्थता सर्वत्र देखी जा सकती है। विचार प्रधान होने के कारण ही लम्बी कविताओं में भावात्मकता का अभाव दिखाई पड़ता है। भावात्मकता के आधिक्य के कारण प्रगीत में यथार्थ अभिव्यक्ति नहीं के बराबर होती है, इसके विपरीत लम्बी कविता विचारात्मक लेने के कारण यथार्थ की परतों में घुसती हुई सत्य को व्यक्त करने के लिए आतुर दिखाई पड़ती है।

संगीतात्मकता की दृष्टि से भी प्रगीत लम्बी कविता से पृथक हो जाता है। प्रगीत में गेयात्मकता की वृद्धि संगीतात्मकता के माध्यम से ही होती है। प्रगीत में काव्य की अपेक्षा संगीत की प्रधानता होती है क्योंकि इसका उद्देश्य आत्मकल्याण और परमूआनन्द की प्राप्ति करना है और इसका सर्वोत्कृष्ट साधन है संगीत। ऐसा नहीं है कि लम्बी कविता में संगीतात्मकता प्रगीत की भांति प्रधान न होकर गौण होती है। लम्बी कविताओं में एक तरह का अन्तः संगीत देखा जा सकता है। जिन स्थानों पर कवि मानसिक अथवा वाह्य क्रिया व्यापारों का वर्णन करता है; उनमें धीमी और तेज लय देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त प्रगीत में निर्बन्धता होती है और पूर्वापर कोई सम्बन्ध नहीं होता। लम्बी कविताओं में विचार अथवा बिम्ब सारी कविता को बाँधे रखता है।

लम्बी कविता और छोटी कविता

लम्बी कविता और छोटी कविता के स्वरूप में भी काफी भिन्नता होती है। छोटी कविताओं का सौन्दर्य एवं शिल्प उनके किसी विशेष खण्ड या अंश में न होकर सम्पूर्ण में होता है। "छोटी कविताएँ किसी एक खण्ड की संश्लिष्टता या सघनता और आन्तरिक संगति-विसंगति की चेतना से गुजरती है, अतः उनके शिल्प में भी अपेक्षाकृत एक समरूपता दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत लम्बी कविता में अनेक खण्डों की मात्रा निहित रहती है। इन खण्डों की विशेषता यह है कि ये खण्ड परस्पर विरोधी और विषम होते हुए भी सन्दर्भ द्वारा एक सूत्रता में जुड़े होते हैं।"[२८]

लम्बी एवं छोटी कविता में दो काव्य सिद्धान्तों का अन्तर है। छोटी कविता मूलतः प्रगीत कविता होती है, जबकि लम्बी कविता नाटकीय कविता है। छोटी कविता में प्रगीत की भांति गेयता का सम्बन्ध संगीतात्मकता से, संगीतात्मकता का सम्बन्ध शास्त्रीय नियमों में बँधी राग-रागनियों से नहीं होता है। ''छोटी कविता अपने व्यक्तित्त्व में इकहरी, एक आयामी और प्रकृति में विखराव रहित होती है और लम्बी कविता संश्लिष्ट, बहुआयामी महाकाव्यात्मक तत्त्वों से मंडित अनेक युग के विविध सन्दर्भों, प्रसंगों को आपस में गूँथकर युगीन मानसिकता के समानान्तर उठी हुई एक व्यापक पहचान होती है। ऊपर से दिखने वाली प्रसंगों की अराजकता के भीतर अन्विति भी लम्बी कविता को छोटी कविता से पृथक करती है।''[२६]

लम्बी कविता व्यापक आयाम तथा संश्लिष्ट जीवनानुभूतियों के वैचारिक सूत्र द्वारा गुँथी कविता है। इसके कथ्य परतों की गहराई में छिपा होता है। वस्तुतः लम्बी कविता 'मूड' की कविता न होकर 'विजन' की कविता होती है। लम्बी कविता की तरह यथार्थ के द्वन्द्वात्मक स्वरूप की जटिलताओं की समझ, उसके महत्वपूर्ण पक्षों के टकराव की पहचान, उनकी सही पहचान की अनुभूति तथा उस अनुभूति को नए विचार में ढालने की प्रक्रिया को पूरे तौर पर स्पष्ट करते हुए प्रतीकों और बिम्बों को अजस्र धारा में बदल देना छोटी कविता के लघु कलेवर में सम्भव नहीं है। छोटी कविता में भी द्वन्द्व लम्बी कविता की तरह व्यापक स्तर पर नहीं होता है। इनमें वैचारिकता का भी पुट हो सकता है पर अत्यन्त गौण रूप में ही संभव होता है। लम्बी कविता का अन्त अन्तहीन माना जाता है, किन्तु संवेदना के सघन होने से छोटी कविता का अन्त विशिष्ट होता है। लम्बी कविता और छोटी कविता में अन्तर स्पष्ट करते हुए राजीव सक्सेना लिखते हैं - ''कथा तत्त्व से मुक्त लम्बी और छोटी कविता का वाह्य रूप शायद एक जैसा लग सकता है किन्तु आन्तरिक रूप एक जैसा नहीं होता है। छोटी कविता एक या दो-चार बिम्ब-प्रतीकों के इर्द-गिर्द घूमती है, जबकि लम्बी कविता बिम्ब प्रतीकों की अजस्र धारा बन जाती है। छोटी कविता में बिम्ब प्रतीक भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते हैं, इसके विपरीत लम्बी कविता में इसका सहायक स्थान होता है, प्रमुख तत्त्व होता है अनुभव सत्य।''[३०]

T-7200

समग्रतः छोटी कविता अपने स्वरूप में एकात्मक, एकायामी एवं प्रकृति में सुलझी हुई होती है। छोटी कविता में बिखराव नहीं के बराबर होता है। लम्बी कविता अपने स्वरूप में जटिल संश्लिष्ट एवं बहुआयामी होती है। यह जीवनानुभूतियों को आपस में गूँथकर युगीन-मानसिकता के समानान्तर उठी एक व्यापक पहचान के रूप में उतरती है। लम्बी कविता में अनेक प्रसंग वाह्य रूप से तो अलग-अलग और विश्रृंखलित दिखाई पड़ते हैं, किन्तु ये प्रसंग आन्तरिक रूप से अन्विति के सूत्र में बँधे होते हैं। छोटी कविता में इस विशिष्टता का अभाव होता है।

हिन्दी में लम्बी कविताः उद्‌भव और विकास

हिन्दी में लम्बी कविता के इतिहास की शुरूआत कब से मानी जाए? क्लासिकल रचना-विधान की जकड़बंदी से मुक्त होने की छटपटाहट को कब से रेखांकित किया जाए? क्या सुमित्रानंदन पंत की कविता 'परिवर्तन' (कविता-संग्रह 'पल्लव' १९२३) से जयशंकर 'प्रसाद' की कविता 'प्रलय की छाया' (कविता-संग्रह 'लहर' १९३३) से अथवा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'राम की शक्ति पूजा' (कविता-संग्रह 'अनामिका' १९३७) से। प्रारंभ में लम्बी कविताएं महाकाव्यात्मक अपेक्षाओं से संबंद्ध होकर ('प्रलय की छाया', 'राम शक्ति की पूजा'), आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लेकर उदित हुई थीं। हाँ, 'परिवर्तन' प्रारंभिक दौर की ऐसी कविता ज़रूर है जो किसी आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लिए बिना परिवर्तन संबंधी धारणा को आवेशपूर्ण ढंग से बिंबात्मक रूप में अभिव्यक्त करती है। यह कविता कालक्रम की दृष्टि से ही नही, अपने विन्यास की दृष्टि से भी हिंदी की पहली लम्बी कविता मानी जा सकती है।

'परिवर्तन', 'प्रलय की छाया' और 'राम की शक्ति पूजा' उस दौर की कविताएं हैं जब प्रबंधात्मक रचना-विधान को विशेष सम्मान प्राप्त था और उसके महत्त्व और प्रासंगिकता के बारे में किसी को संदेह नही था। ध्यान देने की बात है कि ये तीनों कविताएं उन कवियों द्वारा रचित हैं जो छायावादी कविता के शीर्षस्थ कवि हैं। क्या इन लम्बी कविताओं की संरचना पर उनकी प्रगीतात्मक प्रतिभा और रोमैंटिक संस्कारों-रूझानों

का प्रभाव नहीं पड़ा होगा? यह प्रश्न भी हो सकता हे कि इन कवियों ने अपनी कल्पना को प्रबंधात्मक रूढ़ियों से कैसे मुक्त रखा और लम्बी कविता के रूप में सिरजा? इन कविताओं की रचना के दौरान ये कवि, निश्चय ही, अपने रचनात्मक अभ्यासों और रचनाशील मानसिकता से जूझे होंगे और उन्हें अपनी अभ्यस्त प्रगीतात्मक रूप-विधान की सीमाओं से बाहर आने या ऊपर उठने के लिए रचनात्मक तौर पर संघर्षरत होना पड़ा होगा। इस जूझने और संघर्षरत होने के दौरान, अपने को निर्ममतापूर्वक शोधने और संशोधित करने के बावजूद यह संभव है कि इनकी लम्बी कविताओं की संरचना में प्रगीतात्मक और प्रबंधात्मक रूढ़ियां बनी रहीं हों। यह रूचिगत बदलाव महज रूपगत बदलाव का परिणाम नहीं है, बल्कि यह संवेदना और विचार के बदलाव का भी सूचक है। छायावादी कवियों की रचना-प्रक्रिया का यह एक विशिष्ट बिन्दु है कि वे प्रगीत और प्रबंध जैसे रूप-विधानों में काव्य- सृजन के बावजूद, लम्बी कविता के रूप तथा विन्यास की ओर आकर्षित हुए। उनकी लम्बी कविताओं की विशिष्टता रचना-प्रक्रिया और रचना-संघर्ष में ही निहित है। पंत की 'परिवर्तन- कविता में यह विशिष्टता कविता को एक प्रमुख बिम्ब से जोड़ने तथा उससे छोटे-छोटे बिम्बों को संलग्न करने के प्रयास में देखी जा सकती है। इस कविता के स्पष्टतः दो अंश स्वीकार किए जा सकते हैं:- एक आत्मगत संवेदना, प्रेम, विरह, अवसाद का चित्रण करने वाला, दूसरा परिवर्तन के विराट बिम्ब को प्रस्तुत करने वाला। इस कविता के रचना-विधान को समझने के लिए इन दोनों अंशों यानी आत्मगत संवेदना और विराट बिम्ब के रिश्ते को समझना ज़रूरी है। इस कविता में आत्मगत संदर्भ वृहत्तर संदर्भ की ओर संकेत तो करता है, पर उस संदर्भ में घुलता और रूपांतरित होता नहीं दिखता। आत्मगत अनुभूति परिवर्तन के विराट् बिम्ब और उसकी सक्रिय सत्ता से चेतना के धरातल पर बेशक जुड़ी हुई हो, उसकी संवेदनात्मक और वैचारिक भूमिका में साझीदार नहीं है। अनुभूति और चिन्तन के इस अंतराल से कविता में शिथिलता आई जिसे इस कविता के रचना-विधान में स्पष्टतः देखा जा सकता है। लगता है एक कविता न होकर अलग-अलग कविताओं का समूह हो - खास तौर से 'परिवर्तन' के विराट बिम्ब का चित्रण करने वाला अंश, जो स्वतंत्र कविताओं का सा आभास देता है। ऐसे में इसे

एक लम्बी कविता मानने का क्या तर्क हो सकता है? निराशा की अंतर्वर्ती मनोदशा का, परिवर्तनकारी शक्तियों के संदर्भ में, उदात्तीकरण किया गया है, उसे मानवतावादी आशाओं, आकांक्षाओं से संबद्ध कर दिया गया है। छायावादी भावोन्मेष और चिन्तन की स्पष्ट छाप इस कविता पर पड़ी हुई है और इनके बल पर ही कविता लम्बी हुई है।

'प्रसाद' की कविता 'प्रलय की छाया' में यह विशिष्टता लयात्मक संयोजन के ज़रिए अर्जित की गयी है, तो 'निराला' की 'राम की शक्तिपूजा' में उदात्त भाषा और मिथकीय संयोजन के आधार पर भावना, कल्पना और विचार का सामंजस्यपूर्ण विधान करके। इन्हीं आधारों पर इन कविताओं में प्रबंधात्मक व्यवस्थाएं टूट सकी हैं। 'प्रलय' की छाया' में लय का विधान पूरी कविता के नये-नये अर्थों को झलका देने में समर्थ है। डॉ० नित्यानंद तिवारी ने लय-विधान के इस विशिष्ट स्वरूप की ओर, जिससे यह कविता बड़ी और लम्बी हो गयी है, संकेत दिया है - 'कई कई लय की लम्बी सांस इस कविता की अनुभूति को पर्त-दर-पर्त उस क्षमता से समृद्ध करने वाली है जो अर्थ को अधिक ऊर्जा-सम्पन्न और संश्लिष्ट बनाती है। विरोधी और विषम अनुभवों की तनावपूर्ण ताकतों को एक साथ बांध कर उनकी परस्पर टकराहट से काव्यार्थ को उभार और संभाल ले जाने का बहुत कुछ दायित्व इस कविता के लय-विधान का है। पाठ-प्रक्रिया के प्रति अधिक सचेत पाठक इस कविता के पहले सम्पर्क में ही (जो लय के साथ ही होता है) अनुभव कर लेता है कि इसमें देवसेना की 'चढ़ कर मेरे जीवन रथ पर/प्रलय चल रहा अपने पथ पर' वाली ही पीड़ा छटपटा रही है। उसी पीड़ा, दुर्भाग्य और विडंबना को इस कविता की लय रचती है। वह दो अलग भाव स्थितियों को एक साथ जोड़ती है, तानती है और खास बलाघात एवं तारत्त्व (पिच) के आधार पर भाषा का भी गठन करती है'।[३१] लय-विधान के जरिए ही इस कविता में विडंबना का रचाव संपन्न हुआ है।

'निराला' की कविता 'राम की शक्ति पूजा' में वैशिष्ट्य को मिथकीय संयोजन की संगति में उभर रही परस्पर गुंफित भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों में देखा जा सकता है। पुराकथा का सर्जनात्मक विधान इस कविता में खंडकाव्य या महाकाव्य के ढांचे के रूप में न होकर, लंबी कविता के रूप में है। भावनाओं और मनोदशाओं के सानिध्य और

टकराव से यह कविता लंबी हो गयी है। चरित्र और परिस्थिति के घात-प्रतिघात, राम के संशय और उद्विग्नता को उभारते हैं। राम की अंतश्चेतना से जुड़े प्रसंग (सीता का स्मरण) स्थिति को गहरा देते हैं। अतीत प्रसंगों में प्रतिगमन या प्रत्यावर्तन आनुषंगिक प्रसंगों, असंबद्ध भावनाओं और बिम्बों को दृढ़तापूर्वक कविता की केन्द्रीय स्थिति से जोड़ देते हैं। इससे कविता में मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों का भी विधान हो सका है और उनका सामंजस्य भी। राम की स्थिति के समानान्तर रावण का अट्टाहस की योजना द्वारा नाटकीय विपर्यास पैदा किया गया है। कविता की आन्तरिक सूत्रबद्धता बनाए रखने में छंद की गति और लय का भी महत्पूर्ण योगदान है।

हिन्दी की प्रारम्भिक लम्बी कविताओं में आख्यान का विशेष महत्त्व है। इसका कारण शायद यह है कि ये कविताएं तब प्रबन्धात्मक ढांचे की जकड़बंदी से मुक्त होने की कोशिश में उभरी थीं, पर आख्यानों के काव्यात्मक संस्कार को और उन से लिपटे हुए सांस्कृतिक अभिप्रायों को जो उनकी संवेदनाओं को और उन से लिपटे हुए सांस्कृतिक अभिप्रायों को जो उनकी संवेदनाओं को रचनात्मक, सार्थक प्रतिफलन में सहायक हो सकते थे, छोड़ पाना उनके लिए कठिन था। आख्यान को उन्होंने पुराने वर्णनात्मक तरीके से नहीं बल्कि प्रतिगमन (रिग्रेसन) के विधान द्वारा अपनी कविताओं में ढाला है।

छायावाद-युग की इन तीनों लंबी कविताओं के बाद एक लंबे अरसे तक कोई लंबी कविता नहीं लिखी गयी। नरेश मेहता की लंबी कविता 'समय देवता' (काव्य-संकलनः 'दूसरा सप्तक', १९५१) में प्रकाशित हुई। इस कविता के रचना-विधान का पंत की लंबी कविता 'परिवर्तन' (१९२३) के रचना-विधान से आश्चर्यजनक साम्य है। रूपकात्मक-बिंबात्मक विधान, चिंतन और संवेदना का जैसा अंतराल 'परिवर्तन- में है वैसा ही इस कविता में भी है। भिन्नता इस स्तर पर है कि परिवर्तन आत्मपरक दृष्टि के चेतनागत विस्तार को साधने वाली कविता है जबकि 'समय देवता' वस्तुपरक दृष्टि से विश्व-दर्शन का प्रयास करने वाली कविता है। 'परिवर्तन' में मानवतावादी, छायावादी दृष्टि प्रतिफलित हुई है जबकि 'समय देवता' में सामाजिक, प्रगतिशील दृष्टि की स्पष्ट छाप है। 'समय देवता' को साक्षी बनाकर रूस, चीन, जापान, स्विटजरलैंड, जर्मनी, इटली, रोम,

आदि देशों का कलात्मक परिचयात्मक वृतांत और चित्रण, विश्व इतिहास संबंधी कवि के ज्ञान को सूचित करता है जिसका ढांचा यहां कलात्मक है। ज्ञान यहां धारणात्मक सतह पर व्यक्त हुआ है, व्यापक-जागरूकता के रूप में नहीं।

धर्मवीर भारती की कविता 'प्रमथ्युगाथा' (कविता-संग्रहः 'सात गीत वर्ष', १९५९) यूनानी पुराकथा पर आधारित है। इसमें कथात्मक ब्यौरे बेशक नहीं हैं, पर पुराकथा के प्रमुख पात्रों की मनःस्थितियों-मनोदशाओं को एक दूसरे के साथ सटा करके इस तरह रखा गया है कि कथात्मक ढांचा उभर आता है। मनोदशाओं के क्रम-विन्यास की यह पद्धति नयी है। यहां प्रमथ्यु, द्युपितर, अग्नि और गृद्ध सभी एक यातनापूर्ण स्थिति के बारे में अपना-अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं। इन वक्तव्यों द्वारा पात्रों की धारणाओं और मनोदशाओं की जानकारी तो मिली ही है, पुराकथा के सूत्र भी जुड़ने लगते हैं। केंद्रीय स्थिति है प्रमथ्यु का द्युपितर के महलों से मनुष्यों के त्राण के लिए अग्नि हर लाना... और एक गिद्ध द्वारा निरंतर उसके हृदय-पिण्ड को खाते रहना। विभिन्न संदर्भ, प्रसंग और पात्रगत अनुगूंजे केंद्रीय स्थिति से जुड़ती गयी हैं। इस स्थिति को अलग-अलग पात्रगत दृष्टिकोणों से भी देखा गया है। द्युपितर का कथन हैः

'यह जो
इस व्यक्ति ने
अंधेरे को देकर चुनौती
दुःसाहस किया
यह मेरी सत्ता का प्रथम अनादर था।'[३२]

और साधारण जन की प्रतिक्रिया हैः-

'चाहता अगर तो हममें से हर एक व्यक्ति अपने ही साहस से प्रमथ्यु हो सकता था
लेकिन हम डरते थे
ज्योति चाहते थे
पर दंड भोगने से हम डरते थे'।[३३]

और अग्नि को प्रमथ्यु से शिकायत है:-

'माथे से अपने लगाकर प्रमथ्यु ने
फेंक दिया फिर मुझको इन कायरों के बीच'।[३४]

और गृद्ध का तर्क है: 'किन्तु एक थोड़े से साहस के बगैर में अग्नि जीत लाने से वंचित रहा।' एक स्थिति के बारे में पात्रगत दृष्टिकोण का यह आँकलन ही है। ये दृष्टिकोण और इनसे जुड़ी व्याख्याएँ परस्पर उलझती या टकराती नहीं हैं, न ही किसी नाटकीय विधान में ढलती हैं। काव्यात्मक आशय की पहचान कविता के अंत की इन पंक्तियों से हो सकती है:-

'ये जो जन हैं, साधारण जन उनमें से एक-एक के अंदर
मूर्छित प्रमथ्यु कहीं बंदी है
अवसर मिला नहीं साहस कर पाने का।'[३५]

× × ×

'कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे
ये पीड़ा-सिक्त स्वर
उसके मन को बेध मूर्छित प्रमथ्यु को जगाएंगे।'[३६]

यह नयी कविता का मानवतावादी आशय ही है। यह आशय रचनात्मक धरातल पर अधिक विश्वसनीय हो सकता था अगर इसे नाटकीय विधान में संयोजित किया जाता ।

मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' (कविता संग्रह: 'चांद का मुंह टेढ़ा है,' १९६४) में इतिहास के गतिशील, मनोवैज्ञानिक संदर्भ को ग्रहण किया गया है। यह कविता इतिहास को समाकलित करने वाली कविता ('पोइम इन्क्लूडिंग हिस्ट्री) है - तथ्यों, घटनाओं या आंकड़ों के रूप में नहीं, अन्तरंग साक्षी, परिप्रेक्ष्य और विचार रूप में। यहां आत्मिक स्मृतियां ऐतिहासिक स्मृतियों में फैल गयी हैं, गुथ गयी हैं। इस विशिष्ट अर्थ में ही, 'यह कविता देश के आधुनिक जन इतिहास का, स्वतंत्रता से पूर्व और पश्चात् का एक दहकता इस्पाती

दस्तावेज है।'[३७] इसमें अजब और अद्‌भुत रूप से व्यक्ति और जन का एकीकरण बेशक न हो, उनका तनाव तो है ही।

इतिहास बोध की दृष्टि ने इस कविता में यथार्थ की प्रकृति को जटिल और संश्लिष्ट बना दिया है। यथार्थ संबंधी भावनाएं और विचार यहां क्रमशः खुलते गए हैं - आत्मपरक और बृहत्तर संदर्भ अंतर-रूपांतरित होते गए हैं। यह यथार्थ दृष्टि शिल्प के नए विधान में ढलकर कविता में आए विवरणों, तथ्यों, संदर्भों और संकेतों को अर्थवत्ता प्रदान करती है तथा अराजक, असंबद्ध दिखने वाले प्रसंगों, भावनाओं को केंद्रीय विचार से कसकर जोड़ देती है। बिखरे हुए संदर्भों को इतिहास संदर्भ में तान देने में मुक्तिबोध को सफलता प्राप्त हुई है। इसमें कविता की शिल्प-संरचना का भी बहुत बड़ा हाथ है जिससे यह कविता आहिस्ता-आहिस्ता और उत्तरोत्तर खुलती, बढ़ती, बड़ी और लम्बी होती गयी है।

मुक्तिबोध के लिए लम्बी कविता एक अनिवार्य काव्य-माध्यम है। यह उनकी रचना-प्रक्रिया से उद्‌भूत है, उसका सहज परिणाम है। उनकी कविताओं के लम्बे होने का कारण है कि वे अनुभूति विशेष को उसके समस्त संदर्भों से जोड़कर देखते हैं - अतीत के, वर्तमान के और भविष्य के। अनुभूति एक क्षण, एक स्थल विशेष में सीमित न रहकर व्यापक अनुभव बन जाती है और 'आधुनिक मानव के टेस्टामेंट' के रूप में प्रतिफलित होती है।३८

अनुभूति को इतिहास में सृजित करने में मुक्तिबोध ने नाटकीय विधान का सहारा लिया है। नाटकीय विधान की यह विशेषता है कि उसमें यथार्थ को सीमित-समाहित नहीं किया जाता। चीज़ों की संभावनाएं यहां अवरूद्ध या खत्म नहीं होती, बल्कि आंतरिक तनाव सूत्रों द्वारा फैलती, बढ़ती जाती हैं। इस कविता में यह विशेषता अपने विशिष्ट रूप में व्यक्त हुई है। कविता के पहले ही परिच्छेद में रहस्यमय व्यक्ति का रहस्य किंचित खुलता है:-

'वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है।'[३९]

यह 'मैं' का आत्मरूप परिकल्पित रूप ही है जिसकी संगति या चरितार्थता की खोज कवि सामाजिक, राजनीतिक संदर्भों में करना चाहता है। 'विचारों की फिरकी सिर में घूमती है' और वह इस खोज के सिलसिले में सचेतन और अचेतन अवस्थाओं में या जागृति से

स्वप्न और स्वप्न से जागृति में संचरण करता हुआ यथार्थ को परत-दर-परत उघाड़ कर रख देता है। और इस क्रम में आत्मालोचन की स्थिति में आता है:-

'मैं खड़ा हो गया
किसी छाया मूर्ति सा
समक्ष स्वयं के
होने लगी बहस और
लगने लगे परस्पर तमाचे।'[४०]

और उसे महसूस होता है:- 'मुझे अब खोजने होंगे साथी' और उसका यह निर्णय:-

'अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब
पहुंचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार?
तब कहीं देखने मिलेंगी बाहें
जिसमें कि प्रतिफल कांपता रहता अरूण कमल एक'।[४१]

और अंत में 'मैं' का आत्मरूप जो पहले एक रहस्य के समान था, कविता के अंतिम परिच्छेद में वही अब साफ-साफ आंखों के सामने है: 'वही जन जिसे मैंने देखा था गुहा में।' और कविता की अंतिम पंक्तियां:-

'जहां मिल सके मुझे
मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्मसंभवा'।[४२]

इस कविता के विधान से ही पता चल जाता है कि इसमें फैंटेसी का सर्जनात्मक इस्तेमाल हुआ है। असंभव से, असमान से और विरोधी से दिखने वाले ('वह मुख अरे, वह मुख, वे गांधीजी!! इस तरह पंगु!! आश्चर्य!!' × × × 'गांधी की बांह में बच्चा।' ... अनेक ऐसे) प्रसंगों की सन्निधि फैंटेसी के कारण ही संभव हो सकी है। इसी से इस

कविता में आंतरिक तर्क पैदा हुआ है जो अन्य सभी प्रकार की तार्किक अन्वितियों के सर चढ़कर बोला है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि आधुनिक जीवन की जटिल वास्तविकता ने परम्परागत क्लासिकल काव्यरूपों की उपयोगिता और सार्थकता के सामने प्रश्नचिन्ह लगाया है। प्रबन्धात्मक ढांचा इसमें अपर्याप्त सिद्ध हुआ और कवियों को लगा कि भिन्न कथ्य और संवेदना के लिए नए फार्म की जरूरत है। लम्बी कविता की फार्म इसी जरूरत के तौर पर उतरकर सामने आई। आधुनिक जीवन की उलझी हुई परिस्थितियों और जटिल संवेदनाओं के संदर्भ में परम्परागत काव्य-माध्यम से पुराने रूपविधान में अभिव्यक्ति करना संभव न रहा। यह एक दिलचस्प उदाहरण है कि वास्तविकता के अनुरूप अपने सांचों में रद्दोबदल न कर सकने के कारण तथा अपने रूपतामक कलेवर में बंदी हो जाने से कोई काव्यरूप कैसे अपनी प्रासंगिकता खोकर बाँझ हो जाता है। अभिव्यक्ति की इस समस्या से जूझने के दौरान ही ऐसे काव्य-माध्यम की तलाश शुरू हुई जिसमें नए जीवन विधान की संगति हो और जो परम्परागत रूप विधान की रूढ़ियों से मुक्त भी हो, जिसमें नए सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हो और जो आधुनिक परिस्थिति और संवेदना द्वारा पुष्ट और प्रमाणित हो। कहना ही होगा कि लम्बी कविता इन सभी अपेक्षाओं पर खरी उतरती है। लम्बी कविता ने उन सभी विविधताओं को अपने में समेटा है जो आज के युग की माँग हैं।

आज लम्बी कविता एक अनुभूति, क्षणिक भावावेग, एक संघटना खण्ड को उसके समस्त सन्दर्भों और सम्पूर्ण परिवेश से जोड़ने की प्रक्रिया में एक व्यापक और जटिल सन्दर्भों का आयतीकरण है। विभिन्न आयामों से गुजरती हुई यह व्यक्ति और व्यक्ति की बीच का, व्यक्ति और समाज के बीच का, संस्कृति, भाषा और राजनीतिक शक्तियों के बीच का तनाव है। तनाव की इस विविध-धर्मिता का नाम है लम्बी कविता। डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव के शब्दों में लम्बी कविता एक अशास्त्रीय अभिधान है और तद्नुरूप इसकी अर्थव्यंजना भी शास्त्रेतर अथवा शास्त्रातिशामिनी कही जा सकती है।

*****

संदर्भ सूची

१. गजानन माधव 'मुक्तिबोध'- मुक्तिबोध ग्रन्थावली, भाग दो, पृ० २५२.

२. मुक्तिबोध - नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, पृ० २६.

३. डा० रतन लाल शर्मा - समकालीन लम्बी कविताः समकालीन अनुभव और रचनात्मकता

४. डा० बल्देव वंशी - आधुनिक हिन्दी कविता में विचार, पृ० २१६.

५. डा० हरिवंश राय बच्चन - पत्रिका मतान्तर, पृ० २६

६. राजीव सक्सेना - पत्रिका मतान्तर, पृ० २४.

७. रामदरश मिश्र - पत्रिका मतान्तर, पृ० २६.

८. डा० रमेश कुन्तल मेघ - क्योंकि समय एक शब्द है, पृ० ४८.

९. डा० नरेन्द्र मोहन - विचार और लहू के बीच, पृ० ७.

१०. डा० बल्देव वंशी - आधुनिक हिन्दी कविता में विचार, पृ० २२२.

११. डा० नरेन्द्र मोहन - लम्बी कविताओं का रचना विधान पृष्ठ ३.

१२. डा० बल्देव जोशी - आधुनिक हिन्दी कविता में विचार पृ० २२२.

१३. डा० नरेन्द्र मोहन - लम्बी कविताओं का रचना विधान पृष्ठ ४.

१४. डा० बल्देव वंशी - आधुनिक हिन्दी कविता में विचार, पृष्ठ २२३.

१५. डा० बल्देव वंशी - आधुनिक हिन्दी कविता में विचार, पृष्ठ २२३.

१६. डा० नरेन्द्र मोहन - लम्बी कविताओं का रचना विधान पृष्ठ ४.

१७. डा० हरिवंश राय बच्चन - 'मतान्तर' पृ० २६.

१८. राजीव सक्सेना - 'मतान्तर' पृ० २.

१९. डा० नरेन्द्र मोहन - लम्बी कविता का रचना विधान - पृष्ठ २६.

२०. डा० बल्देव वंशी - आधुनिक हिन्दी कविता में विचार पृष्ठ २२४-२२५.

२१. डा० नरेन्द्र मोहन - लम्बी कविता पृ० ८.

२२. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है - पृष्ठ ६४.

२३. डा० बल्देव वंशी - आधुनिक हिंदी कविता में विचार - पृष्ठ २२५.

२४. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ।

२५. डा० रामदरश मिश्र - हिन्दी कविता ! तीन दशक, पृष्ठ १८२.

२६. डा० नरेन्द्र मोहन - लम्बी कविताओं का रचना विधान पृ० ४.

२७. डा० बल्देव वंशी - आधुनिक हिन्दो कविता में विचार पृ० २२०.

२८. डा० रामदरश मिश्र - मतान्तर, पृष्ठ २६-२७.

२९. डा० बल्देव वंशी - आधुनिक हिन्दी कविता में विचार पृ० २२०.

३०. राजीव सक्सेना - मतान्तर पृ० २५.

३१. डॉ नित्यानदं तिवारीः 'संरचनात्मक अद्वितीयता और जटिल काव्यानुभूति': 'लम्बी कविताओं का रचना-विधान', संपादक डाॅ० नरेन्द्र माहेन, पृ ३६.

३२. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष (प्रमुथ्यगाथा), पृ० २१.

३३. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष (प्रमुथ्यगाथा), पृ० २२.

३४. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष (प्रमुथ्यगाथा), पृ० २३.

३५. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष (प्रमुथ्यगाथा), पृ० २५.

३६. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष (प्रमुथ्यगाथा), पृ० २६.

३७. शमशेर बहादुर सिंह (भूमिका),: 'चांद का मुंह टेढ़ा है' मुक्तिबोध (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, १९७५) पृ० २६.

३८. राजीव सक्सेनाः मतांतर (प्रवेशांक, मार्च १९७०) पृ० २४.

३९. सं० नेमिचन्द्र जैन - मुक्तिबोध रचनावली (भाग दो) अंधेरे में, पृ० ३६८.

४०. सं० नेमिचन्द्र जैन - मुक्तिबोध रचनावली (भाग दो) अंधेरे में, पृ० ३८०.

४१. सं० नेमिचन्द्र जैन - मुक्तिबोध रचनावली (भाग दो) अंधेरे में, पृ० ३८९.

४२. सं० नेमिचन्द्र जैन - मुक्तिबोध रचनावली (भाग दो) अंधेरे में, पृ० ३७८.

अध्याय 3

'निराला' लम्बी कविताओं का कथ्य विश्लेषण और लम्बी कविता का रचना विधान

- राम की शक्ति पूजा–1936
- 'राम की शक्ति पूजा' और लम्बी कविता का रचना विधान
- तुलसीदास
- कुकुरमुत्ता
- सरोज स्मृति
- संदर्भ सूची

राम की शक्ति पूजा–1936

'राम की शक्ति पूजा' सही अर्थों में 'निराला' की प्रतिनिधि काव्य रचना कही जा सकती है। प्राचीन गाथा-परम्परा में अलौकिक तत्त्वों, लोक विश्वासों तथा अतिरंजनापूर्ण वर्णनों का समावेश रहता है। किन्तु 'राम की शक्ति पूजा' में लम्बी कविता के तनाव, और अन्तहीन अंत, आधुनिक परिवेशगत जटिलताओं, संश्लिष्टताओं के साथ, वाह्य संघर्ष के विभिन्न आयाम और आन्तिरक द्वन्द्व मिलकर इस कविता की रचना-प्रक्रिया को जटिल बनाते हैं। 'राम की शक्ति पूजा' के संरचनात्मक विश्लेषण में लम्बी कविता के तत्त्वों के आधार पर रचना विधान एवं मूल्य चेतना की दृष्टि से सकारात्मकता के साथ-साथ कुछ कठिनाइयों की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है।

'राम की शक्ति पूजा' में वर्णित राम-रावण की लड़ाई युद्ध के मैदान में तो होती ही है साथ ही साथ कवि के मन में भी यह लड़ाई छिड़ी हुई है। सत्य और असत्य का यह संघर्ष केवल निराला जी के मन में ही नहीं हुआ था बल्कि प्रत्येक मानव के मन में यह संघर्ष होता है। इस दृष्टि से राम सत्य और सात्विक दृष्टि के प्रतीक हैं और रावण असत्य और तामसिक वृत्ति का प्रतीक। मन की विकासात्मक भूमि सत् और असत् या सात्त्विक और तामसिक वृत्ति के अन्तर्द्वन्द्व को झेलती ही है। सत्य को प्राप्त करने की यह अनिवार्य प्रक्रिया है। निराला यहाँ राम के व्यक्तित्त्व में अपने ही व्यक्तित्त्व का प्रक्षेपण करते हैं। निराला भी राम की भांति अपने जीवन में घोर संघर्ष करते रहे हैं और राम की भांति अन्त में उनका प्राप्तव्य भी उन्हें मिल जाता है।

'राम की शक्ति पूजा' की कथा दो स्थानों से संकलित की गई है। 'देवी भागवत' में रावण-वध के समय राम की शक्ति-आराधना का उल्लेख है। इसमें नीलकमल चढ़ाने की कथा नहीं है। इस मूल स्रोत के अतिरिक्त इस कथा का एक स्रोत और है - 'कृत्तिवास की बंगला रामायण'। उसमें राम-रावण की युद्ध कथा पन्द्रह प्रसंगों में समाप्त

की गयी है। यदि दोनों कथानकों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि निराला ने कृत्तिवास से बहुत कुछ ग्रहण किया है।

निराला ने अपनी कथा को मनोवैज्ञानिक भूमि पर अधिष्ठित कर दार्शनिक भावना के समावेश द्वारा उसे आधुनिक युग के अनुकूल बनाया है।

कथानकः- आरम्भ में राम-रावण के अनिर्णित समर का अतिशय उदात्त चित्र प्रस्तुत किया गया है। युद्ध का ऐसा यथार्थ और जीवंत दृश्य कदाचित ही किसी काव्य में मिले। हतचेतन राम अपनी वानरी सेना के साथ लौट पड़े। सेना विभिन्न स्थविर दलों की भांति राम के पीछे-पीछे चली। राम के धुनष की प्रत्यंचा ढीली हो गई है। जटामुकुट अस्त-व्यस्त हो उठा है।

सुवेलगिरि पर आकर राम अत्यंत संशयग्रस्त हो उठे। उनमें रावण की जय का भय समा गया। युद्ध के लिए उद्यत उनका मन हार-हार जाता है। हार के इन्हीं क्षणों में उन्हें विदेह उपवन में सीता-मिलन का स्मरण हुआ। यह स्मृतिजन्य मिलन हार के बाद नारी के आंचल में मुँह छिपा लेने का मिलन नहीं है और न सर्वत्र से अपने को हटाकर श्रांगारिक अनुभूतियों में खो जाने का मिलन है। यह प्रेम का रचनात्मक मिलन है जो मन के आवेग और उत्साह को जगाकर क्रियात्मक बना देता है। किंतु उस दिन के युद्ध में अपने दिव्यास्त्रों के खण्डित होने से असफलता की याद में वे पुनः चिंताकुल हो जाते हैं। उन्हें गर्वोन्मत्त रावण का अट्टाहस सुनाई पड़ता है-

"फिर सुना-हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल।"[1]

यह देखकर हनुमान समस्त व्योम को ग्रस लेने के लिए आगे बढ़ते हैं किंतु अपनी माता अंजना के समझाने से वे पुनः सामान्य हो भूमि पर उतर आते हैं। विभीषण राम को युद्ध के लिए उत्साहित करते हैं। वे कहते हैं कि लक्ष्मण, जांबवान, सुग्रीव, अंगद आदि सभी वीर आपके साथ हैं और युद्ध भी वही है फिर असमय ही आपके मन में पराजय का भाव क्यों जागा?

"रघुकुल गौरव लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण
तुम फेर रहे हो पीठ हो रहा जब जय रण।"[2]

तब राम उदास भाव से कहते हैं- "मित्रवर विजय होगी न समर[3]।" महाशक्ति रावण से आमन्त्रित होकर उसकी रक्षा कर रही है। वे एक महत्त्वपूर्ण नैतिक प्रश्न उठाते हैं कि जिधर अन्याय है उधर ही विजय भी है। अंत में जांबवान की सलाह मानकर वे देवी आराधना का संकल्प करते हैं। इसके पूर्व वे विकल्पात्मक स्थिति में थे। हनुमान देवीदह से एक सौ आठ कमल ले आते हैं। आठ दिन की साधना के बाद देवी उनके परीक्षार्थ एक कमल उठा ले जाती है। यज्ञ के पूर्ण होने के समय इस तरह के आकस्मिक विघ्न से वे अत्यंत पीड़ित हो उठते हैं। तभी उनके मन में विचार आता है कि माता उन्हें 'राजीवनयन' कहकर पुकारा करती थीं। वे देवी को एक आँख देने के लिए प्रस्तुत हो गए। ब्रह्मास्त्र उठाकर ज्यों ही अपनी आँख भेदने के लिए वे तैयार हुए कि भगवती ने उनका हाथ थाम लिया। उनकी साधना से प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें वरदान दिया-

"होगी जय, होगी जय, हे पुरूषोत्तम नवीन,
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।"[4]

यह समापन एक ओर दार्शनिक है तो दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक। कहना न होगा कि यह छायावादी पीढ़ी का आत्मशक्ति के प्रति निष्ठा का जयघोष है। अब यहाँ हम 'राम की शक्ति पूजा' का लम्बी कविता के निष्कर्ष पर अध्ययन करेंगे।

'राम की शक्ति पूजा' और लम्बी कविता का रचना विधान

जैसा कि लम्बी कविता के रचना विधान शीर्षक अध्याय में संकेत किया जा चुका है, लम्बी कविता में नाटकीयता, विचार तत्त्व, सृजनात्मक तनाव, प्रदीर्घता, अन्तहीन अन्त, एवं अन्विति तत्त्व मिलकर कविता को रूप प्रदान करते हैं। 'राम की शक्ति पूजा' में इन तत्त्वों का संधान हमारा यहाँ अभिप्रेत है।

लम्बी कविता के रचना विधान में नाटकीयता एक प्रमुख तत्त्व है, और 'राम की शक्ति पूजा' नाटकीय मोड़ों और नाटकीय संवादों से पूर्णतः ओतप्रोत है। इस पूरी लम्बी कविता में नाटकीय छन्दों विधान की शक्ति ऐसी है कि कविता एकदम अभिभूत कर देती

है। यहाँ छोटी-छोटी भाव-भंगिमाएँ नाटकीय मोड़ों का अन्दाज देती हैं। इस लम्बी कविता में नाटकीय मोड़ों की कुछ भंगिमाएँ इस प्रकार हैं:-

पहला मोड़ है	-	रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर लिखा अमर रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
दूसरा मोड़ है	-	लौटे युग दल। राक्षस-पदतल पृथ्वी टलमल, बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।
तीसरा मोड़ है	-	है अमानिशा; उगलता गगन घन अन्धकार;
चौथा मोड़ है	-	ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
पाँचवा मोड़ है	-	बैठे मारूति देखते राम चरणाविन्द...
छठा मोड़ है	-	बोली माता-''तुमने रवि को जब लिया निगल''
सातवाँ मोड़ है	-	'राम का विषण्णानन...
आठवाँ मोड़ है	-	बाले रघुमणि - ''मित्रवर विजय होगी न समर,
नवाँ मोड़ है	-	हे पुरूष-सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
दसवाँ मोड़ है	-	धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध
और अन्तिम ग्यारहवाँ मोड़ है	-	होगी जय, होगी जय, हे पुरूषोत्तम नवीन

कविता समर के नाटकीय विवरण से प्रारम्भ होती है और राम की चिन्ता से उनकी सिद्धि तक विभिन्न दृश्यों में विभक्त होकर आगे बढ़ती है। पूरी कविता एक प्रकार से राम और राम की शक्ति के बीच नाटकीय संवाद है और ये सम्वाद दोनों प्रकार के हैं- अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। 'राम की शक्ति पूजा' में तीन प्रमुख नाटकीय लक्षण हैं:-

(i) ध्वनि संरचना बहुत नियमित है,

(ii) धनाक्षरी ही प्रायः हैं, (जहाँ कहीं उसमें भंग है वहाँ नाटकीय मोड़ ही उपलक्षित हैं)

(iii) तुक संरचना की नियमिति है।

निराला जी ने कविता को सूर्यास्त से आरम्भ करके सुन्दर नाटकीय पृष्ठभूमि दी है साथ ही साथ सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग करके इस नाटकीयता को कई गुना बढ़ा दिया है। शाम का समय हताशा, निराशा और थकान को प्रतिबिम्बित करता है। युद्ध-भूमि में राम-रावण का अपराजेय समर और आज सूर्यास्त तक इस समर में लिखा गया अमर-इतिहास, कविता के आरम्भ में ही नाटकीयता को जन्म दे देता है:-

"रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर"[५]

कविता में दूसरा नाटकीय मोड़ तब उपस्थित होता है जब रावण की राक्षस सेना, आज युद्धभूमि में मिली सकारात्मक स्थिति से उल्लासित होकर, धरती को रौंदती हुई, पृथ्वी को हिलाती सी, अपने हर्षोल्लास से आकाश को गुँजायमान करते हुए वापस लौट रही है। इस दूसरे नाटकीय मोड़ में पहले दृश्य से विपरीत स्थिति दिखलाई पड़ती है:-

"लौटे युग दल। राक्षस-पदतल पृथ्वी टलमल
बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल"[६]

कविता का तृतीय दृश्य रहस्यात्मक होने के कारण अत्यधिक नाटकीय हो उठा है। अमावस्या की काली रात्रि और आकाश में निबिड अन्धकार। इस अन्धेरे में दिशाओं का ज्ञान तक नहीं हो पा रहा था। उस शान्त वातावरण में केवल पर्वत के पीछे की ओर स्थित विशाल सागर निर्बाध रूप से गर्जना कर रहा था। पर्वत भी अपने स्थान पर एक ध्यानमग्न योगी की भाँति स्थिर जान पड़ता था। उस समय केवल एक मशाल जल रही थी जो निस्तब्ध वातावरण को और भी गंभीर तथा नाटकीय बना रही थी। पूरा का पूरा वातावरण इस दृश्य में नाटकीय जान पड़ता है-

"है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल"[७]

प्रस्तुत पंक्तियों में 'अमा-निशा' 'गगन घन अंधकार' के द्वारा कवि ने अपनी व्यक्तिगत मनोभूमि को, अंधकार की सघनता का बिम्ब दिखाकर, निज-संघर्षों को व्यंजित किया है। यह अंधकार कवि के जीवन में चल रहे अभावों, उतार-चढ़ावों का अंधकार है जिसे कवि ने कविता में बुद्धि कौशल से नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया है।

राम निराशा से भर उठे हैं और अपनी विजय को असंभव मान लिया है, मन की विचलित अवस्था में वे अचानक सीता की स्मृतियों में खो जाते हैं। उनके मन में सीता-स्मृति ऐसे जगती है जैसे घने अन्धकार से पूर्ण बादलों के मध्य बिजली चमक उठी हो। 'सीता कुमारिका' छवि कहकर कवि ने पुनः नाटकीय मोड़ देकर यह प्रकट किया है कि उस समय राम का सीता के साथ विवाह नहीं हुआ था -

ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक याद आया उपवन
विदेह का प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का-नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,[८]

हनुमान राम के चरणाविन्द में बैठे हैं जो अस्ति-नास्ति के प्रतीक हैं राम के चरण अस्ति-नास्ति के एक रूप होने के साथ-साथ अप्रतिम गुणों से भी युक्त हैं। साधना की स्थिति में साधक इन्हीं गुणों का जय करते हैं। राम पदमासन लगाए बैठे हैं। राम का बाँया हाथ अपने दाहिने पैर पर तथा दाहिने हाथ की हथेली पर बाँया पैर प्रतिष्ठित है। राम की यह मुद्रा उन्हें सच्चिदानन्द स्वरूप में कविता में प्रतिष्ठित करती है-

"बैठे मारूति देखते रामचरणारविन्द
युग अस्ति नास्ति के एक रूप, गुण-गण-अनिन्ध
साधना-मध्य भी साम्य-वाम.कर दक्षिण-पद
दक्षिण-कर-तल पर वाम चरण, कपिवर गदगद"[९]

'राम की शक्ति पूजा' में नाटकीयता एक बार पुनः मोड़ लेती है, जब हनुमान अपने विकाराल रूप में आकाश में पहुँचते हैं और वहाँ अपनी माता अंजना को देखते हैं। वे विस्मय से भर उठते हैं। अंजना वेषधारी उस महाशक्ति ने पवनपुत्र से कहा- जब तुमने बचपन में सूर्य को निगल लिया था तब तुम निरे अबोध, अज्ञानी एवम बालबुद्धि थे। लगता है तुम्हें वही भाव बार-बार व्याकुल कर रहा है। यह बड़ी लज्जा की बात है कि माता अर्थात मैं तुम्हारी उद्दण्डताओं को सहन कर लेती हूँ और कुछ भी नहीं कहती। क्या राम ने तुम्हें इस प्रकार की कोई आज्ञा दी है? क्या राम तुम्हारे इस अनुचित कृत्य को सहन कर सकेंगे? तुम सेवक हो, तुम्हें यह सब शोभनीय नहीं है। माता की ऐसी ज्ञान की स्नेहयुक्त वाणीं सुनकर हनुमान नम्र हो जाते हैं और धीरे-धीरे आकाश सी नीचे उतर आते हैं, अपने इस कार्य के अनर्थ की कल्पना कर भय के कारण दीन हो राम के चरणों में बैठ जाते हैं। समस्त पंक्तियों में नाटकीय-संवाद से नाटकीयता जगह-जगह अभिव्यक्त होती है। हनुमान का बड़ा आकार में आना फिर लघु हो जाना नाटकीयता को जन्म देता है:-

''बोली माता- ''तुकने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें, रहे बालक केवल,
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह
यह लज्जा की है बात कि माँ रहती सह-सह।'[10]

× × × × × × ×

'कपि हुए नम्र, क्षण में माता छवि हुई लीन,
उतरे धीरे-धीरे गह प्रभु-पद हुए दीन।'[11]

आगे कविता पुनः नाटकीय मोड़ के साथ अग्रसर होती है जब राम के विषण्ण और खिन्न मुख को देखकर विभीषण का संवाद प्रस्तुत होता है। विभीषण राम को संबोधित करते हुए कहते हैं- 'हे सखा! राम, आज तुम्हारा वह प्रसन्न और प्रफुल्लित मुखारविन्द क्यों नहीं दिखाई दे रहा है जिसे देखकर सारी रीछ वानरी सेना अपने-अपने युद्धजनित श्रम को भूल जाती थी-

'राम का विषण्णानन देखते हुए कुछ क्षण,

"हे सखा", विभीषण बोले "आज प्रसन्न वदन
वह नहीं देखकर जिसे समग्र वीर-वानर
भल्लूक विगतन्श्रम हो पाते जीवन-निर्जर"[१२]

'राम की शक्ति पूजा' में आठवाँ नाटकीय मोड़ उस समय उपस्थित होता है जब हताश, निराश राम विभीषण के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं:-

"बोले रघुमणि- "मित्रवर विजय होगी न समर,
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण,
उतरीं पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण।"[१३]

वानर सेना में तर्कशास्त्री जाम्बवान राम को तर्क का सहारा लेकर समझाते हुए कहते हैं कि यदि रावण के आमंत्रण पर महाशक्ति रावण का साथ दे रही हैं, तो भी इसमें विचलित होने का कोई कारण नहीं दीख पड़ता।

जाम्बवान राम को संबोधित करते हुए कहते हैं कि यदि अशुद्ध रावण शक्ति की पूजा करता है, तो आप भी शक्ति की मौलिक कल्पना करते हुए उसकी तब तक आराधना करें, जब तक शक्ति प्रसन्न नहीं हो जाती। कविता में कवि जब समस्या का तर्कपूर्ण निदान प्रस्तुत करता है तब नाटकीयता का जन्म होना स्वाभाविक है-

"हे पुरूष-सिंह तुम भी वह शक्ति करो धारण
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त,
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त।"[१४]

नाटकीय संवादों और उतार-चढ़ाव से भरी हुई लम्बी कविता उस समय नाटकीयता के चरम पर पहुँचती है जब हताशा में राम जीवन-भर के दुःखों को एक साथ कह उठते हैं। राम के जीवन में यह विषमता निराला के ही अपने जीवन की विषमता है। सच तो यह है कि जीवन में निराला ने जो पापड़ बेले उनसे राम भी दामन बचा नहीं पाए हैं। निराला ने अपने अन्तर्द्वन्द्व को राम मे चित्रित किया है-

"धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध,

धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका।''[१५]

जाम्बवान के प्रस्तावों को स्वीकारते हुए राम शक्तिपूजा में लीन हो जाते हैं। पुरश्चरण करते हुए वे ऊर्ध्वगमन करते जाते हैं। कविता में अन्तिम नाटकीय मोड़ तब उपस्थिति होता है जब राम अपनी सिद्धि के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचते हैं। परीक्षा करते हुए देवी राम का अंतिम कमल चुरा लेती हैं। अपना एक नेत्र देवी को प्रदान कर पुरश्चरण पूरा करने के संकल्प के रूप में राम की श्रद्धा को देखकर दुर्गा ने राम को आशीर्वाद दिया कि हे नवीन अवतार पुरूषोत्तम! तुम्हारी जय होगी- जय होगी। यह कहकर महाशक्ति राम के बदन में प्रविष्ट हो गई-

''होगी जय, होगी जय, हे पुरूषोत्तम नवीन।

कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।''[१६]

यद्यपि 'राम की शक्ति पूजा' क्लिष्ट और संस्कृतनिष्ठ तत्सम भाषा में रचित है, फिर भी लम्बी कविता का प्रमुख तत्त्व अन्विति हमें इसमें दिखाई पड़ती है। 'राम की शक्ति पूजा' अपने कथ्य, तत्सम शब्दावली, विभिन्न प्रसंग और संदर्भ संकेतों को एक सूत्रता में बाँधे रखती है। 'राम की शक्ति पूजा' का गठन जहाँ बिम्बात्मक है वहीं अन्विति भी अखण्डित दिखाई पड़ती है। बिम्ब संकेन्द्रण पर आग्रह न होकर संदर्भों और प्रसंगों की सन्निधि और टकराव पर बल दिया गया है।

'राम की शक्ति पूजा' में अन्विति के दोनों ही रूप बिम्बात्मक और वैचारिक हमें नजर आते हैं। पहले प्रकार की अन्विति में सभी विवरण, सन्दर्भ और प्रसंग केन्द्रीय बिम्ब द्वारा संतुलित रूप में उपस्थित हैं और दूसरे प्रकार की अन्विति में राम के अन्तस में चल रहे विचार सूत्रों से जुड़े बिम्बों का अनवरत क्रम नजर आता है।

'राम की शक्ति पूजा' लम्बी कविता में एक और महत्त्वपूर्ण तत्त्व है 'विचार तत्त्व'। 'राम की शक्ति पूजा' में वर्णित राम, राम का संघर्ष, राम का अन्तर्द्वन्द्व, वास्तविकता में निराला का संघर्ष और अन्र्द्वन्द्व है। निराला यहाँ राम के व्यक्तित्व में अपने ही व्यक्तित्व का प्रक्षेप करते हैं। राम-रावण की लड़ाई युद्ध के मैदान में तो होती ही है साथ ही साथ

कवि के मन में भी यह लड़ाई छिड़ी हुई है सत्य और असत्य के बीच। अराजकता से पूर्ण वातावरण में निराला स्वयं को अकेला महसूस करते हुए कभी-कभी हताश हो जाते है और कह उठते हैं-

"धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।"[१७]

जीवन भर संघर्षरत निराला ने मौलिक विचारों को समाज की विसंगतियों से लड़ते हुए कविता के माध्यम से नूतन दिशा दी है। विचारों के टकराहट और अन्तर्विरोधों का जो स्वरूप इस कविता में दृष्टिगत होता है वह स्वयं में अद्वितीय है।

'राम की शक्तिपूजा' लम्बी कविता के रचना विधान में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व सृजनात्मक तनाव का योगदान है। इस तनाव के द्वारा ही 'राम की शक्ति पूजा' अपनी प्रदीर्घता को प्राप्त करती है। अनुभव या विचार के लगातार दबाब से या किसी बिधायक बिम्ब या रूपक की उपस्थिति से सृजनात्मक तनाव निष्पन्न होता है। 'राम की शक्ति पूजा' में बिम्ब, रूपक, विचार अपनी पूर्ण परिणति को प्राप्त होकर कविता को सृजनात्मक तनाव प्रदान करते हैं और कविता प्रदीर्घ होती चली जाती है।

डा० नरेन्द्र मोहन के अनुसार -" लम्बी कविता के रचना प्रक्रिया का एक अन्तवर्ती पहलू है सृजनात्मक तनाव। लम्बी कविता का यह तनाव एकायामी नहीं होता। सर्जनात्मक तनाव दीर्घकालिक हो तथा विस्तृत फलक पर अपनी क्रियात्मक सिद्ध कर रहा हो परिस्थितिजन्य मानसिक तनाव लम्बी-कविता के लिए काफी नहीं, ये दबाब चेतनागत भी होने चाहिए।" 'राम की शक्ति पूजा' में राम के मन में अर्थात दूसरे रूप में निराला के मन में, परिस्थितिजन्य मानसिक तनाव तो दृष्टिगोचर होता ही है साथ ही साथ उनके जीवन-दर्शन में चेतनागत तनाव भी दिखाई पड़ता है तभी निराला कहते हैं-

"रावण अधर्मरत भी अपना, मैं हुआ अपर"।[१८]

× × × × × × ×

"अन्याय जिधर है उधर शक्ति"।[१९]

'राम की शक्ति की पूजा' में हमें नाटकीयता, सृजनात्मक तनाव के साथ अन्विति अन्तहीन अन्त और प्रदीर्घता की मनोभूमियाँ भी पूर्णतः दिखाई पड़ती हैं। आलोच्य कविता सृजनात्मक तनाव, अन्विति, प्रदीर्घता, नाटकीयता और अंतहीन अन्त जैसे कलेवरों से यह लम्बी कविता सुगठित एवम संयोजित देखी जा सकती है।

'राम की शक्ति पूजा' लम्बी कविता के रचना विधान और मौलिक रचनात्मक सन्दर्भ में एक महाआयामी कृति है। नाटकीयता इसका प्राथमिक वैशिष्ट्य है। प्रत्येक कथा खण्ड एक अभिनव दृश्यात्मक लिए हुए है। नाटकीय चित्रमयता तो पूरी रचना में ही व्याप्त है। 'राम की शक्ति पूजा' में लम्बी कविता के रचना विधान के ये तत्त्व कविता को उदात्त और महान रचना सिद्ध करते हैं।

अब तक हमने प्रस्तुत कविता 'राम की शक्ति पूजा' में लम्बी कविता की रचना धर्मिता और उसके विविध तत्त्वों के आधार पर उसका विवेचन-विश्लेषण किया, और निष्कर्ष के रूप में जाना कि प्रस्तुत कविता में कवि ने लम्बी कविता के विविध तत्त्वों को पूर्ण रूप से अनुस्यूत किया है साथ ही निराला की लम्बी कविताओं का एक विशिष्ट तत्त्व भी है और वह पौराणिक आख्यानात्मकता। यद्यपि पौराणिक आख्यानों को कवि ने पूर्णता में न लेकर कुछ बिन्दुओं को ही लिया है और लम्बी कविता को अपने विचारों, अन्तर्द्वन्द्वों और काव्य-कौशल से पूर्णता प्रदान की है।

T-7200

तुलसीदास

सन १९३८ में निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना उनकी लम्बी-कविता 'तुलसीदास' प्रकाशित हुई। 'राम की शक्ति पूजा' की तरह 'तुलसीदास' भी आख्यानक काव्य है। इसमें १०० बंधों में ६०० पंक्तियाँ हैं। इसमें भी निराला जी ने महाकाव्योचित औदात्य और गांभीर्य उत्पन्न करने का प्रयास किया है। आत्ममन्थन पर केन्द्रित प्रस्तुत रचना 'तुलसीदास' लम्बी-कविता के रचना विधान के आधार पर एक श्रेष्ठ रचना है।

कविता का प्रारम्भ अस्तमित सांस्कृतिक सूर्य के कलात्मक चित्र के साथ होता है। यों पृष्ठभूमि मध्यकालीन भारत की है, जब मुसलमानों के आक्रमण से पराभूत देश श्रीहत

हो गया था। विघटित संस्कृति के रूप को कवि ने शब्दों की विशिष्ट संयोजना द्वारा समकालीन देशकाल और वातावरण को देखते हुए परिस्थितिजन्य तनाव युग-बोध, जगह-जगह पर नाटकीय संवाद, छंद की नई बंदिश एवम रूपक की ताजी नियोजना के माध्यम से कविता में ढाला है जो देखते ही बनता है-

'भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे- तमस्तूर्यदिग्मंडल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।[२०]

"इस लम्बी कविता के प्रथम छंद में ही कवि ने अपने सांस्कृतिक सूर्य का अस्त होना बताकर उसके कारण का निर्देश भी कर दिया है। अब उसकी छाती पर बैठकर मुसलमान राज्य की व्यवस्था कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति की संध्या चारों ओर व्याप्त हो गई। मुगलों के आक्रमण के बाद बुंदेलखंड, कालिंजर इत्यादि सभी शत्रुओं के अधीन हो गये। कवि का मानना है कि भारतीय क्षत्रियों ने यों ही पराजय नहीं स्वीकार की। उनमें से बहुत से लोगों ने अपने को बलिदान कर दिया। दासता स्वीकार करने वाले राजपूतों को लक्ष्य कर कवि ने कड़ा व्यंग्य किया है"[२१]

"भारत के उर के राजपूत,
उड़ गये आज वे देवदूत,
जो रहे शेष, नृपवेश सूत बंदीगण।"[२२]

'तुलसीदास' में निराला ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास पर एक नई दृष्टि डाली है। उन्होंने जिस तुलसीदास को इस काव्य में चित्रित किया है उसका मानसिक ढाँचा चार आधारों पर टिका हुआ है-

(i) हिन्दुओं या भारतीयों का सांस्कृतिक पतन,

(ii) प्रकृति की रमणीय छटा,

(iii) पत्नी के प्रति रति

(iv) जगत या राम के प्रति उन्मुखता[२३]

यहाँ 'तुलसीदास' में नाटकीयता से कवि ने अपने विचारों को रखने की चेष्टा की है। नाटकीयता की चरम सीमा का विकास रत्नावली के क्रुद्ध होने वाले प्रसंग में है। एकमात्र रत्नावली के क्रुद्ध होने वाली मुद्रा को ही कवि ने इस प्रसंग में कल्पना की है। क्लाइमेक्स तो रत्नावली के कुद्ध होने वाली मुद्रा है किन्तु एण्टीक्लाइमेक्स अवरोह की बात तुलसीदास के ईश्वर के प्रति प्रेम में ही निहित है।

''तुलसीदास' लम्बी कविता में निराला द्वारा प्रतिष्ठित ऐतिहासिक सामाजिक और राजनीतिक अर्थ अधिक स्पष्ट हैं। भारत के सांस्कृतिक अंधकार की चिंता से ही कविता प्रारम्भ होती है। लेकिन इस अर्थ के साथ ही निजी आत्मसाक्षात्कार का अर्थ और अधिक स्पष्टता और गहराई से निराला ने इस कविता में पिरोया है।''[२४] ''भारत की सांस्कृतिक अंधकार से मुक्ति की समस्या तुलसीदास की अपनी रचनात्मकता की परीक्षा के भीतर से होकर आती है। 'राम की शक्ति पूजा' में राष्ट्रीय मुक्ति के प्रतीक राम-राम ही हैं निराला नहीं। निराला वे तब बनते हैं जब वे कवि के निजी रचनात्मक संघर्ष के साक्षात्कार वाले प्रतीकार्थ में नियोजित होते हैं। 'तुलसीदास' में निराला ही तुलसीदास भी हैं और वे ही तुलसी के राम भी हैं। अर्थात राम-कथा के रचयिता तुलसीदास, राम और निराला यहाँ एकम एक हो जाते हैं।''[२५]

कथानकः- आरम्भिक दस बंधों में निराला जी ने तुलसीदास के आविर्भावकाल की राजनीतिक दशा का वर्णन किया है। इस्लाम की शक्ति और सभ्यता से समूचा देश आक्रांत और दलित हो चुका है। नैराश्य और निष्क्रियता से देश जड़ बन गया है।

इस भूमिका के पश्चात राजापुर में शास्त्राध्ययन में लीन युवक तुलसी का उल्लेख किया गया है। एक दिन युवक तुलसी मित्रों के संग चित्रकूट यात्रा को निकलते हैं। वे एक ओर गिरिशोभा से मुग्ध होते हैं, तो दूसरी ओर राम के इस परमधाम की अधोगति पर खिन्न भी होते हैं। तुलसी ध्यानस्थ हो अपने मन को उर्ध्वगामी करते हैं। परन्तु भारत की पतित एवं दरिद्रावस्था का अंधकार उनके अन्तरचक्षुओं के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। तुलसीदास देश

की अधोगति पर चिंता मग्न होते हैं। वह एक ज्योतिलोक की कल्पना करते हैं जिसमें राम का आदर्श चरित्र मुक्ति का आलोक बन जीवन का भव्य संदेश देता है। इस संकल्प के साथ ही उन्हें अपनी पत्नी रत्नावली का स्मरण हो उठता है। क्षण भर में ही तुलसी प्रियामोह की अधःभूमि पर उतर आते हैं।

वह पुनः अपने मित्रों के साथ तीर्थदर्शन आदि के पश्चात घर लौटते हैं। यहाँ तुलसी-रत्नावली के प्रेम का वर्णन होता है।

पत्नी के प्रेममोह में ग्रस्त तुलसी एक बार भी अपनी पत्नी को नैहर नहीं जाने देते। रत्नावली के माता-पिता के सब बुलावे टाल देते हैं। एक दिन रत्नावली का भाई, बहन को तुलसीदास की अनुपस्थिति में ले जाता है। अगले ही दिन तुलसीदास पत्नी के पीछे-पीछे ससुराल पहुँच जाते हैं। उनकी पत्नी पति के इस लोकलाज रहित मोह पर दुःखी हो उनकी भर्त्सना करती है। पत्नी के कटु वचनों से प्रबोध पाकर कवि तुलसीदास का संस्कार जाग उठता है। काम-वासना भस्म हो जाती है। वह पत्नी के स्थान पर शारदा के दर्शन करते हैं। भारती की दृष्टि से आकृष्ट हुआ कवि भावलोक की ऊँचाइयों को पार करता आनंद लोक में विचरण करने लगता है। उसे देशकाल का मायावी ज्ञान नहीं रहता। थोड़ी देर में जब देहात्म-बोध जाग्रत होता है तो भी कवि देहबंधनों से ऊपर उठकर विशुद्ध आत्मरूप की स्थिति प्राप्त किए रहता है और जड़ के विरूद्ध चेतन के संघर्ष को छेड़ने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। सभी सांसारिक स्वर सुप्त हो जाते हैं, अलौकिक गीत फूटने को होता है। तुलसीदास सब सांसारिक बंधन त्यागकर 'राम' की महिमामहिम मूर्ति अपने अन्तर में स्थापित कर लेते हैं। एक नए आलोक का उदय उनके अन्तस में होता है और वे वीर-राग रामानुगामी बन जाते हैं।

"स्पष्ट है कि इस कविता में आख्यान नाम मात्र को है। एक तरह यह मानवीय-मानसिक ऊर्ध्वगमन का विवरण है। इस रचना की सबसे बड़ी शक्ति है इसमें उदात्त भाव, कल्पना-प्रवणता, नाटकीयता, तुलसीदास के माध्यम से कवि के मन का अन्तर्द्वन्द्व, तनाव, कविता में अनवरत बहाव अर्थात अंतहीन अंत और अन्विति। 'राम की शक्ति पूजा' की तरह तुलसीदास भी निराला की श्रेष्ठतम काव्य-कृतियों में गिनी जाती है।

यह 'कामायनी' की तरह छायावाद की अप्रतिम प्रबंध-रचना है। 'कामायनी' जैसी वृहदाकार न होने से इसे चाहे महाकाव्य का दर्जा न दिया जाय तथापि महाकाव्योचित औदात्य से ओतप्रोत यह छायावाद की एक अमूल्य लम्बी कविता है।''[२६]

दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर निराला की लम्बी कविताएँ और 'निराला' भारतीय महाकवियों, वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास आदि की परंपरा में आते हैं जिन्होंने जैवी प्रवृत्ति और भोग-विलास को बढ़ावा न देकर जीवन के स्वस्थतर उपादानों और साधनाओं का चित्रण किया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है- ''कालिदास ने मदन-वैभव और अकाल-बसंत की समस्त आकर्षक मोहकता को वैराग्य के एक भ्रू-भंग से धूलिसात करा दिया और फिर तपस्या की आँच में तपाकर प्रेम के कुंदन को चमकाया। सीता, पार्वती और राधिका भारतीय कवि की आदर्श कल्पना हैं। सबको तपस्या की आँच में तपना पड़ा है, सबको दुःख और वेदना के मरू-कांतार को पार करना पड़ा है और तब जाकर भारतवर्ष के सहृदय ने उन्हें देवता के आसन पर बैठाया है।''[२७]

निराला के तुलसीदास को भी इस मरू-कांतार को पार करना पड़ा है। कालिदास की भांति निराला ने भी मदन-दहन कराया है-

''जागा, जागा संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण जल,
देखा, वामा, वह न थी, अनल प्रतिमा वह,
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान,
हो गया भस्म वर प्रथम भान,
छूटा जग को जो रहा ध्यान, जड़िमा वह।''[२८]

स्वयं तपःपूत होने के बाद वह रत्नावली की ओर नहीं लौटता, यहाँ दुष्यंत-शकुन्तला अथवा पार्वती-महादेव के मिलन जैसा उद्देश्य भी नहीं है और न नारी के प्रति वैराग्यजन्य हीन-भावना का मध्ययुगीन संदेश है। पूरे प्रसंग को आधुनिक बनाने के लिए लम्बी कविता

में नवीन मनोविज्ञान का सहारा लेना अत्यंत आवश्यक था, जो यहाँ नाटकीय रूप में प्रस्फुटित हुआ है।

देशकाल की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अवस्थाओं के कारण कवि के मन में अन्र्द्वन्द्व और उनकी कविता में सर्जनात्मक तनाव दिखलाई पड़ता है। राजनीतिक दासता के कारण देश में फैली हुई वर्तमान कुव्यवस्था और पीड़ा के वर्णन का आभास जड़-प्रकृति के उन वचनों द्वारा दिया गया है जो उसने तुलसीदास से कहा था-

"फिर असुरों से होती क्षण-क्षण
स्मृति की पृथ्वी यह दलित चरण।"[२६]

निम्न वर्ग के उत्थान को लेकर चलने वाले वर्तमान आंदोलन के प्रभाव की झलक के माध्यम से कविता में तनाव का प्रस्फुटन होता है। क्षत्रियों का बल नष्ट हो चुका था। उनमें केवल मिथ्या गर्व ही शेष बचा था। द्विज चाटुकार हो गये थे। शूद्रों की दशा बड़ी ही शोचनीय हो गयी थी-

"चलते फिरते, पर निःसहाय
वे दीन, क्षीण कंकालकाय,"[३०]

× × ×

"वे शेष श्वास, पशु मूक भाष
पाते प्रहार अब हताश्वास,
सोचते कभी आजन्म ग्रास द्विजगण के
होना ही उनका धर्म परम
वे वर्णाश्रम, रे द्विज उत्तम।
वे चरण चरण बस, वर्णाधम रक्षण के।"[३१]

एक दो स्थानों पर साम्यवादी विचार प्रणाली के अनुकूल धनपतियों की शोषण-प्रक्रिया के माध्यम से कविता में सर्जनात्मक तनाव पैदा हुआ है-

" वह रंक, यहाँ जो हुआ भूप निश्चय रे
चाहिए उसे और भी और,

फिर साधारण को कहाँ ठौर।

जीवन के, जग के, यही तौर है जय के।''[३२]

'जो यहाँ राजा हैं, वे छल-प्रपंच के कारण ही ऐसे बन सके हैं। उन्हें और अधिक प्राप्त करने की आकांक्षा बनी रहती है। दूसरों का धन अपहरण किए बिना आदमी संपत्तिवान नहीं बन सकता। आज के बड़े-बड़े ताल्लुकेदार क्या अपने-आपकी कमाई खाते हैं।''[३३]

मानस के प्रणेता 'तुलसीदास' अपनी पत्नी रत्नावली के वाक-वाण से विद्ध होकर रामकथा की ओर प्रवृत्त हुए थे, ऐसा अनुश्रुतियों में आया है।

'इस कथा को आधार मानकर कवि ने 'तुलसीदास' में सम्भव प्रमाणों की कल्पना से अनूठे भाव उत्पन्न किए हैं। सर्वप्रथम भूमिका रूप में तुलसीदास को समष्टि की ओर प्रवृत्त न होने की बात बताकर कवि ने तब इस्लाम धर्म का उन्नत रूप दिखाया है। इसके फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के ह्रासोन्मुख समाज और वर्ण एवं धर्म की स्थिति के पतन को उजागर किया है जो पुनः कविता में तनाव को जाग्रत करता है।'[३४]

'' भोगल दल बल के जलद मान

दर्पित पद उन्मन-नद पठान

हैं बहा रहे दिग्देश ज्ञान का शर खरतर।''[३५]

वर्ण एवं धर्म की स्थिति भी तब ह्रासोन्मुख थी-

'' विधि की इच्छा सर्वत्र अटल

यह देशप्रेम ही था हतबल

वे टूट चुके थे ठाट सकल वर्णों के

द्विज चाटुकार, हत इतर वर्ग वर्णों के।''[३६]

लम्बी कविता के रचना विधान के आधार पर एक प्रमुख तत्त्व उसका लम्बायमान होना भी है। छायावाद से पहले ६०० पंक्तियों की (१०० बंधों में) लम्बी कविता नहीं लिखी गई थी। पंत जी की 'परिवर्तन', प्रसाद जी की 'प्रलय की छाया' और निराला जी की 'तुलसीदास' उस समय नए प्रयोग थे।

'राम की शक्ति पूजा' में जहाँ रचनात्मकता का यह संघर्ष रावण और राम के संघर्ष में आरोपित है, वहाँ 'तुलसीदास' में यह तुलसीदास और सम्पूर्ण मायावी शोषक, अत्याचारी मुस्लिम संस्कृति के आपसी संघर्ष में आरोपित है। प्रकारान्तर से इस मायावी, शोषक संस्कृति और रावण के आसुरी प्रसार में अन्तर नहीं है। दोनों कथनों के संकेतार्थ एक ही हैं। अंतर केवल यही है कि ''राम चूँकि एक कवि या रचनाकार नहीं हैं, इसीलिए उनके चरित्र में जब निराला अपने रचनात्मक संघर्ष को प्रतिरोपित करके एक नया अर्थ खड़ा करते हैं तो वह थोड़ा अमूर्त हो जाता है, क्योंकि राम के व्यक्तित्व की जो ऐतिहासिक, पौराणिक और जन-मन-गत श्रृंखला या पहचान है, उसमें कवि राम की कल्पना थोड़ी कठिन लगती है। लगता है राम के चरित्र को इस नए अर्थ की प्रतीति और प्रतिष्ठापना के लिए कुछ ज्यादा ट्विस्ट कर दिया गया है। लेकिन रचनात्मक संघर्ष की उसी समस्या को जब 'निराला' तुलसीदास में आरोपित करते हैं तो वह सहज ही विश्वसनीय लगता है और उसमें नाटकीयता भी उत्पन्न हो जाती है। द्विज समर्थक तुलसी का शूद्र-समर्थक और द्विज-विरोधी होना भी कोई विशेष बाधा उत्पन्न नहीं करता-

'' होगा फिर से दुर्घर्ष समर
जड़ से चेतन का निशि-वासर
कवि का प्रति छवि से जीवनहर जीवन भर।
भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल
जय, इधर ईश, है उधर सबल मायाकर।''[३७]

इस समर की उद्घोषणा, और शक्ति-प्राप्त राम की 'होगी जय, होगी जय' के धरातल एक ही हैं। लेकिन 'तुलसीदास' में सिर्फ सांस्कृतिक अधःपतन और कवि की ओजस्वी वाग्मिता से उसकी मुक्ति का सवाल ही एकमात्र सवाल नहीं है। कविता में नाटकीयता कवि की परम्परागत शैली से जगह-जगह मुखरित होती है।

''भारतीय संस्कृति के सूर्य के अस्त होने पर मुसलमानी सभ्यता के चन्द्र का उदय हुआ है। इस विलासमयी सभ्यता के आकर्षण और उसके सम्मोहन का प्रकृति के सुकुमार

उपकरणों द्वारा कवि ने नाटकीय ढंग से सटीक चित्रण किया है।''[३८] इस विलासमय वातावरण में औसत भारतीय जनता की स्थिति नाटकीय ढंग से द्रष्टव्य है-

'भूला दुख, अब सुख-स्वरित जाल
फैला यह केवल कल्प-काल-
कामिनी कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता,
प्राणों की छवि मृदु-मंद-स्पंद,
लघु-गति, नियमित-पद, ललित छंद,
होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता।'[३९]

'अब तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली को सृष्टि-रहस्य के रूप में देखते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में उसका शारीरिक आकर्षण प्रधान है। निराला उनके इस विभ्रम का खंडन प्रस्तुत छंद में बड़े नाटकीय ढंग से करते हैं-

''जिस शुचि प्रकाश और सौर-जगत्
रूचि-रूचि में खुला, असत् भी सत्
वह बँधा हुआ है एक महान परिचय से,
अविनश्वर वही ज्ञान भीतर,
बाहर भ्रम-भ्रमरों को, भास्वर,
वह रत्नावली-सूत्रधर, पर आशय से।''[४०]

तुलसीदास रत्नावली के प्रति आसक्ति को ही जीवन का केन्द्रीय तत्त्व मान बैठते हैं। कवि निराला जी ने 'तुलसीदास' नाम प्रस्तुत लम्बी कविता में इस आकर्षण जाल को नाटकीयता से उभारा है-

''उस प्रियावरण प्रकाश में बँध,
सोचता, - 'सहज पड़ते पग सध,
शोभा को लिए उर्ध्व औ अध घर-बाहर,
वह विश्व सूर्य, तारक-मंडल
दिन, पक्ष, मास, ऋतु वर्ष चपल

बँध गति प्रकाश में बुद्ध सकल पूर्वा पर''[४१]

कोरे देहवादियों पर तीखा व्यंग्य करते हुए कवि निराला ने यहाँ पर पुनः एक नाटकीय मोड़ दिया है। तुलसीदास के चंचल मन के सम्मुख रत्नावली विराट् योगिनी रूप में पति को फटकारती है-

'धिक! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कु छ हाड़-चाम।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।'[४२]

पत्नी के मुख से कटु वचन सुनकर तुलसीदास रूप के इस अरूप परिवर्तन से स्तब्ध हो जाते हैं। उनके आंतरिक सुप्त संस्कार जागृत हो उठते हैं और तब उनकी दृष्टि रत्नावली के रूप में तेज-पुंज के दर्शन करती है। यहाँ पर भी कवि निराला ने इस लम्बी कविता को एक नाटकीय मोड़ दिया है-

'देखा, वामा वह न थी, अनल प्रतिमा वह,।'[४३]

लम्बी कविता के फलक में विचार तत्त्व प्रमुख कारण है जो उसे प्रदीर्घता के लिए अवसर प्रदान करता है। 'तुलसीदास' लम्बी कविता में कवि निराला ने स्वयं के विचारों के साथ महाकवि तुलसीदास के विचार-दर्शन से भी 'तुलसीदास' को आपूरित किया है। सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक समकालीन पृष्ठभूमि को उभारकर और तुलसीदास की पत्नी रत्नावली को आरम्भ में आसक्ति (माया) का केन्द्र माना है और बाद में उसको ही मातृस्वरूपा का स्वरूप दिया है। 'तुलसीदास' लम्बी कविता में भिन्न-भिन्न गहन विचारों की विचारधारा प्रस्फुटित होती रही है। प्रदीर्घता, विचार तत्त्व, और कविता को एकसूत्रता में बाँधे रखने की क्षमता जिसे हम अन्विति कहते हैं, इस कविता में पूर्णतः अनुस्यूत है।

तुलसीदास का अन्त भी अन्तहीन ही है। लम्बी कविता अपने आप में गतिशील जीवन के यथार्थ को लेकर चलती है, इसलिए वह कभी भी अन्त को प्राप्त नहीं करती।

चूँकि तुलसीदास सिद्धान्त विशेष पर आधारित न होकर विचार प्रधान लम्बी कविता है। गतिशील जीवन का यथार्थ, देशकाल-वातावरण कभी न समाप्त होने वाले बिन्दु की तरह कविता में सन्निहित है।

अंततोगत्वा 'तुलसीदास' लम्बी कविता का मूल्यांकन करने के बाद कहा जा सकता है कि यह रचना अपनी उदात्तता, भाव-प्रवणता, नाटकीयता, तनाव, अन्विति, अंतहीन अंत अर्थात लम्बी-कविता के रचना विधान के तत्त्वों के आधार पर एक सटीक और श्रेष्ठ रचना ठहरती है।

कुकुरमुत्ता

सन १९४२ में प्रकाशित 'कुकुरमुत्ता' निराला जी की हास्य-व्यंग्य प्रधान की एक ऐसी लम्बी कविता है, जो आज तक हिन्दी आलोचना को चुनौती देती आ रही है। यह निराला जी की सर्वाधिक विवादास्पद रचना है। निराला जी की यथार्थवादी प्रवृत्ति, व्यंग्य-वृत्ति, नई प्रगतिशील सामाजिक चेतना की यह परिचायक है।[४४] लम्बी कविता के रचना विधान का आधार 'कुकुरमुत्ता' एक अद्वितीय सटीक उदाहरण है। लंबायमान स्वरूप , सृजनात्मक तनाव, अंतहीन अन्त और नाटकीयता जैसे तत्त्वों से ओतप्रोत 'कुकुरमुत्ता' एक दोधारी तलवार है जो लक्ष्य-अलक्ष्य, स्व-पर, दायें-बायें, पीछे-आगे, सब ओर बरसती है, सब पर प्रहार करती है। 'कुकुरमुत्ता' एक ऐसी व्यंग्य प्रधान लम्बी कविता है जिसे हँसी में नहीं उड़ाया जा सकता, हँसने से नहीं समझा जा सकता क्योंकि यह व्यंग्य अनेकमुखी है। 'कुकुरमुत्ता' में लम्बी कविता का रचना-विधान बेजोड़ है।

'कुकुरमुत्ता' की रचना और इसका प्रकाशन निराला जी के काव्य-संसार की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। छायावाद के जिस अभिजात्य काव्यपथ पर कवि आरम्भ से चलता आ रहा था, 'तुलसीदास' उसका अन्तिम पड़ाव है और आगे वह जिस यथार्थ यात्रा के लिए कृत संकल्प है, उसक प्रथम चरण है 'कुकुरमुत्ता'। इसके प्रथम संस्करण (१९४२) में इसके साथ अन्य सात कविताएँ- गर्म पकौड़ी, प्रेम-संगीत, कानी और रानी, खजोहरा, मास्को डायलाग्स, खेल, एफटिक शिला भी संग्रहीत थीं। बाद में ये सातों रचनाएँ 'नये

पत्ते' १९४६ में रख दी गई और कुकुरमुत्ता को एक लम्बी कविता के रूप में स्वतन्त्र रचना का रूप दे दिया गया। निराला जी की अपनी दृष्टि में यह रचना विशेष महत्त्व रखती थी, क्योंकि इसके माध्यम से वे एक युगान्तर, सूचित और घटित कर सके थे।"[४५]

कथानक- एक नवाब थे - बड़े ठाट-बाट वाले। उन्होंने अपनी बाड़ी में बहुत से देशी-विदेशी पौधे लगा रखे थे। उन्होंने फारस से गुलाब मँगाकर बाड़ी में लगवाये। बहुत से नौकरों-मालियों को उनकी देखभाल के लिए रखा था। फूल-पौधों को ऐसे सजाया उगाया गया था जैसे गजनबी का बाग हो। जहाँ क्यारियों में फारस का 'गुलाब' खिला था, उसी के बगल में नाले के पास स्वतः उग आने वाला देशी पौधा 'कुकुरमुत्ता' सर ताने खड़ा था डाल पर इतराते हुए गुलाब को कुकुरमुत्ता आड़े हाथों लेता है और उसकी सब शान झाड़ते हुए अपना रंग जमाता है। बाग के बाहर कुछ झौंपड़े पड़े हुए थे जिनमें अनेक खादिमों के साथ मोना नामक एक बंगालिन मालिन रहती थी। नवाब साहब ने उसे अपने पास स्वैराचारपूर्वक आने जाने का गौरव प्रदान कर रखा था। उस मालिन की बेटी गोली और नवाब की बेटी बहार जान परस्पर सखि भाव रखती थीं। एक दिन दोनों बाग में घूमने आई। 'बहार' गुलाबों की बहार देखने लगी, पर गोली कुकुरमुत्ता पर रीझ गई। बहार के पूछने पर गोली ने 'कुकुरमुत्ता' का महत्त्व बताया और कहा कि इसका कबाब बड़ा स्वादिष्ट बनेगा। 'कुकुरमुत्ता' तोड़ लिया गया। गोली की माँ ने अपने घर कबाब बनाया। इतनी देर दोनों सहेलियाँ राजा-प्रजा का खेल खेलतीं रहीं। गोली डिक्टेटर बनी और बहार भुक्कड़ फॉलोअर-सी उसके पीछे पीछे। कबाब बहार को बड़ा स्वादिष्ट लगा। उसने अपने घर आकर कुकुरमुत्ता के कबाब की प्रशंसा नवाब साहब से की। नवाब साहब ने माली को हुक्म दिया, कुकुरमुत्ता लाओ, कबाब बनेगा। माली ने कहा - हुजूर कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा, रहे हैं सिर्फ गुलाब। नवाब साहब क्रोध से काँपते हुए बोले - जहाँ गुलाब उगाए गए हैं वहाँ अब कुकुरमुत्ता उगाओ, सबके साथ, मैं भी उसी को चाहता हूँ। माली ने नम्रतापूर्वक कहा- खता मुआफ! कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता हुजूर।

प्रश्न है, इस सारी प्रतीकार्थक कथा का वास्तविक कथ्य क्या है। कवि का लक्ष्य क्या है? एक बात तो साफ है कि निराला जी ने इस रचना में ऐय्याश नवाबों, रईसों,

पूंजीपतियों या ऐसे शासकों पर व्यंग्य किया है जो स्वयं ऐश्वर्य-विलास में डूबे रहते हैं और किसान, मजदूर, मालियों को मजदूर रखते हैं, व्याभिचारी हैं, विदेशी पौधों-वस्तुओं से अपने घर-बाग सजाते हैं, अहंवादी हैं, शोषक हैं। इतने सभी व्यंग्य और बिन्दुओं को एक साथ लम्बी कविता के धरातल पर सार्थक रूप में नवीन प्रयोगों के साथ खड़ा कर देने का काम केवल निराला ही कर सकते थे।

'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता में कवि निराला जी ने शोषक और शोषित वर्ग के बीच प्रतीकों के माध्यम से जिस बुराई और विसंगति को उभारा है वह कवि के मन में समकालीन वातावरण को देखते हुए चल रहा तनाव है। कवि के मन का यह तनाव अमीर तथा गरीब के मध्यान्तर खिंच रही लकीर को उभारता है। जिस ढंग से कवि ने इन बिन्दुओं को उभारा है उस शैली में निसर्गतः कविता में नाटकीय पुट आ गए हैं जो कविता को श्रेष्ठ बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

फारस का गुलाब उच्च शोषक वर्ग, बुर्जुआ मनोवृत्ति विचार पद्धति और संस्कृति का प्रतीक है। नवाब साहब फारस के इस पौधे को बड़ी हिफाजत से अपने बाग में रखते हैं। कुकुरमुत्ता इस शोषक पूँजीवादियों को फटकारते हुए कहता हैं जहाँ हमें इन पंक्तियों के माध्यम से आरम्भ से ही कविता में सृजनात्मक तनाव दिखलाई पड़ता है-

"अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो-आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहाया जाड़ा घाम।
शाहों राजों, अमीरों का रहा प्यारा,
इसलिए साधारणों से रहा न्यारा।।"[४६]

गुलाब शाहों, राजाओं, और अफसरों का प्यारा है। वह उच्चवर्गीय, ऐश्वर्य-विलास, नाजुकमिजाजी का प्रतीक है। वह सर्व-साधारण से किनारा किए रहता है। कितनों को

दुबला करके स्वयं मोटा होता है वह। कितनों का शोषण करता है। उसके जीने के ढंग में अहंकार झलकता है।

इसके विपरीत कुकुरमुत्ता सर्व-साधारण का प्रतीक है। ये सर्वसाधारण प्रकृति-पुत्र होते हैं। इन्हें ऊँचे लोगों की तरह जीवन की बाड़ी में क्यारियों में सजाकर कोई नहीं पालता, ये तो स्वतः ही उगते-पलते हैं। न इन्हें अपनी सेवा के लिए किसी को गुलाम बनाने की जरूरत है, न किसी दूसरे का ये शोषण करते हैं।

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि के मन से समकालीन वातावरण को देखते हुए अराजकता, विसंगतियों, सामाजिक-तन्त्र में व्याप्त अन्तर, जैसी बुराइयों के प्रति अन्दर से तनाव सृजित हो उठता है। जिसे कवि ने 'कुकुरमुत्ता' लम्बी-कविता में तीखी भाषा से मुखरित किया है।

'गुलाब' के माध्यम से पूँजीपति वर्ग पर कटाक्ष करते हुए कुकुरमुत्ता की मुखरता इस लम्बी-कविता में तनाव को उभारती है, जिसमें सौन्दर्य को परे करके लक्षणा के प्रयोग से कटु-सत्य को उभारा गया है।

"चाहिए तुझको सदा मेहरून्निसा
जो निकाले इत्र, रू, ऐसी दिशा
बहाकर ले चले लोगों को, नहीं कोई
किनारा
जहाँ अपना नहीं कोई भी सहारा
ख्वाब में डूबा चमकता हो सितारा
पेट में डँड पेले हों चूहे, जबाँ पर लफ्ज़ प्यारा।"[४७]

मेहरून्निसा (नूरजहाँ का वास्तविक नाम) के प्रसंग ने एक आभिजात्य और विलासी परिवेश की अवतारणा कर दी है।[४८]

पूरी कविता में बीच-बीच में व्यंग्य के गहरे छींटे कवि के मन के तनाव और विनोदमयी वातावरण को कायम किये रहते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में विख्यात प्रयोगधर्मी कवि

ईलियट और उसके अंधभक्तों पर करारा व्यंग्य करते हुए आलोच्य कविता में सृजनात्मक तनाव को जगह दी है-

"कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर
टी०एस० ईलियट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने भी जिगर पर रखकर
हाथ, कहा, 'लिख दिया जहाँ सारा।"[४६]

कुकुरमुत्ता के दूसरे खण्ड का आरम्भ नवाब के बाग के बाहर पड़े झोपड़ों की दीन दशा के वर्णन से होता है। निम्नवर्गीय मनुष्यों के दयनीय जीवन के वर्णन को प्रामाणिक बनाने के लिए और अपने मन के द्वन्द्व को बाहर निकालने के लिए अनुपम, अद्वितीय प्रयोग इस लम्बी-कविता में किया है। इससे कविता में उसका प्रमुख तत्त्व तनाव सृजित हो उठा है-

"जगह गन्दी, रूका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, जिन्दगी की लन्तरानी-
बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियाँ
सेलरों की परों की थी गड्डियाँ
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे
धूप खाते हुए कण्डे।"[५०]

× × ×

"हवा बदबू से मिली
हर तरह की बासीली पड़ गई।"[५१]

समकालीन परिवेशगत जटिलताओं एवं संश्लिष्टताओं के साथ, वाह्य संघर्ष के विभिन्न आयाम और आन्तरिक द्वन्द्व के अनेक स्वर इस कविता की रचना-प्रक्रिया को सटीक बनाते हैं। 'कुकुरमुत्ता' लम्बी-कविता वाह्य रूप से तो असम्बद्ध या विश्रृंखल दिखाई पड़ती है किन्तु आन्तरिक धरातल पर ये विभिन्न तथ्यों, प्रसंगो और सन्दर्भ संकेतों को गूँथकर एक सूत्रता में बाँधे रखती है। लम्बी कविता में बिम्बात्मक एवं वैचारिक दोनो

प्रकार की अन्विति एक साथ रह सकती हैं जो हमें 'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता में देखने को मिलती है। जहाँ पूरी कविता प्रतीक और बिम्ब पर आधारित है वहीं इसमें वैचारिकता भी कवि के मुख से मुखरित होकर विभिन्न आयामों को जन्म देती है। इस तरह से दोनों प्रकार का परस्पर टकरावपूर्ण संयोजन 'कुकुरमुत्ता' की संरचना में एक संतुलित आधार तैयार करता है।

'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता में विभिन्न मोड़ों पर नाटकीयता इसको रचनात्मक स्तर पर पुष्ट करती है। 'कुकुरमुत्ता' में शोषक वर्ग के प्रति उठाई गई आवाज, निम्न वर्ग (कुकुरमुत्ता) को उसकी क्षमताओं का अहसास कराकर कवि ने अपने नवीन विचार और साहस का परिचय दिया है।

इस रचना में उलझन में डाल देने वाली बात है कुकुरमुत्ता का बड़बोलापन। वह अपनी बहक में अपनी तारीफ के पुल बाँध देता है। वह क्या नहीं है? वह कहता है कि संस्कृत, फारसी, अरबी आदि सभी भाषाओं के गीत-गजलें, काव्य मुझी से पैदा हुए हैं। सब में मेरा ही गठन है, सब पर मेरा ही रौब-दाब रहता है। जब-जब शासकों से युद्ध हुए मैंने पैंतरे बदले। मेरा ही रस लेकर आदि कवि वाल्मीकि, कालिदास, व्यास, भास सबने अपने ग्रन्थ रचे। वह कहता है, बलराम का हल, पैराशूट की छतरी, चीन की छतरी, भारत का छत्र, विष्णु का सुदर्शन चक्र, दुनिया की गोलाई, डमरू, तबला, तानपूरा, बालडांस का ढंग, रामेश्वर और मीनाक्षी के मन्दिर, विक्टोरिया मेमोरियल, गिरिजाघर, गुम्बद आदि सब उसी से ही या उसी की नकल पर निर्मित हुए हैं।

इस वर्णन में 'कुकुरमुत्ता' के माध्यम से कवि की अतिरंजना है, इसमें संदेह नहीं, परन्तु साथ ही साथ इस लम्बी कविता में कवि की मौलिक विचार-शक्ति की अभिव्यक्ति भी है। 'कुकुरमुत्ता' में विचार तत्त्व ने आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के साथ ग्रामीण परिवेश, हमारी जीवन-पद्धति, हमारी भावना, हमारे विश्वास और अन्धविश्वास, हृदय, मन, मस्तिष्क और चिन्तन-मनन की बनी बनाई परिपाटी को निश्चित रूप से हिला दिया है। चूँकि चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है, विचारों की उत्पत्ति समस्या से होती है और जब तक वह समस्या हल नहीं हो जाती तब तक वह निरन्तर क्रियाशील रहती है। 'कुकुरमुत्ता' एक

समस्या-प्रधान कविता है जो व्यक्ति, समाज, देश, परिवेश और सभ्यता-संस्कृति के लिए सोचने पर विवश करती है। कुकुरमुत्ता में विचार-प्रक्रिया का एक प्रवाह उपस्थित हुआ है।

'कुकुरमुत्ता' के रचना विधान में पूर्णतः सृजनात्मक तनाव दिखलाई पड़ता है जो लम्बी कविता का अनिवार्य तत्त्व है और सृजनात्मक तनाव के द्वारा ही 'कुकुरमुत्ता' अपनी प्रदीर्घता को प्राप्त होती है। कवि के मन में कुकुरमुत्ता का सृजन करते समय बहुत सारे 'कारण' कार्य करते हैं और यही प्रेरक कारण 'कुकुरमुत्ता' को प्रदीर्घ बना पाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

'कुकुरमुत्ता' वाह्य रूप से तो असम्बद्ध या विश्रृंखल सा दिखाई पड़ता है किन्तु आन्तरिक धरातल पर विभिन्न तथ्यों, प्रसंगों, संदर्भ संकेतो को गूँथकर एकसूत्रता में बाँधे हुए है। व्यक्ति, समाज, राजनीति, मनोविज्ञान, इतिहास, मिथक, फैंटेसी, भूत, भविष्य, वर्तमान, नीति, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज को कुकुरमुत्ता अपने कथानक में समेटकर चलता है किन्तु उसमें ये सभी आयाम-स्थितियाँ एक संवेदनात्मक उद्देश्य को प्रकट करते हैं जिसके कारण असम्बद्ध प्रसंगों-सन्दर्भों में भी एक सम्बद्धता दिखती है, अनेकरूपता में एकरूपता आ जाती है। यही कुकुरमुत्ता में लम्बी कविता का प्रमुख तत्त्व अन्विति है जो विभिन्न मोतियों को एक माला में पिरोए हुए है।

'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता लाक्षणिक स्तर पर विभिन्न समस्याओं को उभारते हुए विभिन्न बिन्दुओं को अपने साथ लेकर चली है इसीलिए संवेदनात्मक पुट तो इस कविता में दिखलाई पड़ता है परन्तु नाटकीय संवाद उतने प्रभावपूर्ण नहीं हैं जैसे हम अन्य लम्बी-कविताओं में देखते हैं। कविता के आरम्भ में नाटकीयता नजर आती है जब सर्वहारा वर्ग का प्रतीक कुकुरमुत्ता, पूँजीवादी वर्ग के प्रतीक गुलाब पर नाटकीय अंदाज में व्यंग्य करता है-

"आया मौसिम, खिला फारस का गुलाब,
बाग पर उसका पड़ा था रोबोदाब,
वही गंदे में उगा देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठे सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता-

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो-आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट''[५२]

'कुकुरमुत्ता' अपनी उपयोगिता सिद्ध करते हुए दार्शनिक शब्दों में, नाटकीय अंदाज में अपनी बात को कहता है। कुकुरमुत्ता का कहना है कि बेतुकी और असंगत बातें लिखकर टी०एस० इलियट जैसे लोग भी महाकवि कहलाने लगे और जिन लोगों ने उनका साहित्य पड़ा उन्होंने इसकी अत्याधिक प्रशंसा की मानो सारे संसार का रहस्य इलियट ने लिख दिया हो। कुकुरमुत्ता में कहे गये इस दार्शनिक तीखे व्यंग्य में नाटकीयता दृष्टिगोचर हो उठी है-

''कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर
टी०एस० इलीयट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने भी जिगर पर रखकर
हाथ कहा, 'लिख दिया जहाँ सारा'।
ज्यादा देखने को आँख दबाकर
शाम को किसी ने जैसे देखा तारा
जैसे प्रोगेसिव का कलम लेते ही
रोके नहीं रूकता जोश का पारा''[५३]

× × × × ×

गुस्सा आया काँपने लगे नव्वाब
बोले ''चल, गुलाब जहाँ थे, उगा,
सबके साथ हम भी चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।''
बोला माली, ''फरमाएँ मुआफ खता,
कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता।''[५४]

कुकुरमुत्ता के अंत में भी नाटकीय अंदाज में नव्वाब और माली का संवाद कविता में नाटकीयता को ऊँचाई देता है। 'कुकुरमुत्ता उगाये नहीं उगता' एक सच्चाई को प्रमाणित करता है। साधारण या सामान्य को पैदा नहीं किया जा सकता। वह अपने अस्तित्त्व की सार्थकता और ऊपरी नगण्यता में भी स्वतन्त्र है, स्वयंभू है।

नाटकीयता, अन्विति, विचार तत्त्व, सृजनात्मक तनाव के साथ लम्बी कविता का अन्त भी अन्तहीन होता है। चूँकि 'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता अपने आप में गतिशील जीवन के यथार्थ को लेकर चल रही है सार्वभौमिक समस्याओं को संवेदना के धरातल पर उभार रही है, इसीलिए वह कभी अन्त को प्राप्त नहीं कर सकती।

'कुकुरमुत्ता' मात्र कलेवर की प्रदीर्घता के कारण लम्बी कविता नहीं है, बल्कि जीवन के विविध सन्दर्भों, प्रसंगों, बिन्दुओं, घात-प्रतिघात के निष्कर्षों को अपने में समेटे एक अंतहीन कालयात्री की मानिन्द अन्विति, नाटकीयता, तनाव, प्रदीर्घता और वैचारिकता को मिलाकर निरन्तर अग्रसर होने वाली रचना है।

सरोज स्मृति

'सरोज स्मृति' का प्रणयन निराला ने अपनी पुत्री सरोज के असामयिक निधन से विषादग्रस्त होकर किया है। इसका सृजन काल १९३५ ई० है। यह हिन्दी साहित्य की एकमात्र वैयक्तिक विलापिका है, जिसमें एक पिता धनाभाव के कारण अपनी पुत्री का उचित उपचार न करा सकने में असमर्थ, पुत्री को कालकवलित होते देखता है। उस समय पुत्री की उम्र १८ वर्ष थी। 'सरोज स्मृति' विलापिका/शोकगीत होने के साथ-साथ निराला की आत्मगाथा भी है।

ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन-सिन्धु तरणः
तनये, ली कर दृक्पात तरूण
जनक से जन्म की विदा अरूण।
गीते मेरी, तज रूप-नाम

वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय।''[५५]

प्रस्तुत विलापिका 'सरोज स्मृति' में निराला अपनी समस्त विपन्नता, संघर्ष एवं नैराश्य के साथ उपस्थित देखे जा सकते हैं। अतः कहना न होगा कि यह कृति निराला की अपनी जीवनगाथा भी है। कवि की अपनी कहानी होने के साथ ही यह समाज का भी सच्चा चित्र है। डा० नामवर सिंह मानते हैं कि - ''यह केवल आत्मकथा नही है, बल्कि अपनी कहानी के माध्यम से एक-एक कर पुरानी रूढ़ियों और आधुनिक अर्थ पिशाचों पर प्रहार किया गया है।''[५६]

पिता द्वारा पुत्री के सौन्दर्य का निर्लिप्त और अनुपम वर्णन, एक ही लघु कृति में अनेक तथ्यों का समावेश, मार्मिक वर्णन, निराला की आत्मकथा सब मिलाकर सरोज स्मृति को सहज औदात्य प्रदान करते हैं और इसे सर्वोत्कृष्ट विलापिका घोषित करते हैं।

''सरोज स्मृति' को आत्मसम्बद्ध काव्यवर्ग में रखा जा सकता है निराला ने अपने व्यक्तिगत जीवन की करूणा और विडम्बना को बहुत कम स्थलों पर अभिव्यक्ति दी है। सरोज- स्मृति में निराला का आत्मनिर्वासन विस्मयकारी है। वस्तुभूमि के रूप में पुत्री के देहावसान का मर्मान्तक प्रसंग होते हुए भी निराला यहाँ जीवन सौन्दर्य और समाज के प्रति गहन प्रतिबद्धता अनुभव करते रहे हैं। जातिवाद और विवाहप्रथा पर आघात करने की घटना का वर्णन उन्होंने व्यंग्य-विनोद के बड़े ही सहज मूड में किया है।''[५७] 'सरोज स्मृति' में निराला की सरोज के प्रति ममता, सरोज का दिव्य निर्लिप्त सौन्दर्य, अर्थाभाव के कारण उसका पालन-पोषण ठीक न होना, सरोज के विवाह में निराला का पौरोहित्य कर्म और माता का कार्य स्वयं सम्पन्न करना, पुत्री की पुष्प सेज की स्वयं निराला द्वारा निर्मित, दहेज रूढ़ियों और जातिगत भेदभाव के कारण, कान्यकुब्जों के प्रति घृणा, सामाजिक परम्परा का ध्वंस करके नवीन प्रणाली से कन्या का विवाह, विरोधियों के मर्म भेदी व्यंग्य, निराला का 'अर्थागमोपाय' जानते हुए भी अपरिग्रही-वृत्ति अपनाना, सरोज की औषधि आदि के अभाव

में अकाल मृत्यु आदि अनेक मर्म भेदी संवेदनाओं का समीकरण निराला ने किया है। 'सरोज स्मृति' में निराला की अवस्था कितनी दर्दनीय है:-

"धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका।
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचितकाय।"[५८]

'सरोज स्मृति' की कथा का प्रवाह कवि की पुत्री के देहावसान से ही प्रारम्भ हुआ है। निरालाजी की कन्या का नाम सरोज था जो देहावसान के समय १६ वीं वर्ष में प्रारम्भ हुई थीं। देहान्त के पूर्व की सारी घटनाओं को कवि ने इस लम्बी कविता में संजोकर रखा है। इन घटनाओं के वर्णन में लम्बी-कविता के रचना विधान के साथ-साथ करूणा और वेदना की सजल स्मृति नेत्रों के समक्ष प्रस्तुत हो उठती है।

'सरोज स्मृति' भी एक लम्बी कविता के रूप में कवि के रचनात्मक संघर्ष, उनके अन्दर का तनाव और कभी न समाप्त होने वाले प्रश्नों का समर-स्थल है। अन्तर यही है कि यहाँ इस कविता में वह प्रतीकार्थ के रूप में नियोजित न होकर प्रत्यक्ष अर्थ के रूप में ही विन्यस्त हुआ है। इसका कारण स्पष्ट है - उनकी दूसरी लम्बी कथात्मक कविताओं से बिल्कुल अलग 'सरोज स्मृति' में कोई ऐतिहासिक या लोक आख्यान पर आधारित इतिवृत्त नहीं है। कवि के जीवन-वृत्त का एक मार्मिक-प्रसंग ही इसका इतिवृत्त है। दूधनाथ सिंह के अनुसार- "क्या कला और रचना के प्रति यह अनन्त आस्था, सम्पूर्ण आत्मसमर्पण, सांसारिक स्तर पर एक प्रकार का निरन्तर चलने वाला आत्महनन नहीं साबित हुआ, जिसका अन्त उनकी पुत्री की मृत्यु-आर्थिक विपन्नता और अन्ततः मानसिक विश्रृंखलता में हुआ। मेरा ख्याल है इसी जर्जर मनोभूमि से निराला अर्द्धविक्षेप के नरक में उतर गए होंगे।[५९] "दरअसल यह लम्बी कविता अतीत, स्मृति, मृत्यु की असीम करूणा, सामाजिक अवमानना और साहित्यिक उपेक्षा की एकत्र संगमित अनुभूति की अभिव्यक्ति का अद्वितीय नमूना है।[६०]

लम्बी कविता के रचना विधान के आधार पर 'सरोज स्मृति' लम्बायमानता (प्रदीर्घता) अन्विति, अन्तहीन अन्त, सृजनात्मक तनाव, द्वन्द्व की सकारात्मक पृष्ठभूमि और

नाटकीय मोड़ों से युक्त जान पड़ती है। 'सरोज स्मृति' में करूणाजनक स्थिति के साथ जगह-जगह पर द्वन्द्व की मनोभूमि दृष्टिगोचर होती है। कवि के अनुभवों से प्रस्फुटित हुआ कवि का जीवन दर्शन प्रस्तुत लम्बी कविता को कई नाटकीय मोड़ों से होकर अन्तहीन अन्त की तरफ ले जाता है जहाँ आलोच्य लम्बी कविता में सृजनात्मक तनाव पूरी कविता में दृष्टिगोचर होता है। रूढ़ियों-रीतियों की जकड़ और प्रकाश-क्षेत्र की दुरभिसन्धि के जो विवरण इस रचना में हैं वे कवि के व्यक्तिगत जीवन से सन्दर्भित होते हुए भी पूरे युग और देश को प्रत्यालोकित करते हैं। निरालाजी का सारा जीवन अभाव, विपन्नता तिरस्कार और जय-पराजय के सघन ताने-बाने से बुना हुआ है। अतः 'सरोज स्मृति' में सृजनात्मक तनाव का होना स्वाभाविक है।

'सरोज स्मृति' लम्बी कविता के आरम्भ में कवि ने अपने मन के तनाव और द्वन्द्व को दार्शनिक अंदाज में मुखरित किया है-

''ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन-सिन्धु तरणः
तनये, ली कर दृक्पात तरूण
जनक से जन्म की विदा अरूण।
गीते मेरी, तज रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय।''[६१]

सरोज की मृत्यु का एक कल्पित रूप प्रस्तुत करने के बाद निराला अप्रत्याशित गति से वास्तविकता की भूमि पर आ जाते हैं। अपनी पीड़ा, निराशा के माध्यम से कविता में तनाव को जन्म देते हुए अगले अनुच्छेद के आरम्भ में कहते हैं-

''धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका।
जाना तो अर्थागमोपाय,

पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर,
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।''[६२]

निराला जी को यह उत्कट अहसास होता है कि सरोज के प्रति वे अपने पिता-धर्म का निर्वाह न कर सके, क्योंकि न वे उसे अच्छा वस्त्र पहना सके, न उसके लिए अच्छा आहार जुटा सके। प्रस्तुत उद्धरण की यह पंक्तियाँ सरोज स्मृति लम्बी कविता में सजृनात्मक तनाव के साथ नाटकीयता को उभारती हैं। यहाँ अर्थोपार्जन का एक ही अर्थ है निर्ममतापूर्वक गरीबों का हक मार लेना, उनके मुँह का कौर छीन लेना। आगे की पंक्तियों में निराला अपनी असमर्थता स्वीकारते हैं और लम्बी कविता 'सरोज स्मृति' को तनाव के साथ-साथ नाटकीय अंदाज में प्रस्तुत करते हैं-

''अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम
कर नहीं सका पोषण उत्तम
कुछ दिन को, जब तू रही साथ,
अपने गौरव से झुका माथ,
पुत्री भी पिता गेह में स्थिर,
छोड़ने के प्रथम जीर्ण अजिर।''[६३]

वे सरोज के बचपन की स्मृतियों में खोते हुए अपने तनाव को क्रमबद्ध करते हैं। ननिहाल में ही निराला के पुत्र रामकृष्ण भी पल रहे थे, जो उम्र में सरोज से दो-तीन साल बड़े थे। जब रामकृष्ण छोटी बहन सरोज को पीट देते थे तो वह व्याकुल होकर रोने लगती थीं। एक दिन की घटना है कि जब वह रोने लगी, तो वे घबरा गए। उन्होंने सरोज को पुचकारा और प्रलोभन दिया कि तुम्हें गंगा किनारे की रेती पर घुमाने ले चलेंगे। वे उसे लेकर गंगा तट पर गए भी वह रामकृष्ण का हाथ पकड़े चल रही थी। गंगा-तट

पर पहुँचकर उसने गंगा के जल का उर्मि-धवल प्रसार देखा तो उसके आँसुओं से धुले मुख पर हँसी उछलने लगी। यह वर्णन जितना नाटकीय है उतना ही सजीव और यथार्थ भी-

"खाई भाई की मार, विकल
रोई उत्पल-दल-दृग छलछल,
चुमकारा फिर उसने निहार,
फिर गंगा-तट-सैकत विहार
करने को लेकर साथ चला,
तू गहकर चली हाथ चपला
आँसुओं धुला मुख हासोच्छल
लखती प्रसार वह ऊर्मि-धवल।"[६४]

सरोज अब शैशव को समाप्त कर यौवनावस्था में प्रवेश कर रही थी। निराला जी के सामने उसके परिणय की बात आई। उन्होंने पत्र लिखा और रूढ़ियों का विरोध करते हुए यह विवाह होने का संकेत किया। उस समय कान्यकुब्जों में विवाह की पद्धति में दहेज और तिलक की प्रथा थी। कन्नोजियों की संकीर्ण विवाह पद्धति पर गहरा व्यंग्य करके उनकी कुरीति, दहेज की दूषित प्रथा, कुल के छोटे-बड़े होने के छिद्रान्वेषण आदि की आलोच्य कृति में खूब खिल्ली उड़ाई गयी है। लम्बी कविता के रचना विधान का महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'नाटकीयता' इन नाटकीय संवादों से उजागर करते हुए कविता में तनाव को बनाए रखा है-

"ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
उनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषम बेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरूस्थल- नहीं सुजल।"[६५]

नाटकीयता लम्बी कविता का एक अनिवार्य तत्त्व है। 'सरोज स्मृति' में जहाँ-जहाँ निराला जी ने कविता में तनाव को जन्म दिया है, वहाँ नाटकीय संवाद भी इस रचना में

मुखरित हो उठे हैं। चूँकि लम्बी कविता वर्तमान समाज, परिवेश और व्यक्ति की स्थितियों, परिस्थितियों, गतिविधियों, सोच और निर्णय की जीवन गाथा है। अतः इसके संरचना विधान में नाटकीयता स्वाभाविक और अनिवार्य गुण माना गया है। 'सरोज स्मृति' लम्बी कविता में सृजनात्मक तनाव के साथ नाटकीयता पर कवि का पूरा ध्यान रहा है और पूरी कविता में नाटकीय संवाद दिखाई पड़ते हैं-

''दृष्टि थी शिथिल,
आई पुतली तू खिल-खिल-खिल
हँसती, मैं हुआ पुनः चेतन
सोचता हुआ विवाह-बन्धन।
कुण्डली दिखा बोला - ''ए, लो''
आई तू, दिया, कहा, ''खेलो।''[६६]

'सरोज स्मृति' वास्तव में एक अत्यंत संश्लिष्ट रचना है क्योंकि इसमें सरोज की स्मृतियों के माध्यम से सिर्फ उसी की जीवनगाथा नहीं प्रस्तुत की गई, उसी के प्रसंग में इस लम्बी कविता में निराला की जीवनगाथा भी आ गई है- कलकत्ते से लेकर उनका लखनऊ तक का जीवन, जो संघर्ष से भरा हुआ है, यह संघर्ष साहित्यिक भी है, सामाजिक भी और आर्थिक भी। उनका साहित्यिक संघर्ष उनके पूरे युगीन परिवेश को मूर्त कर देता है। इस लम्बी कविता में तनाव एवं सामाजिक संघर्ष सरोज के विवाह के क्रम में दिखलाई पड़ता है जब उनके सामने दहेज की समस्या आती है और फिर रूढ़ियुक्त ढंग से विवाह करने का कान्यकुब्ज ब्राह्मणों द्वारा संभावित विरोध। मातृविहीन पुत्री, उसका ननिहाल में पलना, फिर पुत्री के विवाह की समस्या, नाना-नानी, मामा-मामी और सास- इन संबंधों का महत्त्व, टूटा-फूटा घर, हर प्रकार का अभाव, पुत्री के प्रति विवश पिता का वात्सल्य, पुत्री की बीमारी उसका इलाज न करा पाना, संबंधियों द्वारा दिखलाई जाने वाली आत्मीयता- यही तो वे बातें हैं जिनसे 'सरोज-स्मृति' में सृजनात्मक तनाव और नाटकीयता का प्रस्फुटन हो सका है।

सरोज की शादी में बारात के बदले साहित्यिक वर्ग आमन्त्रित हुआ। माता के अभाव में तथा संबधियों को निमंत्रित नहीं किए जाने के कारण कवि ने ही स्वयं माता की सारी शिक्षा सरोज को दी। विवाह के अवसर पर पौरोहित्य कर्म स्वयं संपादित किया। दो वर्ष बाद प्रसव पीड़ा से सरोज का स्वर्गवास हो गया। इस घटना का कवि के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके हृदय को गहरी ठेस लगी कवि अपने दुखों को कहना नहीं चाहता। किन्तु कवि मन जब प्रस्फुटित होता है तो 'सरोज स्मृति' लम्बी कविता में सृजनात्मक तनाव के साथ दार्शनिक नाटकीयता का जन्म होता है। प्रस्तुत सम्वाद में व्याप्त वेदना को समझकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे वेदना स्वग्र से ही प्रश्न कर उठी है-

''दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कहीं।''[६७]

कवि अपनी कन्या का तर्पण भी एक दार्शनिक विधान के साथ करता है जहाँ 'सरोज स्मृति' लम्बी कविता में नाटकीयता स्वतः मुखरित हो उठी है-

''कन्ये-गत कर्मों का अर्पण
कर सकता मैं तेरा तर्पण''[६८]

'सरोज स्मृति' में कवि ने अपने जीवन के द्वन्द्व को सृजनात्मक तनाव का धरातल दिया है। आरम्भ से अन्त तक सरोज स्मृति, अपने लम्बायमान स्वरूप, अन्तहीन अंत, तनाव तथा नाटकीय मोड़ों से ओतप्रोत जान पड़ती है। ''अपनी कन्या सरोज के तारूण्य का वर्णन कर कवि ने सिद्ध कर दिया है कि वह लोकभूमि से कितना ऊँचे उठा हुआ है। यहाँ पर कवि की तटस्थता पराकष्ठा पर पहुँच चुकी है।''[६९]

''निराला कविता में एक जगह अपनी पुत्री को 'मेरे स्वर की रागिनी वहिन्' कहकर सम्बोधित करते हैं। इस अग्नि का तिरोभाव और सम्पूर्ण अंधकार की प्रतिच्छाया काव्यात्मकता की परिसमाप्ति का सघनतम नैराश्य ही इस लम्बी कविता को एक अद्वितीय त्रासदी कविता की भूमि पर प्रतिष्ठित करता है। आत्मस्वीकृति और निरन्तर प्रवाहित दुख-भाव की व्याकुल लहरियों के कारण ही इसकी विवरणात्मकता कहीं भी खटकती नहीं।''[७०]

'सरोज स्मृति' लम्बी कविता में सृजनात्मक तनाव एवं नाटकीयता के साथ-साथ इसकी रचना में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'विचार तत्त्व' का योगदान है। 'सरोज स्मृति' में कवि द्वारा उठाए गए विचार बिन्दुओं ने हमारे परिवेश, हमारी जीवन पद्धति, हमारी भावना, हमारे विश्वास और अंधविश्वास, हृदय और चिन्तन-मनन की बनी बनाई परिपाटी को निश्चित रूप से हिला दिया है। रूढ़ियों, परम्पराओं, आस्थाओं का खण्डन करते हुए कवि ने नवीन विचारों का मण्डन किया है और समाज देश-परिवेश को सरोज-स्मृति के द्वारा नूतन दिशा दी है।

विचार तत्त्व के साथ ज्यों-ज्यों कविता कठोर यथार्थ के संघर्ष को अपने में समेटती गई कविता का फलक व्यापक होता गया और कविता प्रदीर्घ होती गई। विचार प्रक्रिया में वास्तव में एक प्रकार का प्रवाह होता है क्योंकि किसी भी समस्या पर चिन्तन के समय उससे सम्बन्धित अन्य समस्या भी सामने आती हैं और कविता में तनाव पैदा करती है, जो लम्बी कविता के रचना विधान का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। 'सरोज स्मृति' में समस्याओं और संघर्षें से घिरे हुए कवि की अपनी असहाय परवशता का आत्मस्वीकारोक्ति में कैसा हृदयस्पर्शी चित्र है-

"धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर।"[७१]

यद्यपि 'सरोज स्मृति' एक विलापिका है, फिर भी लम्बी कविता का प्रमुख तत्त्व अन्विति हमें इसमें दिखाई पड़ता है। 'सरोज स्मृति' में अन्विति के दोनो रूप बिम्बात्मक और वैचारिक हमें नजर आते हैं। पहले प्रकार की अन्विति में सभी विवरण सन्दर्भ संतुलित रूप में उपस्थित हैं और दूसरे प्रकार की अन्विति में निराला के अन्तस में चल रहे विचार सूत्रों से जुड़े बिम्बों का अनवरत क्रम नजर आता है। सरोज स्मृति विभिन्न

अनुभव खण्डों, व्यक्ति, समाज, मनोविज्ञान तथा वैयक्तिक समस्या को व्यापक फलक के साथ अपने कथानक में समेट कर चलती है। यहाँ असंबद्ध प्रसंग सन्दर्भ भी सम्बद्धता में नजर आते हैं।

'सरोज स्मृति' लम्बी कविता में नाटकीयता का संचालन कविता स्वयं करती है। हिन्दी की इस प्रथम विलापिका को लम्बी कविता के धरातल पर सुशोभित कर निराला ने अपनी अनूठी क्षमता का परिचय दिया है। कविता में तनाव, अन्विति, नाटकीयता, प्रदीर्घता और विचार तत्त्व इसे एक सफल लम्बी कविता की श्रेणी पंक्तिबद्ध करते हैं।

अब तक हमने प्रस्तुत कविता 'सरोज स्मृति' में लम्बी कविता की रचनाधर्मिता और उसके विविध तत्त्वों के आधार पर उसका विवेचन-विश्लेषण किया है। निष्कर्ष के रूप में जाना कि प्रस्तुत कविता में कवि ने लम्बी-कविता के विविध तत्त्वों को पूर्णरूप से अनुस्यूत किया है। अतः कहा जा सकता है कि 'सरोज-स्मृति' एक श्रेष्ठ लम्बी कविता ठहरती है।

*****

संदर्भ सूची

१. अनामिका - (पृ० १५२)

२. निराला-अनामिका - (पृ० १५६)

३. निराला-अनामिका - (पृ० १६५)

४. निराला-अनामिका - (पृ० १५६)

५. राग-विराग - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (पृ० ६२)

६. राग-विराग - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (पृ० ६२)

७. राग-विराग - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (पृ० ६४)

८. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५१)

९. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५२)

१०. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५५)

११. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५५)

१२. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५५)

१३. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५७)

१४. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५६)

१५. 'निराला' - अनामिका (पृ० १६३)

१६. 'निराला' - अनामिका (पृ० १६५)

१७. 'निराला' - अनामिका (पृ० १६३)

१८. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५८)

१९. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५७)

२०. 'तुलसीदास' - (पृ० ३)

२१. बच्चन सिंह - क्रान्तिकारी कवि निराला (पृ० ८६)

२२. तुलसीदास - (पृ० ६), भारती भण्डार, इलाहाबाद।

२३. निराला और उनका काव्य साहित्य - गिरीश चन्द्र तिवारी (पृ० ७७)

२४. निरालाः आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह

२५. निरालाः आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह

२६. डा० कृष्णदेव झारी - शक्तिपुंज निराला (पृ० ४०)

२७. बच्चन सिंह - क्रान्तिकारी कवि निराला (पृ० ८६)

२८. निराला - तुलसीदास - (पृ० ४६) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

२६. निराला - तुलसीदास - (पृ० १२) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

३०. निराला - तुलसीदास - (पृ० १७) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

३१. निराला - तुलसीदास - (पृ० १७) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

३२. निराला - तुलसीदास - (पृ० २०) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

३३. बच्चन सिंह - क्रान्तिकारी कवि निराला (पृ० ६१)

३४. कवि निराला व उनका काव्य - गिरीश चन्द्र तिवारी (पृ० ८४)

३५. निराला - तुलसीदास - (पृ० ४) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

३६. निराला - तुलसीदास - (पृ० १६) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

३७. निराला - तुलसीदास - (पृ० ५०) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

३८. निराला की कविताओं का अध्ययन - रेखा खरे (पृ० १२७)

३६. निराला - तुलसीदास - (पृ० ७) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

४०. निराला - तुलसीदास - (पृ० २८) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

४१. निराला - तुलसीदास - (पृ० २७) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

४२. निराला - तुलसीदास - (पृ० २७) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

४३. निराला - तुलसीदास - (पृ० ४६) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

४४. डा० कृष्णदेव सारी- शक्तिपुंज निराला - (पृ० ४८-४६)

४५. निराला का काव्य - डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव - (पृ० २२)।

४६. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ३६

४७. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ४०

४८. निराला की कविताओं का अध्ययन - रेखा खरे (पृ० १४६)

४६. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० १०

५०. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ४६

५१. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ४६

५२. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ३६

५३. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ४६

५४. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० ६१

५५. अनामिका, पृ० ११७

५६. डा० नामवर सिंह - 'छायावाद', पृ० १७-१८

५७. डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव- 'निराला का काव्य', पृ० ८१

५८. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० ११८)

५९. दूधनाथ सिंह - निराला आत्महन्ता आस्था (पृ० १३२)

६०. दूधनाथ सिंह - निराला आत्महन्ता आस्था (पृ० १३३)

६१. अनामिका, पृ० ११७

६२. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० ११८)

६३. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० १२०)

६४. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० १२१- १२२)

६५. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० १२६)

६६. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० १२५)

६७. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका, भाग-२ (पृ० १२०

६८. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका, भाग-२ (पृ० १३४)

६९. बच्चन सिंह - क्रान्तिकारी कवि निराला, (पृ० ८४)

७०. दूधनाथ सिंह - निराला आत्महन्ता आस्था, (पृ० ...)

७१. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका, भाग-२ (पृ० ११८)

अध्याय 4

'निराला' की लम्बी कविताओं में संवेदना के विविध आयाम

- प्रकृति
- राष्ट्रीयता
- मानवता और लोक चेतना
- भक्ति और दर्शन
- अध्यात्म
- संदर्भ सूची

प्रकृति और मानव का अन्योन्याश्रित संबंध है। काव्य मानवीय अनुभूतियों की मार्मिक एवं हृदयग्राही अभिव्यक्ति है। अतः प्रकृति भी काव्याभिव्यक्ति का एक सशक्त आयाम ठहरती है। अनादिकाल से कवियों ने इसे संवेदना के साथ देखा है। काव्य में प्रकृति को अनेक रूपों में गृहीत किया जाता रहा है। कभी प्रकृति काव्य का विषय आलम्बन के रूप में बनती है तो कभी उसे उद्दीपन के रूप में चित्रित किया जाता है। कभी-कभी प्रकृति आलंकारिक मुद्रा के साथ चित्रित की जाती है, तो कभी-कभी संवेदनात्मक, रहस्यात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप में भी प्रकृति का ग्रहण होते देखा जाता है। वातावरण की पृष्ठभूमि एवं लोक-शिक्षा के रूप में भी काव्य में प्रकृति उकेरी देखी जा सकती है। कुल मिलाकर प्रकृति काव्य का एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। निराला भी कोई इसके अपवाद नहीं है। हम यहाँ निराला की लम्बी-कविताओं के संवेदना के विविध आयामों में प्रकृतिचित्रण पर दृष्टिपात करेंगे।

प्रकृति

मानव प्रकृति के पाँच तत्त्वों से निर्मित है तब उसे प्रकृति से पृथक कैसे किया जा सकता है, प्रकृति के अनन्त विस्तार में मानव एक स्वतन्त्र इकाई भी है और उसका अविच्छेद्य अंग भी। हम जब किसी तत्त्व चिन्तन-ज्ञान, कला या काव्य के क्षेत्र में प्रकृति का निरूपण करते हैं तब उसे मानव से पृथक मानकर चलते हैं जबकि विश्व की सृजनात्मक क्रिया या शक्ति का रूपात्मक प्रत्यक्षीकरण प्रकृति है।

प्रकृति के सम्पर्क में आने पर मानव में उदात्त मानवीय भावनाएँ जाग्रत होती हैं। प्रकृति के अन्दर समरूपता, समन्वयधर्मिता अथवा समरसता आदि की भावनाएँ रूपित और भाषित होती हैं। प्रकृति की इसी सुस्वरता, समरसता अथवा समन्वयधर्मिता की भाषा को टैगोर ने "मानव की आत्मा की भाषा कहा है।"[1] गायत्री मंत्र की अपनी व्याख्या में टैगोर बताते हैं कि इस मंत्र से हमें यह पता चलता है कि एक ही रूप में वह परम-शक्ति, प्रकृति

और मानव-मस्तिष्क में व्यक्त है और वही उन्हें सूत्रबद्ध करती है। प्रकृति अपने अर्थ के लिए आत्मा पर निर्भर करती है और आत्मा अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति पर।

प्रकृति अत्यन्त संवदेनशील है और उसकी संवेदनशीलता से भी यह प्रमाणित होता है कि वह चेतन है। प्रकृति की संवेदनशीलता का प्रत्यक्ष प्रमाण लाजवंती या छुईमुई का पौधा है। हम अपनी दृष्टि से ही प्रकृति को देखते हैं। उसके प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव में हमारी इच्छाशक्ति प्रधान है। "टॉलस्टाय ने भी प्रकृति को आत्मा के प्राकृतिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति मानते हुए अन्ततः उसे आत्मा से ही सम्बन्धित माना है।"[२] महेन्द्रनाथ सरकार ने भी प्रकृति को आत्मा की अभिव्यक्ति होने के कारण ही उसे सुन्दर माना है। सरकार महोदय ने यह भी बताया है कि भारतीय मनीषा आत्मा के सौन्दर्य और प्रकृति के सौन्दर्य में अन्तर मानती है।[३] प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः हम कह सकते हैं कि एक ही दिव्य प्राणधारा मानव और प्रकृति दोनों को ही रसोपेत करती है। निराला जी की लम्बी कविताओं में प्रकृति वर्णन की विविध प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई पड़ती हैं।

प्राकृतिक वातावरण या पृष्ठभूमि-चित्रण काव्य में एक सामान्य परम्परा है। जीवन की किसी घटना, मानसिक उथल-पुथल, राग-विराग, उल्लास-वेदना की अनुभूति को प्राकृतिक पृष्ठभूमि या परिवेश में अभिव्यक्त करने से घटना का उभार या निखार तथा मानसिक उथल-पुथल और हृदयानुभूति का उत्कर्ष होता है।

यद्यपि निराला जी की लम्बी कविताओं में प्रकृति का रूपात्मक चित्रण कम दिखाई देता है। प्रकृति उनके लिए वर्णनात्मक नहीं, भावात्मक है। रूपात्मक प्रकृति क्रियाशील होते हुए भी उद्दीपन, आलम्बन और आश्रय तथा अभिव्यंजना के उपकरण के रूप में प्रकृति का उपयोग काव्य में होता है जिसे हम रसशास्त्र की भाषा में उद्दीपन कहते हैं, उसे अधिक व्यापक अर्थ में परिवेश कहा जाता है। परिवेश के भीतर उद्दीपन, परिस्थिति, वातावरण, पृष्ठभूमि आदि सभी का समावेश होता है। परिवेशगत प्रकृति के सभी रूप निराला जी की लम्बी कविताओं में पाए जाते हैं। वैसे तो परिवेशगत प्रकृति रूपात्मक है, पर उद्दीपन के रूप में उसका भाषात्मक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

निराला काव्य प्रकृति वर्णन के लिए न होकर स्वानुभूतिमय पूजन और इससे भी बढ़कर मानव की परिष्कृत चेतना का संघनित उत्थान है। प्रकृति-प्रेमी निराला जी की लम्बी-कविताओं में प्रकृति के अनेक सुन्दर कमनीय, कोमल तथा ओजपूर्ण चित्र देखे जा सकते हैं।

प्रकृति चित्रण में यह बात ध्यान देने योग्य है कि कवि प्रकृति के किन रंगों के प्रति सर्वाधिक आकर्षित है तथा वह गहरे रंगों को पसन्द करता है या हल्के रंगों को। यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है कि कवि प्रकृति के साधारण और छोटे-छोटे दृश्यों के प्रति अधिक आकर्षित है अथवा विराट चित्रों के प्रति?

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि अपनी लम्बी-कविताओं में निराला जी ने प्रकृति का रूपात्मक चित्रण बहुत कम किया है। प्रकृति उनके लिए वर्णनात्मक नहीं, भावात्मक है। निराला जी की लम्बी कविताओं में परिवेश के भीतर उद्दीपन, परिस्थिति, वातावरण, पृष्ठभूमि आदि का समावेश है। परिवेशगत प्रकृति के सभी रूप इनकी लम्बी-कविताओं में पाए जाते हैं।

'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' और 'कुकुरमुत्ता' - तीनों लम्बी कविताओं में कवि निराला ने प्रकृति की पृष्ठभूमि का सहारा लेकर काव्य-सृजन किया है। यद्यपि प्राकृतिक-वातावरण या पृष्ठभूमि-चित्रण काव्य में एक सामान्य परम्परा है। जीवन की विशिष्ट घटना, मानसिक उथल-पुथल, राग-विराग, उल्लास-वेदना की अनुभूति को कवि निराला ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि या परिवेश में अभिव्यक्त कर इन लम्बी-कविताओं को एक नूतन आयाम दिया है:-

"रवि हुआ अस्त ज्योति के पत्र पर लिखा अमर,
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर।"[४]

× × × × × × ×

"भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतल छाया सांस्कृतिक सूर्य

अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिङ्मण्डल।।"[५]

× × × × × × ×

"एक थे नव्वाब

फारस से मँगाए थे गुलाब

बड़ी बाड़ी में लगाए।"[६]

अपराजेय समर के वर्णन की पृष्ठभूमि को प्राकृतिक वातावरण के साथ आरम्भ करना ही इस बात का सूचक है कि कवि प्राकृतिक छटा के साथ ही कविताओं को गति प्रदान करना चाहता है। लम्बी कविता 'राम की शक्ति पूजा' की प्राकृतिक पृष्ठभूमि कविता में मनःस्थिति को अभिव्यक्ति करता है।

"रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर लिखा अमर,

रह गया राम रावण का अपराजेय समर,

आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-छिप्र-कर वेग-प्रखर,

शतशेल सम्वरणशील, नीलनभ गज्जित स्वर।"[७]

'रवि हुआ अस्त' की पृष्ठभूमि इस महाकाव्योचित लम्बी-कविता को प्रकृति रूपी नवीन आयाम से जोड़ती है। 'रवि हुआ अस्त' शब्दों की प्रकृतिजन्य मनोभूमि यह बताने का प्रयास कर रही है कि कवि का मन उदास और निराश है। 'राम की शक्ति पूजा' में वीर-रस की ओजपूर्ण व्यंजना के साथ प्रकृति चित्रण स्वयं में अनुपमेय है। निराला ने भाव-गम्भीरता एवम् उदात्तता के साथ प्रकृति चित्रण को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है।

सागर के तट पर, पर्वत के सानु पर सारी वानर सेना एकत्र हुई है। लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, जाम्बबान, हनुमान आदि समस्त वीर राम को घेरे बैठे हैं और राम की आज्ञा की प्रतीक्षा में हैं। उस समय का वातावरण भी अत्यंत उदासी से भरा है मानो वहाँ एकत्रित समाज के अन्तर की उथल-पुथल जैसे प्रकृति की प्रतिच्छाया हो। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने अन्तः प्रकृति और बाह्य-प्रकृति का सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया है। दिशाओं का ज्ञान समाप्त हो जाना, अमानिशा में (अमावस्या की रात्रि में) आसमान का निविड़ अंधकार उगलना, सागर का गरजना, पवन का शान्त होना, ये सब प्रकृतिजन्य तत्त्व जैसे राम और उनकी सेना

के मन में चल रहे भावनाओं, विचारों के वेग को प्रतिबिम्बित कर रहे हैं। और उन सबके बीच कोई एक सकारात्मक विचार अर्थात अंधकार को चीरने का असफल सा प्रयास करती केवल एक छोटी मशाल जल रही है जो प्रकृति के गहन वातावरण का परिचय दे रही है। व्यापक फलक के साथ प्रकृति की विराट कल्पना, बाह्य तथा अन्तः प्रकृति का सुन्दर सामंजस्य और ऐसा अदभुत चित्रण स्वयं में अद्वितीय है।

"है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवनचार।
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यानमग्न, केवल जलती मशाल।"[८]

निराला द्वारा रचित हिन्दी जगत की प्रथम विलापिका/शोकगीत 'सरोज स्मृति' में वैयक्तिकता तथा आत्मभर्त्सना होने के साथ-साथ समस्याओं को समष्टिगत-धरातल पर आलोकित कर उसमें भी प्रकृति के सुन्दर मोती पिरोए हैं।

"खाई भाई की मार, विकल
रोई उत्पल-दल-दृग-छलछल,
चुमकारा फिर उसने निहार,
फिर गं ा-तट-सैकत-विहार
करने को लेकर साथ चला,
तू गहकर चली हाथ चपला,
आँसुओं-धुला मुख हासोच्छल,
लखती प्रसार वह ऊर्मि-धवल"[९]

आगे चलकर जब सरोज बाल-केलि के प्रांगण को पार कर तारूण्य-कुंज में प्रवेश करती है, तो निराला बड़ी गंभीरता के साथ प्रकति के माध्यम से उसके सौन्दर्य का बड़ा ही अनुपम वर्णन करते हैं। एक पिता द्वारा अपनी पुत्री के सौन्दर्य का यह सधा हुआ वर्णन विश्व-साहित्य में बेजोड़ है, ऐसा केवल निराला ही कर सके हैं:-

"कर पार, कुण्ज-तारुण्य सुधर

आई लावण्य-भर धर-धर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौश नव वीणा परः
नैश स्वप्न ज्यों तू मन्द-मन्द
फूटी उषा जागरण छन्द,
काँपी भर निज आलोक-भार,
काँपा वन, काँपा दिक प्रसार।
परिचय-परिचय पर खिला सकल
नभ, पृथ्वी, द्रुम, कलि, किसलय दल।''[१०]

'राम की शक्ति पूजा' में भी यही प्रयोग श्रंगार के साथ प्रकृति का सामंजस्य और अनुपम प्रकृति चित्रण दृष्टिगोचर हैः-

''काँपते हुए किसलय,-झरते पराग-समुदय,-
गाते खग नव-जीवन-परिचय,-तरू मलय-वलय
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय,-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,-
जनकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।''[११]

प्रकृति वर्णन की दृष्टि से कुकुरमुत्ता एक साधारण रचना है। इसमें कुकुरमुत्ता की तुलना में गुलाब को हेय सिद्ध किया गया है। सौंदर्य के प्रति ऐसा ही दृष्टिकोण एक दिन पंत जी का भी हो गया था। 'ताज' शीर्षक रचना इसका प्रमाण है।

नवाब के उद्यान का वर्णन बहुत चलताऊ ढंग का है। वहाँ केवल फूलों और फलों के नाम गिनाए गए हैं। इस प्रवृत्ति की तुलना पंत जी की ग्राम्या की 'सौंदर्य कला' शीर्षक रचना से की जा सकती है। वहाँ उन्होंने भी इसी प्रकार नाम परिगणन शैली का आश्रय लिया है। निराला जी 'कुकुरमुत्ता' में प्रकृति वर्णन पर केन्द्रित न होते हुए मूलभाष व्यंग्य पर ही टिके रहे हैं। वर्णन देखिएः-

''फूलों के पौधे वहाँ-
लगे कैसे खुशनुमाँ,

बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी,
जूही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी,
चम्पा, गुलमेंहदी, गुलखैरू, गुलअब्बास,
गेंदा, गुलदाउदी, निवाड़ी, गंधराज-
फलों के पेड़ थे-
आम, लीची, फ़ालसे, संतरे के।''[१२]

कुकुरमुत्ते के लिए जो उपमान ढूँढे गए हैं, वे बड़े 'क्रूड' हैं। कुकुरमुत्ता उन्हें एक साथ तराजू का पल्ला, मथानी, छाता, धनुष, सुदर्शनचक्र, हल, पैराशूट और पिरैमिड दिखाई देता है। यह बहुत संभव है कि निराला जी ने जानबूझ कर ये प्रकृतिजन्य बिन्दु जुटाए हों। प्रकृति के प्रति इस अपरिष्कृत रुचि के दो कारण हैं। पहला तो यह कि 'कुकुरमुत्ता' एक व्यंग्य परक रचना है, दूसरे यह कविता प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखी गयी है। यही कारण है कि अंत में कवि ने कुकुरमुत्ते का कवाब तैयार कर नवाब की लड़की को खिला दिया है।

प्रकृति के सौंदर्य के प्रति निराला की यह स्थायी वृत्ति नहीं है, एक हवा कहीं से उड़ती हुई आई थी जो उन्हें छूकर न जाने किस दिशा को बह गई।

प्रकृति को समझने के लिए मानवीय-मनोदशा का होना भी अनिवार्य है। नदी की एक ही ध्वनि किसी को 'कल' 'कल' के रूप में सुनाई देती है किसी को 'छल' 'छल' के रूप में सुनाई पड़ती है-

'छल-छल-छल' कहता यद्यपिज जल,
वह मंत्र-मुग्ध सुनता 'कल-कल',
निष्क्रिय, शोभा-प्रिय कूलोपल ज्यों रहता।[१३]

एक दिन तुलसीदास यात्रा को जाते हैं। वहाँ प्रकृति मनोरम स्थिति का आभास उन्हें देती है। प्रकृति की छवि देखकर उनके पुराने विस्मृत संस्कार जागने लगे। प्रकृति में व्याप्त आनन्द का भान कवि को हुआ। 'तुलसीदास' लम्बी कविता में प्रकृति दर्शन से उत्पन्न भावों को शब्दों का रूप दिया गया है-

"तरू-तरू, विरूध् तृण-तृण
जने क्या हँसते मसृण-मसृण,
जैसे प्राणों से हुए उऋण, कुछ लखकर।"[१४]

× × × × × × ×

"कहता प्रति जड़, जंगम जीवन
भूले ये अब तक बंधु प्रमन?
यह हताश्वास मन भार श्वास भर बहता,
तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि,
देखो यह धूलि-धूसरित छवि
छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता।"[१५]

तुलसीदास जब घर की ओर लौटते हैं या यह कहिए कि उनकी अंतर्मुखी चेतना जब बहिरमुखी होती है, तो सारी सृष्टि ही उन्हें परिवर्तित प्रतीत होती है। प्रकृति का संदेश उन्हें अपनी पत्नी के माध्यम से मिल चुका है किसी को संदेह न रह जाय, इसी से निराला जी ने इस रचना के अंत में कवि की पत्नी की उपमा एक साथ सरस्वती और लक्ष्मी से दी है। ये दोनो विद्या और वैभव की देवियाँ हैं।

तुलसीदास लम्बी कविता का आरम्भ संध्या के घिरते अंधकार से हुआ है और अंत प्रभात के आलोक के साथ। पूरी लम्बी कविता में प्रकृति के अनुपम सौंदर्य की अनुपम छटा का अनुपम वर्णन निराला जी के द्वारा दिखाई दिया है-

"भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य दिङ्मंडल।"[१६]

× × × × × × ×

"संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जल,

प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा।''[१७]

इस तरह हम कह सकते हैं कि निराला जी की लम्बी कविताओं में प्रकृतिजन्य वर्णन भावाभिव्यंजक रूप में हुआ है जो कविता की भाव-भूमि को और अधिक संवेदनशील बनाता है।

राष्ट्रीयता

जिस युग में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने आँखों खोलीं, वह युग पराधीनता का था। उस निराशापूर्ण अंधकार के युग में समाज, राजनीति, धर्म, साहित्य इत्यादि में सभी प्रकार के सुधार की आवश्यकता थी। राष्ट्रीय नवोत्थान के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में तत्कालीन कवियों की बड़ी भूमिका रही हैं। उन्होंने साहित्य के माध्यम से समाज में राष्ट्र-प्रेम, स्वाधीनता की प्यास और सांस्कृतिक स्वाभिमान को उत्पन्न करने का कार्यभार अपने ऊपर लिया। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना सर्वाधिक परिलक्षित होती है। निराला की लम्बी कविताओं में राष्ट्रीयता के विवेचन से पूर्व राष्ट्रीयता की परिभाषा और उसके स्वरूप का परिचय देना समीचीन होगा।

राष्ट्रीयताः स्वरूप विवेचनः- साधारणतया राष्ट्र के प्रति प्रेम को राष्ट्रीयता कहा जाता है। इसके तीन मूल तत्त्व माने गए हैं- भौगोलिक, एकता, भाषा सम्बन्धी एकता और सांस्कृतिक एकता। बहुत बार ऐसा भी देखा जाता है कि इन तत्त्वों के आंशिक अभाव में भी राष्ट्रीयता जीवित रहती है। ये तत्त्व वांछनीय हैं, नितान्त आवश्यक नहीं। राष्ट्रीयता की परिभाषा देते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है- '' राष्ट्रीयता का यह अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और इस राष्ट्र की सेवा के लिए, इसको धन-धान्य से समृद्ध बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को त्याग और कष्टों को स्वीकार करना चाहिए।[१८] अंग्रेजी विश्वकोश के अनुसार ''व्यक्ति की राष्ट्र के प्रति असीम भक्ति भावना की मनोवृत्ति को राष्ट्रीयता कहा जाता है।''[१९] देशप्रेम की भावना भारत में प्राचीन काल से ही पाई जाती है। देश के पर्वत, नदी एवम् नगरों को पूज्य मानने के पीछे देशप्रेम की

भावना ही है। परन्तु आज राष्ट्रीयता का जिस अर्थ में व्यवहार होता है उस रूप में उसका जन्म भारत में १६ वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हुआ।

भारत शताब्दियों से विविधताओं के रहते हुए भी अपनी अनेक समानताओं के कारण एक राष्ट्र रहा है। सैकड़ों वर्षों तक परतंत्र रहने के कारण इसकी मनीषा आहत हो गयी थी। परतन्त्रता के कारण, ' राष्ट्र' शब्द के ऊपर विचार का प्रश्न भी हमारी आहत मनीषा के कारण अन्धकार के गुहा-गर्त में रह गया।

जैसे राष्ट्र के सम्बन्ध जन-समुदाय और उसकी समान मानसिक प्रतिबद्धता से है, उसी प्रकार राष्ट्रीयता का सम्बन्ध पूर्ण रूप से मानसिक है, अतः इसकी नपी तुली परिभाषा करना एक कठोर और दूरूह कार्य है। राजनीति-विज्ञान के पंडितों ने ' राष्ट्रीय' और ' राष्ट्रीयता' को क्रमशः विशेषण और संज्ञा दोनों रूपों में लेकर इन पर विचार किया है।

गार्नर के अनुसार - ''वह व्यक्ति, जिसे राज्य का संरक्षण प्राप्त हो, राष्ट्रीय होता है, चाहे वह अपने राष्ट्र का नागरिक हो अथवा किसी अन्य राज्य में नागरिक या अनागरिक के रूप में निवास करता है।''[२०]

गेटेल के अनुसार राष्ट्रीयता के छः अंग होते हैं- जातीय एकता, भाविक एकता, धार्मिक एकता, भौगोलिक एकता, समान राजनीतिक अनुभूतियाँ और हितों की एकता। इन्हीं तत्त्वों के सन्दर्भ में वे राष्ट्रीयता की परिभाषा इस प्रकार करते हैं '' राष्ट्रीयता मुख्यतः एक मनः संरचनात्मक अनुभूति है, इसके सदस्यों का यह विश्वास है कि वे परस्पर सम्बद्ध हैं तथा उनके समान गौरवानुभव, समस्याएँ रिक्य और परम्पराएँ हैं।''[२१]

आर० एन० गिलक्राइस्ट की परिभाषा अत्यन्त व्यापक है उनके अनुसार - ''राष्ट्रीयता एक भावात्मक संवेग या सिद्धान्त है, जो विशिष्ट भूखण्ड की एक ही जाति, एक भाषा, एक धर्म, समान ऐतिहासिक परम्पराओं, समान हितों, समान राजनीतिक संघटन और राजनीतिक एकता के समान आदर्श के साथ किसी विशाल जनसमुदाय के बीच उत्पन्न होता है।''[२२]

डा० भीमराव अम्बेडकर के शब्दों में - '' राष्ट्रीयता श्रेणीगत चेतना की एक अनुभूति है, जो एक ओर तो उन व्यक्तियों को, जिनमें यह इतनी प्रगाढ़ होती है कि

आर्थिक संघर्ष या समाजगत उच्चता-नीचता के कारण उत्पन्न होने वाले भेदभावों को दबाकर एक सूत्र में बाँधे रखती है और दूसरी ओर उनको ऐसे लोगों से पृथक करती है, जो उस श्रेणी के नहीं हैं।''[२३]

कुछ लोगों का विचार है कि भारत में राष्ट्रीय-भावना का इतिहास कांग्रेस के इतिहास से सम्बद्ध है। इससे पूर्व संकुचित अर्थ में देशप्रेम केवल प्रांतीयता तक सीमित था। गांधीजी ने सारे राष्ट्र में घूमफिर कर लोगों को वास्तविक राष्ट्रीयता के स्वरूप का बोध कराया तथा पराधीनता के बन्धन से मुक्त होने की बलवती कामना जाग्रत कर दी। इस स्थिति से प्रभावित होकर कवियों ने भारत-माता का स्तवन करना प्रारम्भ किया तथा भावात्मक एकता के गीत गाये जाने लगे। इस दिशा में निराला जी का योगदान सराहनीय रहा। इनकी कविताओं में राष्ट्रीय भावना को शक्ति सम्पन्न वाणी प्रदान करने की अपार क्षमता दिखाई देती है। आगे हम निराला जी की लम्बी कविताओं में राष्ट्रीयता विषय पर विमर्श करेंगे।

मनुष्य ही नहीं अपितु पशु-पक्षी भी स्वतन्त्रता को सबसे बड़ा सुख एवं काम्य समझते हैं। स्वच्छन्द विहार करने वाले पक्षी को चाहे सोने के पिंजरे में डालकर मधुर पदार्थ खिलाएँ, फिर भी उसकी आत्मा स्वतन्त्र होने के लिए छटपटाती रहेगी। मुक्त पवन में पंख फैलाकर उड़ने में जो मजा है, वह स्वर्ण पिंजर में कहाँ मिल सकता है। निराला जी स्वाभिमानी व्यक्तित्त्व के धनी थे और स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए तो पराधीनता मृत्यु से भी बढ़कर दुखदायी होती है। निराला ने भी स्वतन्त्रता की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए इसे ओंकार मंत्र के समान पवित्र एवं सर्वोपरि स्थान दिया है।

पराधीनता के बन्धन से ग्रसित निरीह भारतीय जनता के वक्ता के रूप में निरालाजी ने अपनी वाणी मुखरित की है। उनके काव्य में अन्धकार से बाहर निकलने और स्वतन्त्रता के वातावरण में श्वांस लेने की अदम्य अभिलाषा परिलक्षित होती है। 'राम की शक्ति पूजा' के माध्यम से कवि निराला स्वयं राम के व्यक्तित्त्व में परिलक्षित होकर अथवा तत्कालीन राष्ट्रीय समस्याओं को स्वर दिया है। 'तुलसीदास' में तुलसी के माध्यम से जब निराला के रूप में राम अराजकता और समाज में व्याप्त विरोधों से

लड़ते-लड़ते थक जाते हैं तब कविता में विभाषण के माध्यम से स्वंय के आत्मविश्वास को पुर्नजाग्रत करते हैं। 'हे रघुवीर, आज क्या बात है खिन्न क्यों हैं? तुम्हारा वही दलबल, वही वक्ष, वही रज-कुशल हस्त है। जबकि रावण लम्पट है, भोगी है, दुष्ट है, पापी है। यदि तुम इस समय निराश बने रहे तो रावण अर्थात आसुरी शक्ति अराजकता का और अधिक विस्तार होगा, नैतिक मूल्यों का ह्रास होता चला जायेगा।" इस प्रकार राष्ट्रीय भावों को अभिव्यक्ति करते हुए निराला कह उठते हैं-

"रघुकुल गौरव, लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ हो रहा जब जय रण
कितना श्रम हुआ व्यर्थ। आया जब मिलन-समय,
तुम खींच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय
रावण, रावण, लम्पट, खल, कल्मष-गताचार,
जिसने हित कहते किया मुझे पाद-प्रहार।"[२४]

राम अपने सेनापतियों से घिरे श्वेत शिला पर बैठे हैं चारों ओर अमानिशा का अन्धकार छाया हुआ है। इस अंधकार के राम के मन की स्थिरता जैसे और विचलित होती जा रही है और उनके मन की संशयालु स्थिति भी बढ़ती जा रही है। राम के रूप में निराला तत्कालीन परिवेश, देशकाल, वातावरण से निराश हो उठते हें और कहते हैं-

"है अमानिशा; उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यानमग्न, केवल जलती मशाल,
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय।"[२५]

यहाँ अमानिशा के माध्यम से तत्कालीन परतंत्रता की वेदना को दर्शाने का प्रयास किया गया है। राम यद्यपि सदैव से स्थिर रहे हैं किन्तु आज उनके हृदय में बार-बार शंका उठ रही है यह भय विचलित किए दे रहा है कि कहीं इस युद्ध में रावण की विजय

न हो जाए अगर ऐसा हुआ तो संसार में अनाचार, स्वार्थ और लम्पटता विकसित होगी और यह धर्म के, न्याय के विरुद्ध होगा। ठीक वहीं राम रूप में स्वयं निराला पराधीनता से त्रस्त परिवेश-देश को देखकर कह उठते हैं और उनके राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत कविता मशाल के रूप में अंधकार को (अराजकता को) भेद पाने में असमर्थ सी जान पड़ रही है।

'राम की शक्ति पूजा' में ही आगे निराला आततायी शक्तियों का दमन करने के लिए राष्ट्रीयता को जाग्रत करने के लिए हुँकार उठते हैं-

"हे पुरुष-सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम करो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर,
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम ही सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त।"[२६]

जाम्बवान के शब्दों में निराला कहते हैं कि जब अधर्मी लोग शक्तिग्रहण कर सकते हैं तो नैतिक मूल्यों को मानने वाले क्यों नहीं। नैतिक-मूल्यों को प्रतिष्ठापित करते हुए निराला कहते हैं कि सत्य की जय होगी, जय होगी और इस तरह राष्ट्रीयता को जाग्रत करते हैं-

"होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।"[२७]

राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करते हुए 'कुकुरमुत्ता' लम्बी-कविता में निराला कुकुरमुत्ता के द्वारा गुलाब (पूँजीवादी शोषक वर्ग) को फटकारते हैं। जीवन-पथ में थके-टूटे पथिकों को, सर्वहारा वर्ग को अपनी कविता के द्वारा संबल प्रदान किया है और आत्मविश्वास के साथ सभी को साथ लेकर चलने का आह्वाहन करते हुए कुछ भटके हुए पूँजीवादी लोगों में फटकार लगाकर कविता को एक राष्ट्रीय स्वर दिया है-

"अबे सुन वे गुलाब
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,

डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रखा सहाया जाड़ा घाम
शाहों-राजा-अमीरों का रहा प्यारा
इसलिए साधारणों से रहा न्यारा।।''[२८]

स्वदेशी-भाव जाग्रत करते हुए निराला ने मुहावरेयुक्त भाषा से उस परतन्त्रता के समय में लोगों के अन्तस् को जगाने की साकार कोशिश की है और स्वदेशी-जागरण का पाठ पढ़ाते हुए राष्ट्रीयता का बिगुल फूँका है-

''कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर
टी०एस० इलीयट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने भी जिगर पर रखकर
हाथ कहा, 'लिख दिया जहाँ सारा'।[२९]

मुगलों के आक्रमण से भारतीय संस्कृति के ह्रास के वर्णन को चित्रित करते हुए तत्कालीन समाज को जाग्रत करने का, सोई हुई जनता को निरन्तर हो रहे पतन का आभास कराकर निरालाजी ने कविता के प्रारम्भ में ही राष्ट्रीयता का शंखनाद किया है-

''भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य दिङ्मंडल,
उर का आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।''[३०]

'तुलसीदास' लम्बी कविता में निराला स्वयं तुलसीदास के रूप में परिलक्षित होकर मोह-माया रूपित रत्नावली का त्याज्य करके विराट फलक के साथ मानस के अन्तस में चल रहें जड़ और चेतन के संग्राम को उभारकर ओजपूर्ण शैली में अभिव्यजिंत किया है। एक ओर ईश्वर और जय है दूसरी ओर माया करने वाले दैत्य हैं अर्थात समाज में

सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता को खण्डित करने वाले अराजक तत्त्व हैं। एक ओर सरस्वती (भारती) है दूसरी ओर मायावी जीवन के सब कौशल हैं अर्थात एक तरफ देश का उत्थान है और दूसरी तरफ बिखराव। इस तरह मानव के अन्तस में चल रहे ऊहापोह की स्थिति को उभारते हुए समाज को, देश को, जगाने का सफल प्रयास कर ओजपूर्ण शैली में राष्ट्रीयता को उभारा है-

"होगा फिर दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर,
कवि का प्रति छवि से जीवन हर, जीवन भर,
भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल,
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल मायान्कर।"

× × × × × ×

"देशकाल के शर से बिंधकर
यह जागा कवि अशेष-छविधर
इसका स्वर भर भारती मुखर होएँगी,

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निराला का समस्त काव्य विशेषकर उनकी लम्बी-कविताएँ राष्ट्रीय भावभूमि पर रची गई हैं। उनका काव्य युगीन पृष्ठभूमि के प्रति पूर्ण सज्ग एवम् जागरूक है। राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति निराला का उपजीव्य रहा है, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी लम्बी कविताओं में विविध धरातलों पर विविध रूप में परिलक्षित होती है।

मानवता और लोक चेतना

भारतीय संस्कृति का सर्वोच्च लक्ष्य "वसुधैव कुटुम्बकम' रहा है अर्थात सारी पृथ्वी एक परिवार का रूप धारण करे और समस्त मानव-परिवार भाई-भाई के सिद्धान्त को स्वीकार करे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक धार्मिक पुरुषों और साहित्याकारों ने समय-समय

पर लोक-चेतना और मानव प्रेम की भावना को विकसित करने का प्रयास किया है। कार्लिस लेमाण्ट आधुनिक मानववाद की व्याख्या में अन्तर्राष्ट्रीय मानवता की बात उठाते हैं। मुनष्य सृष्टि के जिस भी कोने में रहता है, वहाँ लोक-चेतना का ह्रास और भेदभाव की भावना मानव का अनादर है। उसके मत की एक विशिष्ट बात यह है कि मानव के बन्धुत्व रूप के प्रति वे अधिक सजग और श्रद्धालु हैं। "आधुनिक मानववाद विश्व-बन्धुत्व, अन्तर्राष्ट्रीय-मैत्री और सच्चे भ्रात-भाव का समर्थक है।"[३१]

स्वामी विवेकानन्द ने समस्त विश्व में एक ही आत्मा का प्रकाश माना है। इस दार्शनिक मान्यता से प्रभावित होकर निराला लोक-चेतना को जाग्रत करने वाले मानव की महानता के गायक बन गए। निराला का हृदय, परिवार या राष्ट्र की संकीर्ण परिधि तक सीमित रहने वाला नहीं था बल्कि एक तरफ आंचलिकता (लोक के आँचल) के समस्याओं को आत्मसात करते हुए एक मार्गदर्शक की भूमिका में है तो दूसरी ओर सम्पूर्ण विश्व को अपने में समेटने का आकांक्षी भी। आत्मप्रसार की यह भावना इतनी प्रबल एवम् सशक्त है कि उन्होंने जीवन के सभी क्षेत्रों में संकुचित प्रवृत्तियों का डटकर विरोध किया है। निराला ने ऐसे विश्व-समाज की कल्पना की है जिसमें जाति-वर्ण-धर्म और राष्ट्रगत संकीर्णताओं का अभाव हो तथा मानव, मानव से भिन्न न हो तभी वह अनामिका में सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति कह उठते हैं-

"मानव- मानव से नहीं भिन्न
निश्चय हो श्वेत, कृष्ण अथवा, वह नहीं
क्लिन्न
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक
हो कोई सर।"[३२]

निराला ने सांसारिक वैभव के लिए मानव का गला घोंटना सर्वथा अनुचित बताया है मानव-जगत में विषमता, भेद और ऊँच-नीच की भावना उन्हें कदापि प्रिय नहीं। तुच्छ

स्वार्थ के लिए जो लोग मानव का खून चूसते हैं उन्हें निराला अक्षम्य मानते हैं। लोक की चेतना को जाग्रत कर, लोकोत्थान के लिए सफल संघर्ष करने वाले अपने युग के निराला अद्वितीय कवि हैं। लोक चेतना का चित्रण निरालाजी की समस्त लम्बी कविताओं में परिलक्षित होता है।

निराला जी की लम्बी कविताओं में किसान, मजदूर (सर्वहारा वर्ग) की विवशता को वाणी मिली है, उनकी आशा-आकांक्षा व्यक्त हुई है। निराला सच्चे अर्थों में लोक के चितेरे जनवादी कवि हैं। युगों के संचित दुःखों को मिटाने का उनका संकल्प कैसे पूरा हो- यह चिन्ता उन्हें सदैव व्यथित रखती है, तभी कुकुरमुत्ता में सर्वहारा वर्ग की आवाज बनकर निराला हुँकार उठे हैं-

"अबे सुन वे गुलाब
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट।"[३३]

मानव की मानवता के गायक निराला जब मानव की दुर्गति और अपमान देखते हैं, तो प्रतिक्रियास्वरूप विद्रोह का भैरवनाद करते दिखाई देते हैं। सामाजिक वैषम्यों को एकात्मबोध में बाधक समझकर निराला को क्रान्तिकारी समाजदृष्टा बनना पड़ा। 'कुकुरमुत्ता' में ऐसे अहंवादी शोषक नवाब को व्यंग्य का शिकार बनाया गया है, जिसे देश की लोक-चेतना, रीति-परम्परा-स्थिति का कोई ज्ञान नहीं है। 'कुकुरमुत्ता' में लोक-जगत का चित्रण निरालाजी से बहुत सुन्दर बन पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे निराला उस आँचल का अभिन्न हिस्सा हों-

"बाग के बाहर पड़े थे झोंपड़े
दूर से जो दिख रहे थे अधगड़े।
जगह गन्दी, रूका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, जिन्दगी की लन्तरानी-
बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियाँ

सेलरों की, परों की थीं गड्डियाँ
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे,
धूप खाते हुए कण्डे।''[३४]

× × × × × × ×

बच्चे, बु ड्ढे औरतें और नौजवान
रहते थे उस बस्ती में कुछ बाग़वान
पेट के मारे वहाँ पर आ बसे,
साथ उनके रहे, रोये और हँसे।''[३५]

मानव-जीवन के प्राकृतिक विकास को रोकने वाली सामाजिक, साम्प्रदायिक और धार्मिक संकीर्णताओं को विनष्ट करने की घोषणा निराला जी ने की है। समाज में व्याप्त अराजक तत्त्वों (शक्तियों) को 'राम की शक्ति पूजा' में आसुरी शक्ति दिखाकर और अंततोगत्वा आसुरी शक्तियों का दमन कराकर, नैतिक मूल्यों को मण्डित करने वाले सदाचारी 'राम' के द्वारा निरालाजी ने मानवता को प्रतिष्ठापित किया है और तत्कालीन परिवेश तथा काव्य जगत को नई दिशा दी है-

''होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।''[३६]

निराला जी की सभी लम्बी कविताएँ 'मानवीयता' के धरातल पर हैं। बिना मानवीय अर्थ और इस अर्थ की गहराई के कोई भी रचना श्रेष्ठ नहीं बन सकतीं, क्योंकि उसका संबंध अंततः मनुष्य से है।

''निराला ने अपने शील एवम् साहित्य दोनों में ही संकीर्णता का विरोध करते हुए अपनी महाप्राणता का परिचय दिया है। इसके लिए उन्होंने करुणा और विद्रोह दोनों का सहारा लिया है। करुणा उपेक्षित, पीड़ित एवं प्रताड़ित जन समूह के लिए और विद्रोह अन्यायी शोषक वर्ग के प्रति। यही निराला की प्रगतिशील जनवादिता की आधारशिला है। उन्होंने प्रारम्भ से ही क्रान्ति का अवलम्ब लेकर मानवतावादी मूल्यों का अनुमोदन किया है।

उन्होंने व्यक्ति को केवल व्यक्ति के रूप में देखा है, जातिगत संकीर्णता के चौखटे में फिट करके कभी देखने की कोशिश नहीं की। इसीलिए उन्होंने शाश्वत मानवता का उदान्त स्वरूप उन निरीह पात्रों में भी देखा जो प्रचलित वर्ण-व्यवस्था के अनुसार अछूत एवम् अन्त्यज होने के बावजूद अन्तःकरण से सात्विक एवं चरित्र से धवल थे।''[३७]

आदर्शवादी मानवतावाद का सशक्त उदाहरण 'सरोज-स्मृति' में समाज की अनेक रूढ़ियों पर कवि ने प्रहार करके दिया है। तीन कनौजिया, तेरह चूल्हा' की लोक-विश्रतु कहावत के शिकार निराला की पीड़ा दृष्टव्य है-

''सोचा मन में हत बार-बार
ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
उनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय बेल में विष ही फल,
यह दग्ध मरूस्थल- नहीं सुजल।''[३८]

'सरोज स्मृति' में 'लोक-चेतना' को जाग्रत करते हुए पूरी परम्पराओं की अवमानना कर कवि लोक के धरातल पर आकर जुड़े हैं। चमड़े की जूतियों में तेल डालकर पहनना, और उन पैंरों में से दुर्गन्ध का आना, उन दुर्गन्ध युक्त पैरों को छूने की परम्परा को कवि निराला अन्धानुकरण की संज्ञा देते हैं। ऐसा लगता है जैसे निराला लोक से जुड़ गए हैं-

''वे जो यमुना के-से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गन्ध,
उन चरणों को मैं यथा अन्ध,
कल घ्राण प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति।

ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह।।''[३६]

''भारतीय समाज में विधवाओं की दयनीय स्थिति, जातिवाद और रूढ़िग्रस्तता, आडम्बर प्रधान नवीन सभ्यता, नवयुवकों की कुरूचि, निम्नवर्ग के प्रति उच्चवर्ग की अभिचार वृत्ति आदि पतनशीलता के विविध पक्ष निरालाजी ने उद्घाटित किए।''[४०] महाकवि तुलसीदास द्वारा प्रतिष्ठित नारी धर्म का व्यवहार अन्यत्र भले ही न हुआ हो किन्तु किसान की बहू उसका पालन करती है। 'रामचरितमानस' में सीता को उपदिष्ट करती हुई अनुसूया का यह कथन विचारणीय है-

''अमित दान भरता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।[४१]

× × × × × × ×

बृद्ध रोग बस, जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।

एकह धर्म एक व्रत नेमा। कार्य वचन मन पति पद प्रेमा।।[४२]

किसान के घर में आई हुई दुल्हन सबके सामने अपने पति के लिए कुछ करना तो दूर, उससे बातचीत भी नहीं कर सकती। वह एकान्त में ही उससे सम्भाषण करेगी। वह चाहे जैसा भी हो बहू आजीवन उसकी छाया का अनुसरण करेगी। ऐसा वह आरोपित दवाब के कारण नहीं करती, वतन उसकी संस्कृति और संस्कार ही इसी प्रकार के हैं। यहाँ निराला ने बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण किया है। परोक्ष रूप से कवि इस कृषक-वधू का उद्धार चाहता है। 'तुलसीदास' में पत्नी के प्रति आसक्ति का अतिरेक दिखाकर कवि रत्नावली की कुछ समय के लिए मुक्ति चाहता है। रत्नावली का भाई उसे लिवाने आता है

और जब तुलसीदास बाजार गए हुए थे वह उनकी स्त्री को लिवा ले जाता है। तुलसी पत्नी को बुलाने रात्रि में ही ससुराल चल देते हैं। रागात्मक वृत्ति का अतिरेक दिखाकर नारी मुक्ति के प्रति निराला आवाज उठाते हैं और रत्नावली के रूप में फुँकारते हुए नारी की जकड़ी जंजीरों को तोड़ने का प्रयास करते दिखाई देते हैं-

"धिक! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कु छ हाड़-चाम।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।'[४३]

'निराला' हिन्दी के जनवादी लोक-कवि हैं। लोक-जगत की बारीक पकड़ निराला को एक श्रेष्ठ मानवतावादी कवियों की श्रेणी में लाकर खड़ा करती है। 'तुलसीदास' की जन्मभूमि राजापुर का वर्णन करते हुए जान पड़ता है जैसे स्वयं निराला का जीवन वहीं पर बीता हो। राजापुर उस समय के समृद्धशाली नगरों में से एक था। व्यवसाय के कारण उसकी गगन चुम्बी समृद्धि उसे तत्कालीन नगरों में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है-

पड़ते हैं जो दिल्ली पथ पर
यमुना के तट के श्रेष्ठ नगर,
वे हैं समृद्धि की दूर-प्रसर माया में,
यह एक उन्हीं में राजापुर
है पूर्ण, कुशल व्यवसाय प्रचुर
ज्योतिश्शृंविनी कलश-मधु-डर छाया में।'[४४]

"जनवादी मूल्य ही जीवन के सच्चे मूल्य हैं। धर्म राजनीति और सदाचार की उपयोगिता जनहित में ही है। जो कुछ भी जन जीवन से पृथक है वह सत्य नहीं हो सकता। वह संस्कृति जहाँ, सत्य, सुन्दर और शिव कुछ विशेष उच्च वर्गों के लिए हैं - उसका पतन अवश्यम्भावी है।"[४५]

"..... निराला की यह जन-मुक्ति की मानवतावादी चिन्ता उस समय से उनकी कविताओं का अंग रही है, जब हिन्दुस्तान में कम्यूनिस्ट पार्टी के स्थापना भी नहीं हुई थी।"[४६] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव जीवन के प्राकृतिक विकास को रोकने वाली शक्तियों के प्रति, धार्मिक, सामाजिक, पारम्परिक और साम्प्रदायिक संकीर्णताओं को विनष्ट करने का प्रयास निरालाजी की लम्बी-कविताओं में हुआ है। मानव के उत्थान और गौरव का गुणगान करते हुए विश्व प्रेम का पथ प्रशस्त करने का प्रयास निराला ने किया है।

भक्ति और दर्शन

जब व्यक्ति बुद्धि और बल के सहारे लड़ते हुए थकने लगता है तब उसे परमात्मा का ध्यान आता है। यद्यपि प्रभु-स्मरण को पराजय की भावना से जोड़ना उचित नहीं है पर कभी-कभी जीवन की विभीषिकाओं से श्रान्त-भ्रान्त व्यक्ति भक्ति के सम्बल से नई शक्ति अवश्य प्राप्त करता है। जीवन-पक्ष के विजेता भी भक्ति के द्वारा शान्ति शक्ति और नवोत्साह प्राप्त करते हैं। परन्तु अधिकतर लोग थकने पर ही भक्ति पथ का अनुसरण करते हैं।

जीव-जगत और ब्रह्म के स्वरूप को जानने की कामना और एक विशिष्ट रीति से उसके समाधान का प्रयास ही दर्शन है। सृष्टि-प्रलय, जन्म-मरण, सुख-दुख, कारण-कर्म, पाप-पुण्य, बन्धन-मुक्ति आदि अनेक प्रश्न दर्शन के साथ जुड़े हुए हैं। निराला को प्राचीन दर्शन संबंधी ग्रन्थों को पढ़ने का अधिक समय नहीं मिला परन्तु उनका सम्बन्ध रामकृष्ण आश्रम से रहा है। स्वामी शारदानन्द जी और स्वामी प्रेमानन्दजी जैसे विद्वानों के सम्पर्क में रहने का उन्हें सौभाग्य मिला, आश्रम की आध्यात्मिक पत्रिका 'समन्वय' के सम्पादन का अवसर मिला और रामकृष्ण साहित्य का हिन्दी-अनुवाद भी उन्होंने किया। स्वामी विवेकानन्द के नव्य वेदान्त का उन पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

दर्शन और भक्ति की काव्य भूमियाँ निराला की कृतियों में आद्योपान्त मिलती हैं। निरालाजी की लम्बी-कविता, 'सरोज स्मृति', 'कुकुरमुत्ता' की अपेक्षा 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' में भक्ति एवं दर्शन अधिक मुखरित हुआ है।

निरालाजी का दर्शन अद्वैतवादी है। शंकर के अद्वैत दर्शन का विवेचन और उसका काव्यात्मक रूप उनके काव्यों में उपलब्ध होता है। वे चराचर जगत में सर्वत्र एक ही शाश्वत ब्रह्म की सत्ता का अस्तित्त्व मानते हैं। ब्रह्म ही जीव है, जगत भी ब्रह्म है। ब्रह्म को छोड़कर अन्य कोई सत्ता सत्य नहीं है अनेकता में एकता देखना और दृश्यमान जगत के मूल में एक अदृश्य सत्ता का अनुीाव करना ही तो अद्वैत है। दार्शनिक निराला ने ''तुम और मैं'' कविता में ब्रह्म और आत्मा की ाभिन्नता का स्पष्टीकरण बड़े ही कलात्मक ढंग से किया है।

माया के सम्पर्क से आत्मा (जीव) विविध क्रीड़ाएँ करती है, परन्तु साधना के बल पर माया से छुट्टी मिल जाती है तो आत्मा का ब्रह्म से ऐक्य स्थापित हो जाता है। उस अवस्था में आत्मा की आनन्दमयी स्थिति हो जाती है, उस अवस्था का चित्रण निराला जी 'तुलसीदास' शीर्षक लम्बी-कविता में इस प्रकार करते हैं-

''आभा भी क्रमशः हुई मंद,
निस्तब्ध व्योम-गति रहित छंद,
आनंद रहा, मिट गए द्वन्द्व, बंधन सब।''

× × × × ×

थे मुँदे नयन, ज्ञानोन्मीलित,
कलि में सौरभ ज्यों, चित में स्थित,
अपनी असीमता में अवसित प्राणाशय।''[४७]

शक्ति उपासक 'निराला' ''राम की शक्ति पूजा'' में रामचन्द्रजी को शक्ति-संचय के लिए शक्ति की पूजा योग-मार्ग पर करती पड़ती है। शक्ति पूजा द्वारा राम अपने

अन्तर की गुप्त शक्तियों को ही जाग्रत करते हैं। दर्शन और भक्ति दोनों का समन्वयात्मक रूप 'राम की शक्ति पूजा' में दिखाई पड़ता है-

"होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।"[४८]

पूर्णब्रह्मवाद और शून्यवाद को अद्वैतवाद से अलग नहीं किया जा सकता अतएव 'राम की शक्ति साधना वेदान्तिक दर्शन के अनुकूल है। अद्वैतवादी, आत्मा में ही सभी शक्तियों का अस्तित्त्व मानता है, उन्हें केवल साधना के द्वारा जगाना पड़ता है।

निरालाजी की भक्ति और दर्शन में जैसे शक्ति साधना के लिए स्थान है वैसे ही शून्यवाद को भी स्थान मिला है। वह स्वयं कहते हैं-

"पृथ्वी शून्य, सूर्य शून्य, चन्द्र शून्य, तारे शून्य जलकण शून्य, चिनगारी शून्य, हवा का आवर्त शून्य, अणु-परमाणु शून्य, स्वेद अण्ड-पिण्ड शून्य, प्रकृति का प्रत्येक बीज शून्य।"[४९]

यहाँ निरालाजी ने सभी दृश्य-अदृश्य, व्यक्त-अव्यक्त को शून्य माना है।

निरालाजी कृत 'तुलसीदास' में दर्शन उस समय चरम पर दिखाई पड़ता है जब रत्नावली- तुलसी संवादों के द्वारा निराला ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। रत्नावली का भाई जब रत्नावली को ससुराल से बुलाकर ले जाता है, तब पता चलते ही तुलसीदास सांसारिक व्यवहार के ज्ञान की अवहेलना करते हुए रत्नावली को बुलाने ससुराल चल देते हैं। भाभी के व्यंग्य सुन कर और पति का चन्द्रमुख देखकर रत्नावली के हृदय में आज उल्टा ज्वार बह चला। जिस तरह हवा से उड़ाई हुई मेघमाला अन्तर में बिजली छिपाए पर्वत के पास आकर ठहरती है, उसी तरह रत्नावली पति के पास आई। जैसे चक्रों से अंकित पूँछ फैलाकर मोर नाच उठता है वैसे ही मेघमाला सी रत्नावली को देखकर तुलसीदास का मन-मयूर नाच उठा। रत्नावली के बाल खुल गए, आँखों की पलकों ने गिरना बन्द कर दिया। उसके मोह बन्धन टूट गए, वह अरूप का ध्यान करती हुई योगिनी की तरह उठकर खड़ी हुई और तुलसीदास को संबोधित करते हुए कहने लगी-

"धिक! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कु छ हाड़-चाय।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।"[५०]

रत्नावली में कवि तुलसीदास को भारती के दर्शन हुए। उनके पूर्व संस्कार जागे। उसी क्षण उनका काम भस्म हो गया। उन्हें सामने स्त्री नहीं, आग की जलती हुई प्रतिमा दिखाई दी। वह उन्हें विश्व-हंस पर स्थित नीलवसना शारदा सी लगी। उसकी दृष्टि से बँधकर एक बार उनका मन फिर ऊपर उठा, आकाश के बहुरंगी स्तर एक क्षण में पार कर गया और संस्कारों के धूसर समुद्र के ऊपर फिर एक नवीन तारिका चमक उठी। उसी में शारदा का वह रूप लीन हो गया केवल अरूप की महिमा रह गई। मन-आकाश निस्तब्ध रह गया। ज्ञान से खुले हुए नेत्र बाहर से मुँद गए। जिस कली में कवि का मन बन्द था वह 'सरस्वती' बनकर छंद की सुरभि लिए हुए उसी के भीतर खुल गई।

तुलसीदास की चेतना में भारत की सोई हुई महिमा का जागना, विलासिता भरा ऐश्वर्य और अज्ञान की रात का वीतना, ज्ञान का दीप जगाने और जलाने वाली पत्नी रत्नावली का मातृस्वरूपा लगना पराधीनता की बेड़ियों से जनमानस को निकालने का, उनकी सोई शक्ति को जगाने का तुलसी का संकल्प, निराला के वैयक्तिक दर्शन और भक्ति का परिचायक है।

निराला की भक्ति-भावना, भक्ति सिद्धान्त की परिपाटी का अनुसरण करती हुई विकसित नहीं होती। 'दुरित' से मुक्ति एवं मृत्यु की आशंका उनसे भक्ति का आँचल पकड़वाती है। 'दरअसल उनकी भक्ति भी आधुनिक मनुष्य की आस्था-अनास्था की बिडम्बनापूर्ण, दुविधाग्रस्त मनः स्थिति का प्रतिफलन है।"[५१]

संसार के प्रत्येक कण में विद्यमान रहने वाले अलौकिक एवं अव्यक्त सत्ता की तीन प्रकार से अनुभूति की जाती है, आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। भारतीय दार्शनिक जगत के आधिभौतिक स्वरूप को जो वस्तुतः पदार्थों का वाह्य स्वरूप ही है को महत्त्व नहीं देते। कुछ साधक ब्रह्म के आधिदैविक स्वरूप की अनुभूति पाते हैं तो कुछ अनिवर्चनीय, निराकार तथा निर्गुण परब्रह्म की-आध्यात्मिक सत्ता का अनुभव करते हैं। आधिदैविक भावना में शील, शक्ति एवम् सौन्दर्य से सम्पन्न साकार सगुण रूप की कल्पना की जाती है। आधिदैविक भावना भक्तों की होती है तो आध्यात्मिक भावना ज्ञानियों की। ब्रह्म-जिज्ञासा के जाग्रत होते ही साधक में ब्रह्म को जानने तथा उसकी प्राप्ति के लिए उत्सुकता पैदा होती है, तब वह या तो भक्ति के द्वारा अथवा ज्ञान या चिन्तन के मार्ग से उसका साक्षात्कार पाने का प्रयास करता है। ब्रह्म के इसी स्वरूप के साक्षात्कार के प्रयास को अध्यात्म कहा जाता है।

अध्यात्म के क्षेत्र में निरालाजी का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। उनकी समग्र रचनाओं का आधार अद्वैतवादी दर्शन पर उनकी आस्था है। भारतीय अध्यात्म में परमात्मा के सगुण और निर्गुण- दोनों रूपों को मान्यता मिली है। निरालाजी ने एक तरफ 'पंचवटी प्रसंग', 'तुम और मैं' कविताओं में शुद्ध अद्वैतवाद की विवेचना को स्वीकारा है तो दूसरी ओर 'गीतिका' के गीतों, 'अर्चना', 'अराधना', 'गीतकुंज' आदि में भागवत-भक्ति एवं प्रपत्तिपरक वैष्णवी भक्ति की धारा प्रवाहित करते हैं। निरालाजी के अनुसार व्यष्टि और समष्टि में कोई भेद नहीं है। भेद और भ्रम उपजाने वाला तत्त्व है 'माया'। विश्व की सृष्टि, स्थिति और लय का कारण वही एक सच्चिदानन्द ब्रह्म है ज्ञान अथवा योग 'साधना से उसे प्राप्त किया जा सकता है। अपनी लम्बी-कविताओं में निरालाजी विशुद्ध दार्शनिक होने के नाते जीव और ब्रह्म के बीच भेद पैदा करने वाली माया का खण्डन करते हैं। वे विश्व के कण-कण में व्याप्त रहने वाली अदृश्य सत्ता की प्राप्ति के लिए आवश्यक योग साधना की व्याख्या करते हैं और साधनात्मक शक्ति पूजा करते हैं। 'राम की शक्ति पूजा' में ब्रह्म की इसी सत्ता को शक्ति के रूप में ग्रहण कर उसकी प्राप्ति के लिए योग मार्ग का प्रतिपादन किया गया है।

''चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस
× × × × ×
चढ़ षण्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन
प्रति जप से खिंच खिंच होने लगा महाकर्षण
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी पद पर
× × × × ×
आठवाँ दिवस, मन ध्यानयुक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्म-हरि-शंकर का स्तर
× × × × ×
पार प्रायः करने को हुआ दुर्ग जो सहस्रार
× × × × ×
जिस क्षण बँध गया बेधने को दृग दृढ़ निश्चय
काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय।।''[५२]

यहाँ इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना को पार करता हुआ अधोमुखी कुण्डलिनी शक्ति के षटचक्रों से होकर सहस्रार तक पहुँचाने और अंत में विविध साधनाओं एवम परीक्षाओं के पश्चात सिद्धि प्राप्त करने का जो विवरण प्राप्त होता है वह योग मार्ग के अनुरूप है। यहाँ भी निराला जी ने वेदान्त दर्शन के अनुकूल समस्त शक्तियों के केन्द्र स्थान के रूप में आत्मा को माना है और उसे जाग्रत करने की आवश्यकता के प्रति संकेत किया है। वेदान्तियों की भाँति निरालाजी घोषित करते हैं कि साधना के मार्ग से मायावृत जड़ आवरणों से आवृत्त आत्मा को अनावृत्त कर उसका चेतनात्मक परिष्कार करना चाहिए।

लम्बी-कविताओं में अध्यात्मक चिंतन के दृष्टिकोण से 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' में ही अद्वैतवादी चिंतन दृष्टिगोचर हुआ है। 'कुकुरमुत्ता' और 'सरोज स्मृति' लोक चेतना को जाग्रत करने वाली समाज को दिशा देने वाली और अध्यात्म के धरातल पर आधिभौतिक रचना ठहरती हैं।

*****

संदर्भ सूची

१. रविन्द्रनाथ टैगोर - फिलोसोफिकल स्टडी (पृ० ११०)

२. टॉलस्टाय - व्हाट इज आर्ट (पृ० १०)

३. महेन्द्रनाथ सरका - ईस्टर्न लाइट (१९३५ एडिसन पृ० १२३)

४. निराला - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १४८.

५. निराला - अनामिका (तुलसीदास) पृ० ३.

६. निराला - अनामिका (कुकुरमुत्ता) पृ० ३८.

७. निराला - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १४८.

८. निराला - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५६.

९. 'निराला' - अनामिका (पृ० १२१, १२२)

१०. 'निराला' - अनामिका (पृ० १२६)

११. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५१)

१२. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ३८)

१३. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ८)

१४. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ११)

१५. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ११)

१६. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ३)

१७. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ५३)

१८. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्यः सं० १९५२, प१० ३०५।

१९. Nationalism is a state of mind in which the Supreme loyality of the individual is felt to be done to the nation state.

२०. गार्नर - पॉलिटिकल साइन्स एण्ड गवर्नमेन्ट (पृ० १०६)

२१. गेटेल - पॉलिटिकल साइन्स (पृ० ५४)

२२. आर० एन० गिलक्राइस्ट - प्रिंसीपल्स ऑफ पॉलटिकल साइन्स (पृ० २९)

२३. डा० भीमराव अम्बेडकर - हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना (पृ० ७)

२४. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५६.

२५. निराला - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५०.

२६. निराला - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५९.

२७. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १६५.

२८. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ३६)

२९. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ४६)

३०. 'निराला' - अनामिका (तुलसीदास) पृ० ३.

३१. डा० हृदयनारायण मिश्रः समकालीन दार्शनिक चिन्तन, (पृ० ३५८)

३२. अनामिकाः सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति, (पृ० १६)

३३. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ३६)

३४. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ४६)

३५. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ५०)

३६. 'निराला' - अनामिका (पृ० १६५)

३७. डा० राममूर्ति शर्मा : युगकवि निराला, (पृ० ११२) पर प्रो० विपिन बिहारी ठाकुर के 'महाप्राण निराला की प्रगतिशीलता' लेख से।

३८. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० १३२-३३)

३९. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० १३०)

४०. डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तवः निराला का काव्य, (पृ० १३६)

४१. महाकवि तुलसीदास - रामचरितमानस (अरण्य काण्ड) पृ० ४०६।

४२. महाकवि तुलसीदास - रामचरितमानस (अरण्य काण्ड) पृ० ४०६।

४३. निराला - तुलसीदास - (पृ० ४५)

४४. निराला - तुलसीदास - (पृ० ८)

४५. डा० रवीन्द्रसहाय वर्माः हिन्दी काव्य पर आंग्ल-प्रभाव, (पृ० २२८)

४६. श्री दूधनाथ सिंहः निरालाः आत्महन्ता आस्था, (पृ० १६१)

४७. निराला - तुलसीदास (पृ० ४७, ४८)

४८. 'निराला' - अनामिका (पृ० १६५)

४९. 'निराला' - प्रबन्ध पद्म-शून्य और शक्ति, (पृ० ४)

५०. निराला - तुलसीदास - (पृ० ४५)

५१. दूधनाथ सिंहः निराला आत्महंता आस्थाः पृ० ३५३।

५२. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० १६२-१६४)

अध्याय 5

'निराला' की लम्बी कविताओं में कला संयोजना

- निराला की लम्बी कविताएँः शिल्प
- निराला की लम्बी कविताएँः प्रतीकात्मकता
- निराला की लम्बी कविताएँः स्वच्छन्दतावाद
- निराला की लम्बी कविताएँः अंलकार विधान
- निराला की लम्बी कविताएँः बिम्ब योजना
- निराला की लम्बी कविताएँः भाषा और संगीतात्मकता
- संदर्भ सूची

निराला की लम्बी कविताएँः शिल्प

निराला की लम्बी-कविताओं में प्रयुक्त शिल्प-विधान पर विचार कर लेने से पहले 'शिल्प' और उसके स्वरूप पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। अतः सबसे पहले हम यहाँ शिल्प के स्वरूप पर विहंगम दृष्टि से विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

'शिल्प' शब्द शिल्प धातु और पक् प्रत्यय से निष्पन्न है जिसका अर्थ होता है- कलात्मक निर्वाह की पद्धति। शिल्प किसी भी कला में साधना की प्रणाली के रूप में काम करता है। 'शिल्प' सच्चे अर्थों में वह माध्यम है जिसके जरिये लेखक अभिव्यक्ति के लिए बाध्य करने वाली अपनी सारी अव्यक्त अन्तः प्रेरणाओं के बीच यथार्थ तौर पर यह अनुभव करता है कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। यह वह माध्यम है जिससे उसकी रचनात्मकता एक रूप रंग पकड़ पाती है।[1]

साधारण अर्थ में चित्रकला अथवा मूर्तिकला के तराशने वाले को शिल्पकार कहते हैं। साहित्य के क्षेत्र में इस कार्य को शैली के नाम से अभिहित किया जाता है। साहित्य में शैली ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके बिना कोई भी लेखक या कवि अपने विचारों को अभिव्यक्त नहीं कर सकता। जिस लेखक या कवि की शैली जितनी अधिक आकर्षक, प्रभावशाली एवं हृदयावर्जक होगी, उसकी रचना का प्रभाव भी पाठक-वर्ग पर उतना ही अधिक होगा।

डा० प्रतिभा कृष्णबल शिल्प पर विचार करते हुए लिखती हैं - 'आधुनिक आलोचना-शास्त्र में 'कला' शब्द अपने व्यापक अर्थ में कवि के सम्पूर्ण कृतित्त्व एवं संकुचित अर्थ में 'शिल्प' अर्थात काव्य के बाह्य रूपाकार के लिए व्यहृत होता है, क्योंकि काव्य, कवि-कर्म का मूर्त प्रतिफल है।'[2]

हिन्दी विश्वकोष में शिल्प के सन्दर्भ में कहा गया है कि "हस्त द्वारा मनुष्य जो कलादि कर्म बड़ी निपुणता से करते हैं, वही शिल्प है।" स्वर्णकार आदि विशेष वृत्तिजीवी जो कर्म सुचारू रूप से कर जीविका निर्वाह करते हैं, वही शिल्प कहलाता है। किन्तु प्राचीन काल में देवमन्दिर, प्रासाद, अट्टालिका, देवमूर्त्ति और गृहादि की दीवालों में जो चारूकार्य खोदा जाता

था, वही शिल्प कहलाता था। जिस शास्त्र पद्धति का अनुसरण शिल्पकार अभीष्ट वस्तु को किसी एक नियमाधीन सुप्रणाली से गठन करते हैं, उसी को शिल्प शास्त्र कहते हैं।"[३]

मानविकी पारिभाषिक कोष के अनुसार - "कलाकार की कला-विषयक निपुणता या दक्षता ही कला का शिल्प है।"[४]

'शैली' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'शील' से मानी जाती है। 'शील' के अनेक अर्थ हैं- स्वभाव, लक्षण, झुकाव, आदत, चरित्र आदि। ये सभी अर्थ, व्यक्ति के विभिन्न विशिष्टताओं के द्योतक हैं जैसे स्वभाव मन की विशेष प्रकृति का सूचक है, लक्षण स्वरूप की विशेषता का, झुकाव रूचि की विशेषता का, और कर्म की विशेषता का। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'शील' शब्द बहुत व्यापक है- उसका सम्बन्ध व्यक्ति की मनोवृत्ति, रूचि, आदत, व्यवहार, चरित्र आदि विभिन्न पक्षों की विशेषता के साथ भी होता है। - जैसे - रूप-शील, गुण-शील, लज्जा-शील आदि। यहाँ 'शील' शब्द का अर्थ उल्लिखित गुण से सम्पन्न होना है। 'शैली' शब्द व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषताओं की अपेक्षा उसके क्रिया-व्यापारों एवं रचना-कौशल के वैशिष्ट्य से अधिक सम्बन्धित है। शब्द कोष के अनुसार-"'शैली' के अर्थ हैं- चाल, ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा, वाक्य-रचना का विशिष्ट प्रकार आदि।"[५]

डा० सत्यदेव चौधरी का इस संदर्भ में मन्तव्य है- "शैली" शब्द इंग्लिश के 'स्टाइल' शब्द का हिन्दी अनुवाद मान लिया गया है, और 'शैली' 'विज्ञान' शब्द को इंगलिश के 'स्टाइलिस्टिक्स' का। अतः जो कुछ भी 'स्टाइल' से अभिप्रेत है, वही शैली से भी अभिप्रेत है। स्टाइल अथवा शैली का साधारण भाषा में अर्थ है-ढंग।"[६]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अंग्रेजी में अभिव्यक्ति के जिस ढंग अथवा रीति के लिए 'स्टाइल' शब्द का प्रयोग किया जाता है, हिन्दी में उसके लिए 'शैली' शब्द व्यवहृत होता है। अतः कहना होगा कि हिन्दी शब्द 'शैली' अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' का ही प्रतिरूप है।

'शिल्प' और 'शैली' के धात्वर्थ एवं कोषगत अर्थ पर विचार कर लेने के बाद अब हम विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की एतद् विचारणा पर दृष्टिपात कर लेना

समीचीन समझते हैं। अतः 'शिल्प' एवं 'शैली' के सम्यक् अर्थबोध के लिए पहले हम कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं पर विचार करते हैं।

पाश्चात्य जर्मन विद्वान 'गेटे' ने 'स्टाइल' को परिभाषित करते हुए लिखा है- "Style as a higher and active principle of composition by which the writer, penetrates and reveals the inner foirm of his subject."[7] अर्थात रचना के एक उच्च और सक्रिय सिद्धान्त के रूप में लेखक शैली के माध्यम से अपने विषय की गहराई में उतरकर विषय के अंतस का उद्घाटन करता है।

पाश्चात्य विचारक गेटे के 'स्टाइल' संबंधी उपर्युक्त मत पर गंभीर मंथन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि गेटे के मत में शिल्प रचना का एक ऐसा आंतरिक गुण है, जिसके माध्यम से रचनाकार प्रतिपाद्य विषय के अंतस में उतरता है और उसे गहराई के साथ आत्मसात करता है और फिर उसे एक बाह्य रूप प्रदान करता है। अतः गेटे के मतानुसार 'स्टाइल' अभिव्यक्ति का एक ऐसा आंतरिक गुण ठहरता है जो किसी कृति को स्वरूप प्रदान करता है।

पाश्चात्य विचारक 'मरी' ने 'स्टाइल' शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है- "A discussion of the word style, if it were pursued with only a fraction of the vigour of a scientific investigation, will inevitably cover the whole of literary aesthetics and the theory of criticism."[8] अर्थात शैली शब्द पर थोड़ी भी वैज्ञानिक गहराई से विचार करें तो इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण सौन्दर्य तथा आलोचना के सिद्धान्त आ जाएंगे।

पाश्चात्य विचारक मरी के 'स्टाइल' संबंधी उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि शिल्प रचनाकार की रचना में साहित्यिक सौन्दर्य एवं आलोचना संबंधी विचार व्यक्त करता है। अतः मरी के स्टाइल को रचना की गहराई में जाकर समझा जा सकता है, जिसके द्वारा रचना को रूपाकार-प्राप्त होता है।

शापनहावर के मतानुसार- "Style is the physiognomy of the mind"[9] अर्थात् शैली मस्तिष्क की बाह्याकृति है।

पाश्चात्य विचारक शापनहावर के 'स्टाइल' संबंधी उपर्युक्त मत पर दृष्टिपात करने के फलस्वरूप हम कह सकते हैं कि शापनहावर के मत में 'शिल्प' किसी भी रचनाकार के मस्तिष्क में रचना संबंधी उभरे भाव एवं विचारों की बाह्य-अभिव्यक्ति है। रचनाकार भाषा के माध्यम से अपने विचारों एवं संवेदनाओं को मूर्त्त रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अतः 'स्टाइल' ही रचना का मूर्त्तिकरण करती है।

पाश्चात्य विचारक न्यूमैन ने स्टाइल (शैली) को 'भाषा में सोचना' की संज्ञा प्रदान करते हुए कहा है- "Style is thinking out in to language"[10] न्यूमैन की स्टाइल संबंधी अवधारणा उसे एक ऐसी आंतरिक शक्ति के रूप में परिभाषित करती है जो कारयित्री प्रतिभा के मनोमस्तिष्क के प्रकटीकरण में सहायक होती है। किसी भी कृतिकार के भावन एवं चिंतन का सम्यक् साक्षात्कार तब तक नितान्त असंभव है जब तक वह शब्दाकार रूप में हमारे सामने नहीं आता । कृतिकार का भावन एवं चिंतन कला के माध्यम से ही स्थूल रूप ग्रहण करता है। काव्य का कला-माध्यम 'शब्द' ही होता है, अन्य किसी माध्यम से उसे मूर्त्त रूप नहीं दिया जा सकता। अतः न्यूमैन का शैली को भाषा से माध्यम से सोचने की संज्ञा से अभिहित करने का अर्थ यही जान पड़ता है।

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वान वाल्अर पेटर ने बताया है कि रचनाकार के मस्तिष्क में रचना संबंधी उपजे भाव-संवेदन, विचार-व्यापार ही उसे सृजन करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं, इन विचारों तथा भावों में रचनाकार का 'स्व' या 'आत्म' आ जाना स्वाभाविक ही है। इसी मनः स्थित 'आत्म' को वाल्टर पेटर ने रचनाकार की 'शैली' बताया है।

अभी तक हमने विभिन्न पाश्चात्य विचारकों की 'स्टाइल' संबंधी विचारणा पर प्रकाश डाला, अब हम आगे कतिपय भारतीय विचारकों की शैली संबंधी अवधारणा पर भी विचार कर लेना प्रासंगिक समझते हैं।

भारतीय विद्वान भोलानाथ तिवारी के अभिमत में 'शैली' भाषिक अभिव्यक्ति का वह विशिष्ट ढंग है जो प्रयोक्ता के व्यक्तित्त्व तथा विषय से सम्बद्ध होता है तथा जो विचलन, चलन, सुसंयोजन, समानान्तरता एवं अप्रस्तुत विधान आदि सामान्य अभिव्यकित के लिए असुलभ-उपकरणों पर आधृत होता है।"[11]

डा० भोलानाथ तिवारी के दृष्टिकोण में 'शैली' रचना में विषय तथा रचनाकार के व्यक्तित्त्व से संबंध रखती है। तिवारी जी के अनुसार रचना में विषय के अतिरिक्त रचनाकार का व्यक्तित्त्व आना स्वाभाविक ही है। इसी स्वाभाविकता को उन्होंने शैली बताया है।

डा० सत्यदेव चौधरी के शब्दों में- "शैली विज्ञान का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है- काव्य के बाह्य रूप- शब्दार्थ (वाचक शब्द और वाच्य अर्थ के समन्वित रूप) के परीक्षण द्वारा काव्य का समीक्षण प्रस्तुत करना, और इस कार्य के ही आधार पर इस विज्ञान के सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं। इन सिद्धान्तों का स्वरूप - प्रतिपादन शैली - विज्ञान का सिद्धान्त-पक्ष कहलाता है, और निर्णीत सिद्धान्तों को आधार मानकर, अथवा इन सिद्धान्तों की प्रत्यक्षतः आश्रय लिये बिना काव्य के बाह्य रूप के परीक्षण द्वारा इस काव्य की समीक्षा करना शैली-विज्ञान का प्रयोग-पक्ष कहलाता है। इस प्रकार सिद्धान्त-पक्ष और प्रयोग-पक्ष एक दूसरे पर आश्रित रहते हुए पनपते हैं। वस्तुतः यही क्रमिक स्थिति प्रत्येक विज्ञान की होती है' प्रयोग > सिद्धान्त > प्रयोग > सिद्धान्त आदि।"[१२]

डा० सत्यदेव चौधरी के उपर्युक्त मत पर यदि गवेषणात्मक दृष्टि डाली जाये, तो कहना होगा कि जब भी कोई लेखक या रचनाकार किसी कृति के सृजन के लिए उत्प्रेरित होता है तो सर्वप्रथम वह उस कृति से सम्बन्धित ढांचा अपने मस्तिष्क में तैयार करता है, तत्पश्चात् उसके प्रयोग तथा सिद्धान्त का निरीक्षण-परीक्षण करता है और तब उसे कलमबद्ध करता है। इस प्रयोग और सिद्धान्त को ही डा० चौधरी ने शैली विज्ञान का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य माना है तथा बताया है कि यह कार्य काव्य या कृति के बाह्य रूप का ही किया जाता है।

डा० प्रतिभा कृष्णबल के मतानुसार - "काव्य-शिल्प कवि के जागरूक एवं सचेष्ट प्रयत्नों की मूर्त्ति सिद्धि है। इसके अन्तर्गत वे सभी रम्याद्भूत उपकरण आते हैं, जिनका उपयोग कवि अपनी अमूर्त्त भावनाओं से मूर्त्त-विधान तथा अभिव्यंजना के सौन्दर्य एवं शक्ति-संवर्धन के लिए करता है।"[१३]

डा० प्रतिभा कृष्णबल के उपर्युक्त मतानुसार रचनाकार का शिल्प उसकी जागरूकता तथा पूर्णतः प्रयत्नों का परिणाम ठहरता है। इस प्रयत्न में कवि के वे भाव तथा विचार भी आ जाते हैं जो अमूर्त्त रूप में होते हैं। जिन्हें बाद में कवि भाषा द्वारा कलमबद्ध करके रचना में मूर्त्त-रूप दे देता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डा० कृष्णबल ने शैली को अमूर्त्त-भाव का मूर्त्तीकरण के रूप में स्वीकार किया है।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, शिल्प और शैली - दोनों शब्द समानार्थक हैं। शिल्प शैली को केन्द्र में रखकर जब हमें किसी कृति पर विचार करना अभीष्ट होता है तो हम शिल्प/शैली के उपादान तत्त्वों पर विचार करते हैं। शिल्प के ये उपादान तत्त्व हैं- भाषा, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, छंद, मुहावरे, शब्द-शक्ति आदि। अब निराला जी की लम्बी-कविताओं पर इसी दृष्टि से विचार करेंगे।

"चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर
बहार उसके पीछे जैसे भुक्खड़ फालोवर।
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर-
आधुनिक पोयेट (Poet)
पीछे बाँदी बचत की सोचती
केपीटलिस्ट क्वेट।"[१४]

हिन्दी काव्य-भारती के कण्ठ में मुक्त-छंद में सृजित लम्बी-कविताओं का प्रशस्त निर्मल हार पहनाने वाले अमर कवि निराला का यह प्रगतभ आवाहन उनके प्रगतिवादी एवम् क्रान्तिशील, शिल्पी व्यक्तित्व का मोहक परिचय देता है। छायावादी युग में लम्बी-कविताओं का सर्जन, कवि का आत्मविश्वास उसकी क्रान्तिदर्शिता और शब्द सामर्थ्य के साथ काव्य-शिल्प पर अनूठी पकड़, निरालाजी को अन्य कवियों से अलग स्थान प्रदान करती है। निराला की यह वाणी अपनी अभिव्यक्ति के क्षण से ही प्रतिफलित होने स्वच्छन्दता अभिव्यंजना की प्रमुख सर्वातिशायिनी विधा बन गयी। एक दशक बाद स्वयं कवि ने आत्म सन्तोष प्रकट करते हुए लिखा 'उद्भान्त काव्य-देवी के उर में किसी ने लम्बी कविताओं की मुक्ति माला पहना दी है।'[१५]

निरालाजी की अधिकांश लम्बी-कविताएँ स्वच्छन्द-छन्द या मुक्त छन्द में लिखी गई हैं। यद्यपि उनके समसामयिक कवियों ने उसके विकास में कम योग नहीं दिया। इस नवीन छान्दसिक क्रान्ति का उस समय डटकर विरोध हुआ था और इस संघर्ष में सबसे अधिक सहना और जूझना इस आलोच्य कवि को ही पड़ा। निराला जी की 'जूही की कली' जो आगे चलकर स्वच्छन्द काव्यधारा का सशक्त सोपान बनीं, पहले पहल इस युग की प्रमुख पत्रिका 'सरस्वती' में छपने से लौटा दी गयी थी।

'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति' और 'कुकुरमुत्ता' मुक्त छन्द में लिखी गई प्रमुख लम्बी कविताएँ हैं। 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' का सृजन जहाँ भावात्मक और सांस्कृतिक धरातल पर हुआ है, वहीं 'कुकुरमुत्ता' में यथार्थ और व्यंग्य की भूमिका प्रधान है। अनुभूति की विशिष्टता और विभिन्नता की छाप भी इन रचनाओं की शैली में देखी जा सकती है।

प्रगीत निराला जी की सर्वप्रिय और सर्वातिशामिनी विधा है। यह कहना भी कठिन ही होगा कि उनकी लम्बी कविताओं में मुक्त छंद को प्राथमिकता मिली है अथवा प्रगीत बन्ध को। उनके मुक्त छंद में प्रायः ही प्रगीत तत्त्व अंतः प्रतिष्ठित होता है और इसी प्रकार प्रगीतों में स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव के स्वर में स्वर मिलाकर हम कह सकते हैं कि "मुक्त छन्द कवि की साधना है और प्रगीत उसकी सिद्धि।"[१६] प्रगीत निराला का मूल स्वर है, जो उनकी प्रतिभा का निसर्गजात परिणाम है। कहना न होगा कि इसी ने उनकी मुक्ति-साधना को सम्बल प्रदान किया है। मुक्त छन्द ही नहीं छन्दबद्ध लम्बी आख्यानक कविताओं में भी इसका उच्छलन देखा जा सकता है। 'राम की शक्ति पूजा' के पौराणिक आख्यानपरक सन्दर्भ में राम की यह मार्मिक उक्ति प्रगीत-गुण की सृष्टि कर देती है-

"धिक जीवन जो पाता ही आया विरोध,
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध,
जानकी! आह, उद्धार, दुःख, जो न हो सका।
वह एक और मन रहा राम का जो न थका।"[१७]

'तुलसीदास' की विरहातुरता में भी यह गीति क्षण सुरक्षित है-

"वह आज हो गई दूर तान,
इसलिए मधुर वह और गान
सुनने को व्याकुल हुए प्राण प्रियतम के।"[१८]

और 'सरोज स्मृति' की ये पंक्तियाँ तो पूरे काव्य परिवेश को ही बदल देने वाली हैं-

"दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं।"[१९]

लम्बी आख्यानक एवं वर्णनात्मक कविताओं की ये पंक्तियाँ हमें सहसा ही कवि के निगूढ़ मर्म में स्थानान्तरित कर देती हैं। निराला जी के प्रगीत आत्मपरक भी हैं और वस्तुपरक भी।

'कुकुरमुत्ता' निराला जी की प्रमुखतः व्यंग्य-प्रधान लम्बी कविता है। शिल्प अथवा विधा के रूप में व्यंग्य का तात्पर्य भाषा की व्यंजना शक्ति से प्रतीयमान अर्थों में नहीं लिया जाता। व्यंग्य रचना वह विधा है जो यथार्थ के बाहरी चेहरे के अन्दर छिपे असली चेहरे को उघाड़ देती है। व्यंग्य जीवन के अन्तर्विरोध को पूरी चोट के साथ प्रकट करता है। विधा के इस रूप में जीवन के contrast को पकड़ा जाता है तथा कहीं उस पर करारी चोट की जाती है तो कहीं आवरण का मखौल उड़ाया जाता है।

निराला की लम्बी कविता 'कुकुरमुत्ता और 'सरोज स्मृति' में उनकी व्यंग्य-दृष्टि जीवन के यथार्थ का अनावरण करके बहुत ही कारगर विधा बनकर प्रयुक्त हुई है।

निराला जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को भली भाँति देख चुके थे। अनुभूतियों की कटुता के कारण उनके व्यंग्य प्रयोग में भी कटुता आ गई। 'कुकुरमुत्ता' सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है और 'गुलाब' पूँजीपति वर्ग का। निराला ने शोषक पूँजीपति वर्ग की 'कुकुरमुत्ता' द्वारा भर्त्सना कराई है-

"अबे सुन वे गुलाब
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,

डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।''[२०]

'सरोज स्मृति' में कवि की शैली में अधिक निखार दिखाई देता है। यहाँ वह धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों पर निर्मम प्रहार करता है। रूढ़िवादी कान्यकुब्ज ब्राह्मणों पर तीखा व्यंग्य करते हुए कवि कहता है-

''ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय बेल में विष ही फल,
यह दग्ध मरूस्थल- नहीं सुजल।''[२१]

विलापिका निराला ने एक ही लिखी है 'सरोज स्मृति', किन्तु यह अकेली रचना ही एक नव्य काव्य वर्ग की अवतारणा करने में पूर्ण सक्षम है। यह रचना पुत्री सरोज के देहावसान होने पर सन १९३५ में लिखी गई थी। प्रसाद जी का 'आँसू' इससे पहले ही अपने वर्तमान रूप में सामने आ चुका था किन्तु उसे विलापिका/शोकगीत कहने में कई बाधाएँ हैं। प्रियजन के अभाव की तत्कालिक अनुभूति और भावों का निविड़ उच्छ्वास वहाँ निस्सन्देह है किन्तु उसका प्रगीतात्मक उच्छलन, भावों का आरोहावरोह, द्विविधापूर्ण मनोभाव उसे शोक गीत की भूमिका न देकर विप्रलम्भ काव्य ही प्रमाणित करता है। वैसे 'शोकगीत' या विलापिका नामकरण वस्तुविषय के आधार पर हुआ है और उसमें प्रगीतात्मक भावोच्छलन का होना असंगत नहीं हैं, तथापि दोनों की भूमिका अलग-अलग हैं। प्रगीत विशुद्ध मुक्तकवर्गीय है, जबकि विलापिका मुक्तक काव्य होते हुए भी प्रबन्धत्व गर्भित होती है। शोकगीत में करूण रस की धारा अव्याहृत रूप से बहनी चाहिए जबकि प्रगीत धारा प्रवाही न होकर बिन्दुतोषी होता है। निराला की विलापिका हिन्दी में अपने ढंग की पहली और अनूठी रचना है। विषयवस्तु नितान्त वैयक्तिक है और इसी कारण उसकी करूणा हमें मर्माहत कर देती है। इसमें कवि अपनी नितान्त व्यक्तिगत परिवेश में भी अपनी वस्तुपरक, तटस्थता का निर्वाह कर सका है और यही कारण है कि रचना मात्र शोकोद्गार न होकर एक अच्छी कलाकृति, परिनिष्ठित सर्जना के रूप में समादृत होती है।

निराला जी की लम्बी कविताएँ प्रायः आख्यानप्रधान हैं। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'कुकुरमुत्ता' को हम विचार प्रधान लम्बी कविता और 'सरोज स्मृति' को घटना प्रधान लम्बी कविता कह सकते हैं। मेरे विचार से लम्बी कविता उसी को कहना चाहिए जिसमें किसी स्तर का प्रबन्धत्व हो। इसमें क्रमिकता एवम् पूर्वापरता का होना अपेक्षित है। निराला जी की ये लम्बी कविताएँ मुक्त छंद में लिखी गई हैं और छंदबद्ध भी हैं। जहाँ भावावेश एवम् कथन का उतावलापन है वहाँ कवि ने छन्द-मुक्ति का सहारा लिया है और जहाँ मानसिक धैर्य, तटस्थता तथा वर्णनवृत्ति प्रधान है, वहाँ वह छंदबद्ध रचना करता है। इन सभी लम्बी कविताओं में तीन शीर्षस्थ हैं- 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' एवम् 'सरोज स्मृति'। 'राम की शक्ति पूजा' में वीर रस, 'तुलसीदास' में शान्त रस और 'सरोज स्मृति' में करूण रस प्रधान है। कविता के अंश में कवि जिस भाव, विचार अथवा प्रसंग को लेता है, उसे वह क्रमशः अनुभूति के चरम स्तर तक पहुँचाता चलता है और जहाँ चरम बिन्दु आ जाता है, वह लेखनी रोक लेता है। यह कला 'राम की शक्ति पूजा' एवम् 'सरोज स्मृति' दोनों कविताओं में विशेष परिस्फुटित हुई है। यह खण्ड विराम सर्ग विभाजन से कम स्पृहणीय नहीं है। सच तो यह है कि निराला की लम्बी कविताओं में इस प्रकार के खण्ड विराम शास्त्रीय सर्ग के स्थूल विराम बोधों से कहीं अधिक रमणीय एवं भाव गर्भित बन पड़े हैं। इन खण्ड विरामों से कविता के नैरन्तर्य में कोई क्षति नहीं पहुँचती वरन् उससे कविता में और अधिक ताजगी एवं रोचकता का संचार हुआ है। लम्बी कविताएँ हिन्दी के अनेक कवियों ने लिखी हैं लेकिन यह महाकाव्योचित गरिमा निराला के समान कोई नहीं उत्पन्न कर सका।

निराला की लम्बी कविताएँः प्रतीकात्मकता

किसी अगोचर अदृश्य पदार्थ-विषय, क्रिया, गुण, भाव-प्रभाव आदि का किसी समानता के कारण बोध कराने वाला गोचर या दृश्य पदार्थ प्रतीक कहलाता है। व्यक्त के माध्यम से अव्यक्त का संकेत प्रतीक-योजना का मूलाधार है। 'प्रतीकों' का लक्ष्य भावात्मक संवेदना

की तीव्रता है। काव्य का प्रतीक भाव के चित्रों का पुनरूत्सर्जन करते हैं और इस भाव के प्रेषण में सहायता करते हैं।"[२२]

प्रतीकवाद का आरम्भ फ्रांस में हुआ। "एक आन्दोलन के रूप में इसके उदय की घोषणा १८७६ ई० में हुई और इसका प्रतिष्ठाता मुख्यरूप से मलार्मे था।" प्रतीकवादियों के अनुसार प्रतीकों के द्वारा संवेदनों की सूक्ष्म भंगिमाओं को व्यक्त कर देना ही कविता है। भारत में 'प्रतीकवाद' नाम से कोई स्वतन्त्र काव्यधारा तो नहीं चली पर प्रतीकों का प्रयोग हिन्दी काव्य में सिद्धों और निर्गुण सन्तों के काल से ही होता आ रहा है।

निराला जी छायावाद के प्रवर्तकों में हैं- छायावादी शिल्प की एक विशेषता प्रतीकात्मकता भी है। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, प्रतीक अभिव्यंजना का एक अत्यंत समर्थ माध्यम है। जैसे बीज में वृक्ष का आकार-मूल, तना, शाखाएँ, डालियाँ, फल-फूल, पत्ते समाये रहते हैं वैसे ही प्रतीक में वर्ण्य विषय का सम्पूर्ण रूप निहित होता है। प्रतीक विशालतम को सूक्ष्मतम में प्रस्तुत करने का साधन है। इसके दृश्य ही प्रतीक द्वारा सांकेतिक ढंग से व्यंजना के द्वारा वह सब कुछ कह दिया जाता है जो अभिधात्मक या यथार्थ रूप में नहीं कहा जा सकता।

वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर किसी नाद या स्वर का प्रतीक है, तब सारी भाषा ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्त अमूर्तता को प्रतीकों द्वारा ही मूर्त किया जाता है। मूर्तिपूजा का तो सारा विधान ही प्रतीकवादी है- विभिन्न मूर्तियाँ प्राकृतिक शक्तियों या देवताओं की प्रतीक हैं। धर्म, दर्शन, काव्य, कला, राजनीति, राष्ट्र, समाज सभी क्षेत्रों में प्रतीक अभिव्यंजना का एक समर्थ साधन है। प्रत्येक राष्ट्र का झण्डा उसके चरित्र और आदर्श का प्रतीक होता है।

निराला के काव्य में प्रतीक की नानाविध सृष्टि मिलती है। संध्या, यामिनी, प्रपात, धारा, भूधर, सुरभि, बसन्त, वर्षा, बादल आदि ऐसे प्राकृतिक प्रतीक हैं जो निराला को बहुत प्रिय हैं। कहीं-कहीं सांस्कृतिक एवम् आध्यात्मिक प्रतीक भी दिखाई देते हैं। नाद, कण, माया आदि दार्शनिक प्रतीक हैं। व्यंग्य प्रतीकों में 'कुकुरमुत्ता' सर्वोपरि है। निराला किसी रचना के प्रारम्भ करने से पूर्व उसके ढाँचे और प्रतीक विधान अपने मन में निश्चित

कर लेते हैं। डा० रामकुमार गुप्त ने अपने शोधः 'निराला साहित्य- एक नया आयाम' में 'कुकुरमुत्ता' की प्रतीक परिकल्पना इस प्रकार की हैः-

नव्वाब	=	ईश्वर तत्त्व
बाग	=	इदम् या विश्व
गुलाब	=	माया
बहार	=	अविद्या शक्ति
मालिन	=	मालिनी शक्ति
गोली	=	विद्या शक्ति
कुकुरमुत्ता	=	(i) अकुल भूमिका में स्वयं भू-तत्त्व
		(ii) कुल भूमिका में शुद्ध 'इदम् या ऐश्वर्य।

दूसरी तरफ अध्यात्म से हटकर हम पाते हैं कि गुलाब शोषक (पूँजीपति वर्ग) और 'कुकुरमुत्ता' सर्वहारा (शोषित वर्ग) का प्रतीक है तभी निराला जी प्रतीकात्मक भाषा में कहते हैं:-

"अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो-आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट।"[२३]

'तुलसीदास' का प्रतीक-विधान भावाभिव्यंजना में अधिक चमत्कारिक है। इसका प्रारम्भ और अंत प्रतीक में ही होता है:-

"भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे- तमस्तूर्यदिग्मंडल।"[२४]

यहाँ ठीक प्रतीक अर्थ में यह भारतीय सांस्कृतिक सूर्य के पनि और उत्थान के लिए वर्णित आख्यामिका है। प्रतीकों का सर्वाधिक विकसित रूप 'रत्नावली' और 'तुलसीदास' के व्यक्तित्त्व में मिलता है, जो सम्पूर्ण रूप से प्रतीक बन गए हैं। 'तुलसीदास' में निराला जी

'रत्नावली' को मानवीय पात्रता से ऊपर उठाकर प्रतिभा एवम् ज्योति का प्रतीकार्य बना देते हैं:-

"देखा, शारदा नील वसना,
है सम्मुख स्वयं सृष्टि-रशना,
जीवन-समीर-शुचि निःश्वसना, वरदात्री,
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर,
फूटी तर अमृताक्षर-निर्झर,
यह विश्व हंस, है चरण सुधर जिस पर भी।"[२५]

यह उद्धरण सादृश्यमूलक प्रतीक का उदाहरण माना जा सकता है। क्योंकि देवी शारदा सदैव से शुचिता एंव ज्ञान की प्रतीक रही हैं उस रूप में रत्नावली को प्रतिस्थापित करना एक विराट् प्रतीक है।

निराला ने अपनी विराट-चेतना के कारण विराट प्रतीकों के कुशल संयोजन में सिद्धहस्तता प्राप्त की है। एक अन्य विराट प्रतीक-योजना रूपक देखिए:-

"जागो-जागो आया प्रभात,
बीती वह बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल
बाँधो-बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।"[२६]

प्रभात, अंधरात, ज्योतिर्मय प्रपात, पूर्वाचल, किरणें, चेतन ये सभी प्रतीक हैं। प्रभात से नवीन आशा, उल्लास, ज्ञान-कर्म-सौन्दर्य, उत्साह से पूर्ण जीवन का बोध होता है। अंधरात से घोर निराशा, जड़ता, अज्ञान, कर्महीनता, दुखदैन्य, परवशता, पलायन आदि के काल या जीवन का बोध होता है। पूर्वाचल भारत या भारतीय जीवन का बोधक है और ज्योतिर्मय प्रपात तुलसीदास के हृदय में उमड़ते हुए अतिशय ज्ञान का बोधक है। किरणें चेतन का अर्थ है नवबोध। सब मिलाकर तुलसीदास की मानसिक स्थिति का अत्यन्त

सक्रिय और उज्ज्वल बिम्ब प्रतीकों के द्वारा सामने आ जाता है। 'जागो जागो', 'बीती वह बीती', बाँधों बाँधों, में जैसे भारत का रोम-रोम उन्माद से वाचाल हो उठा है। सम्पूर्ण पद प्रतीकों के द्वारा ज्ञान, शक्ति, सामर्थ्य, गौरव, गरिमा को सूचित करता है।

'तुलसीदास' में और भी अनेक सुन्दर प्रतीकात्मक प्रयोग दृष्टव्य हैं:-

"देशकाल के शर से बिंधकर
यह जागा कवि अशेष छविधर।"[२७]

× × × × ×

"गाओ विहंग सदध्वनित गान
त्यागोज्जीवित, वह ऊर्ध्वध्यान धारास्तव।"[२८]

× × × × ×

"वह उस शाखा का वनविहंग
उड़ गया छोड़, नभ निस्तरंग।"[२९]

× × × × ×

"उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।"[३०]

शर यहाँ किरण का प्रतीक है। जैसे व्यक्ति तीर चुभने या किरणों के पड़ने से जाग पड़ता है, वैसे ही तुलसीदास भी देश और समय का शर चुभने से जाग गये। यहाँ शर का अर्थ होगा - देश-काल की आवश्यकता, माँग, अभाव, दीनहीन, विवश अवस्था - जिसे देखकर तुलसीदास का हृदय आहत हो गया। शर और तात्कालिक अवस्था में प्रभाव कार्य या परिणाम का साम्य है। उड़ान या गतिक्षिप्रता के साम्य के कारण विहंग तुलसीदास के मन का बोधक है। नभ का प्रतीकात्मक रूप है विचारों या चिन्तन की ऊँचाई। चतुर्थ अवतरण में 'शिरस्त्राण' अर्थात जिसे सैनिक पहनते हैं। शिरस्त्राण मुसलमानी अत्याचारी

शासन की अभिव्यक्ति करता है। जल से यहाँ जीवन को संबोधन दिया गया है। 'तुलसीदास' लम्बी कविता का कथानक प्रबंध-वक्रता के कारण प्रतीकात्मक बन पड़ा है।

निराला जी ने लम्बी कविताओं में अपनी चेतना के व्यापक फलक के कारण विराट प्रतीकों के संयोजन में महारत हासिल की है:-

"है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल"[३१]

'अमानिशा', 'गगन', 'विशाल', 'अंबुधि', 'भूधर', आदि महानाश के विराट प्रतीकों के माध्यम से राम के अंतर्मन के घनीभूत नैराश्य की निविड़ता को अनुभूतिगम्य बनाया गया है। अमानिशा तथा गगन इन दो प्रतीकों के माध्यम से राम की नैराश्य स्थिति की उद्‌भावना की गई है। मन में उठ रहा उद्वेग का प्रतीक अंबुधि की गर्जना को बनाया गया है तथा भूधर निराशा-जन्य जड़ता का प्रतीकात्मक प्रतिरूप है।

"उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार,
हो श्वसित-पवन उनचास, पितापक्ष से तुमुल
एकत्र वृक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़।"[३२]

इन पंक्तियों में उनचास, पवन, वाष्प, शत घूर्णावर्त, तरंग भंग उठते पहाड़ आदि हनुमान की भीषण मानसिक विक्षोभ एवम् भावोद्वेलन के अत्यंत समर्थ, प्रलयकालीन दृश्य से संबद्ध, ध्वंसमूलक विराट प्रतीक हैं। यद्यपि प्रसाद जी की 'कामायनी' के चिंता सर्ग तथा पंत की परिवर्तन शीर्षक कविता में भी इसी प्रकार के साधर्म्यमूलक विराट प्रतीक नियोजित हैं, तथापि इस प्रकार के विध्वंस के विराट प्रतीकों के अदभुत संयोजन में निराला की प्रतिभा का प्रतिमान मिलना कठिन है।

एक दूसरे स्थल पर निराला जी ने शक्ति के स्वरूप की विराट कल्पना साहित्य में अदभुत ढंग से की है। विवेकानंद की कल्पना को कवि निराला ने काव्यभाषा प्रदान की है

जो विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है। प्रतीकों के माध्यम से कवि की यह कल्पना अनूठी है:-

"देखो, बंधुवर, सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित-शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामलसुन्दर,
पार्वती कल्पना है इसकी मकरंद-बिंदु
गरजता-चरण-प्रांत पर सिंह वह नहीं सिंधु।"[३३]

पर्वत के रूप में शक्ति की कल्पना की गयी है और उसके चरणों पर गरजता हुआ समुद्र सिंह-गर्जन का प्रतीक है। दसों दिशाएँ सिंहवाहिनी शक्ति के दस हाथ हैं। शक्ति के इतने विराट प्रतीक का अंकन निराला द्वारा ही संभव हो सका है। प्रतीकों का लक्ष्य भी उन्हीं भावों की व्यंजना करता है जिन्हें साधारणतया व्यक्त नहीं किया जा सकता। निराला के प्रतीकों की सबसे बड़ी विशेषता यही है।

डॉ० कृष्णदेव झारी के अनुसार निराला की लम्बी-कविताओं अथवा समूचे काव्य में विशुद्ध प्रतीकों की योजना अतिस्वरूप है। उदाहरण के लिए "कण दलित वर्ग का, बादल क्रान्ति का और कुकुरमुत्ता निम्न वर्ग का प्रतीक है। किन्तु दोहरे अर्थ की इस व्यंजना को शुद्ध प्रतीक नहीं कहा जा सकता। ऐसी कविताएँ अन्योक्ति या समासोक्ति पद्धति की ही मानी जा सकती हैं।"[३४]

हमारा विचार है कि निराला के कुछ विवादस्पद प्रतीकों को छोड़कर सर्वसम्मत प्रतीकों की दृष्टि से यदि विचार करें तो लम्बी-कविताओं में उनकी प्रतीक-विधान की कला उच्चकोटि की प्रतीत होती है। वस्तुतः प्रतीकशिल्पी के रूप में निराला पूर्ण सफल रहे हैं।

निराला की लम्बी कविताएँः स्वच्छन्दतावाद

'स्वच्छन्दतावाद' प्राचीन के त्याग और नवीन की खोज की एक साहसिक यात्रा है। स्टाडर्ड के शब्दों में -"अपनी योग्यता अभिव्यक्ति में स्वच्छन्दतावाद नव्य नियम, नये सत्य, नूतन समन्वय और नवीन कलाभिव्यक्ति की खोज में, प्राचीन नियम, सत्य, समन्वय और कलाभिव्यक्ति का निषेध है।"[३५] इसके सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में स्वच्छन्दातावादी कर्तृत्व

एक अज्ञात ईश्वर का विकल्प है। के०के० शर्मा ने 'एक' और 'अनेक' के अन्तर के संबंध में स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का विवेचन करते हुए कहा है-''व्यक्ति 'अनेक' से सन्तुलन नहीं स्थापित करता, वह पूर्णतः 'अनेक' का अतिक्रमण करता है, अथवा यदि उसका वश चले तो वह 'अनेक' को समाप्त कर देगा। स्वयं का अनुभव करते हुए व्यक्ति द्वारा सांसारिक मनुष्य निगल कर पचा लिया जाता है। जीवन वही सच्चा और ऊँचा है, जिसकी प्रतिमा अति गम्भीरता और विशालता से कल्पित है। चिन्तन की यही दिशा स्वच्छन्दतावाद है।''[३६] डॉ० एफ०एच० हेज ने स्वच्छन्दतावाद को ईसाई धर्म की गहरी रहस्यात्मक दृष्टि से ही उत्पन्न माना है-''अनुभूत संसार के बाहर और पीछे कुछ संकेतित करते हुए जीवन को अथाह गहराई प्रदान करने वाले ईसाई धर्म का प्रभाव, ही स्वच्छन्दतावाद का जनक है।''[३७] सम्पूर्ण स्वच्छन्दतावादी धारा के विकास को देखते हुए उसे दो मुख्य रूपों में व्यवस्थित किया जा सकता है:-

इसकी प्रथम धारा के कवियों में वास्तविकता से पलायन और फैण्टास्टिक जगत में मनोनुकूलता की प्राप्ति पायी जाती है और द्वितीय धारा के कवियों में सम्पूर्ण वर्तमान की विद्रूपताओं के प्रति विरलव तथा स्वर्णिम भविष्य के आगमन की आकांक्षा निहित है। भावुकता, स्वानुभूतिमयता, कल्पना, आध्यात्मिकता, विश्लेषणात्मकता, संवेगात्मकता, दुःसाहसिकता, विद्रोह, सौन्दर्यानुभूति, काल्पनिक मानवतावाद और अन्त में यथार्थवाद के प्रति ललक सम्पूर्ण स्वच्छन्दतावाद की समन्वित चिन्ताधारा है।

आंग्ल-स्वच्छन्दतावाद पारम्परिकता की नीरसता की प्रतिक्रिया कहा जाता है। एक सबल संस्कृति पर दूसरी उच्चतर संस्कृति की रीति-नीति ही अपना प्रभाव स्थापित कर सकती है। अनियन्त्रित चिन्तन-परम्परा में रूसो का नाम अग्रगण्य है, उसके अराजकतावाद और प्रकृतिवाद का प्रभाव स्वच्छन्दतावादी कवियों पर स्पष्ट परिलक्षित है-''स्वच्छन्दतावादी चिन्तन के स्रोतों में रूसो का क्रान्तिकारी प्रकृतिवाद एक था।''[३८] जर्मन दार्शनिक काण्ट से लेकर हैगेल तक के विचारों का प्रभाव भी इस काव्यधारा पर था। ''स्वच्छन्दतावादी चिन्तन का दूसरा स्रोत काण्ट से लेकर हैगेल तक का जर्मन आध्यात्मिक

आन्दोलन था।''[३६] स्वच्छन्दतावाद की प्रेरक शक्तियों में १७८६ ई० की फ्रांसीसी क्रान्ति और विज्ञान सम्मत औद्योगिक क्रान्ति का भी कम महत्त्व नहीं है।

हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि श्रीधर पाठक को और उसी परम्परा में मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, बच्चन, दिनकर, गुरूभक्त सिंह, निराला, तथा उदयशंकर भट्ट को मानते हैं।

स्वच्छन्दतावाद को व्याख्यायित करते हुए डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने सपाटबयानी के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की बात का समर्थन करते हुए कहा है:-''युद्धोत्तर काल में हिन्दी के कवियों ने यूरोपीय साहित्य का अध्ययन किया और केवल रोमाण्टिक काल के वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, कीट्स, बायरन आदि से ही नहीं, बाद के अंग्रेजी कवियों जैसे स्विनबर्न, ब्राउनिंग, आरनोल्ड, टामस हार्डी, वाल्ट व्हिटमैन, यीट्स आदि से भी प्रभाव ग्रहण किया पर इनसे भी अधिक और सीधा प्रभाव रविन्द्रनाथ ठाकुर की कविता का पड़ा।''[४०] इग्लैण्ड में स्वच्छन्दतावाद का आन्दोलन सन् १७५०-१८२५ ई० माना जाता है और भारत में इसका आगमन सन् १९१३ ई० के बाद हुआ।

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवि न तो कभी विदेशी अनुकरण में रहे और न वे अभारतीय ही थे। वे सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति की खोज कर रहे थे। नयी भाषा और सशक्त शिल्प विधि के साथ यह और बात है कि अपने युग की आकांक्षाओं से अपरिचित समालोचक उनकी ऊष्मा को न पहचान सके। निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर या गुरूभक्त सिंह स्वच्छन्दतावादी शिविर के कवि नहीं थे, अपितु नव्य शिल्प और वस्तुगत आकुलता के साथ उद्दाम वेग से प्रकट होने वाले, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी और उसी धारा के उनके अन्य सहकर्मी कवि ही हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद को जन्म देकर उसकी अन्तिम परिणिति तक यात्रा करने वाले सही स्वच्छन्दतावादी कवि थे।

असीम सम्भावनाओं और नवीन मानव मूल्यों की सर्वाधिक प्रतिष्ठा यदि किसी छायावादी कवि में हुई है तो ऐसे कवि केवल सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हैं। उनके काव्य

से उनका स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। वे काव्य में जैसे स्वच्छन्द हैं वैसे जीवन में भी, उनका द्विविध व्यक्तित्व नहीं रहा। 'निराला' में पी०बी० शैली की क्रान्तिकारिता और 'कीट्स' की अतल गहराई का दर्शन एक साथ किया जा सकता है। इससे यह अर्थ न लिया जाय कि उनकी कविताएँ अनुकृति का प्रतिफलन हैं, बल्कि इसके विपरीत उनका समस्त परिवेश भारतीय है और समस्त आदर्श भारतीय संस्कृति के हैं। डॉ० कृष्णदेव झारी के अनुसार ''निराला पर अंग्रेजी रोमाण्टिक काव्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। भाव पक्ष, विषयवस्तु, विचारधारा तथा कलापक्ष आदि सभी क्षेत्रों में यह प्रभाव लक्षित होता है। यह सब होते हुए भी निराला का काव्य भारतीय दर्शन, संस्कृति एवम् भारतीय भाषा साहित्य-परम्परा का द्योतक होने से शत-प्रतिशत भारतीय काव्य है, अंग्रेजी काव्य नहीं। उनकी रचनाएँ कवि की मौलिक कृति हैं, अनुकृति नहीं।''[४१] आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने निराला की मौलिक विचारधारा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है:-''स्वच्छन्दतावाद का जो अबाध रूप उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है उसकी तुलना इस युग के किसी दूसरे कवि से नहीं की जा सकती।''[४२]

निराला विराट प्रतिभा के मौलिक कवि हैं। उनकी लम्बी कविताओं में उनकी स्वच्छन्द विचारधारा पूर्णतः परिलक्षित होती है। निराला जी की लम्बी कविताओं को देखते हुए विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अपनी अग्रगामी प्रगतिशील चेतना के कारण उन्हें पग-पग पर विरोधों का सामना करना पड़ा था, जिसके कारण उनमें खिन्नता, आक्रोश और अवसाद की छाया आ गयी है, किन्तु जीवन से भागकर वे जीव के पीछे कभी नहीं दौड़े। पराजय और पलायन के चिन्ह निराला में नहीं हैं, इसका कारण पहले अपने ऊपर अखण्ड विश्वास, फिर जनता की शक्तियों पर अटूट आस्था ही है। परिस्थितियों से घबराकर भागो नहीं उनका डटकर मुकाबला करो, निराला की लम्बी कविताओं में यह भाव सर्वत्र व्याप्त है। तभी 'राम की शक्ति पूजा' में निराला उन्मुक्त भाव से कहते हैं:-

''हे पुरूष-सिंह तुम भी वह शक्ति करो धारण
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त,

तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त।''[४३]

'सरोज स्मृति' में कवि ने स्वच्छन्द विचारों के साथ अपने भावों को सुन्दर ढंग से अभिव्यंजित किया है। आर्थिक विपन्नता और अस्थिरता के कारण उन्हें असंख्य मर्मान्तक चोटें सहनी पड़ी किन्तु वे संसार से जूझते रहे। इस कारण से कहा जा सकता है कि उनका काव्य कहीं-कहीं अत्यन्त विषादमय हो गया है, जिसे सच्ची स्वानुभूतिमयता कहा जा सकता है:-

''मुझ भाग्यहीन की तू संबल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल,
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।''[४४]

एक अन्य जगह 'सरोज स्मृति' में ही स्वच्छन्दता के सुन्दर चित्रण चित्रित सा जान पड़ता है:-

''हो गया ब्याह आत्मीय स्वजन
कोई थे नहीं न आमन्त्रण
था भेजा गया, विवाह राग
भर रहा न धर निशि-दिवस जाग,
प्रिय मौन एक संगीत भरा
नव जीवन के स्वर पर उतरा,
.....
मामा-मामी का रहा प्यार,
भर जल्द धरा को ज्यों, अपार
वे ही सुख-दुख में रहे न्यस्त,
तेरे हित सदा समस्त व्यस्त,
वह लता वहीं की, जहाँ कली
तू खिली, स्नेह से हिली, पली।''[४५]

निराला जी ने अपनी लम्बी कविताओं में प्रकृति को स्वच्छन्दतावादी दृष्टि के अनुकूल प्रतिमा के रूप में चित्रित कर उसके कोमल और उग्र दोनों ही रूपों का वर्णन किया है। आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, अंलकृति और ऋतु-पूजा के चित्र उनकी कला के अद्वितीय निदर्शन हैं। चित्रकूट में भ्रमण करते हुए तुलसीदास की सुप्त चेतना को स्फुरित करती हुई प्रकृति की यह सजीव प्रतिमा कितनी मोहक है:-

"तरू-तरू, वीरूध-वीरूध, तृण-तृण
जाने क्या हंसते मसृण-मसृण,
जैसे प्राणों से हुए उऋण, कुछ लखकर,
भर लेने को उर में अथाह,
बाहों में फैलाया उछाह,
गिनते थे दिन जब सफल-चाह पल रखकर।
कहता प्रति जड़, 'जंगम जीवन'।
भूले थे जब तक बन्धु प्रमन?
यह हताश्वास मन-भार श्वास भर बहता
तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि।
देखो यह धूलि-धूसरित छवि,
छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता।"[४६]

एक बात स्मरणीय है, वह यह कि निराला का प्रकृति वर्णन मात्र वर्णन के लिए न होकर विराट प्रकृति की विधायिनी शक्ति का उद्‌घाटन करने वाला होता है। इसमें उनकी स्वानुभूति और उसका स्वच्छन्द दिगन्तव्यापी प्रसार उसकी दूसरी विशेषता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्वानुभूतिमयता एक विशिष्ट गुण है। यह स्वानुभूति अधिकतर वैयक्तिक सुख-दुख की शोभा में घिरकर निहायत कल्पना के सुनहरे पंखों पर उड़ान भरती है किन्तु निराला की लम्बी-कविताओं में ऐसे चित्र कम ही हैं। उनकी निजी अनुभूति विशाल मानवता के सुख-दुख की अनुभूति सी लगती है। बिना बुलाये तुलसीदास जब पत्नी रत्नावली से मिलने चल देते हैं। जीवन में शास्त्रादि की ऊँची शिक्षा पाकर भी नारी

के चरणों पर जीवन निछावर करने के लिए तुलसीदास का पत्नी से मिलने आना, शिक्षा का आद्योपान्त तिरस्कार सा जान पड़ता है। यहाँ कवि रत्नावली के द्वारा उन्मुक्त हो स्वच्छन्द भाव से कहते हैं:-

'धिक! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़-चाम।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।'[४७]

'राम की शक्ति पूजा' की अंतिम पंक्तियों में राम ने दुर्गा पर चढ़ाने के लिए अपना दाहिना नेत्र निकालने का दृढ़ संकल्प कर लिया तो देवी दुर्गा तुरन्त प्रकट होकर राम से कहने लगीं ओर आशीर्वाद दिया 'हे नवीन आत्मविश्वास से सम्पन्न पुरूषोत्तम! तुम्हारी जय होगी, जय होगी।' यह कहकर वह महाशक्ति राम के मुख में प्रविष्ट हो गई। यहाँ पर स्वयं निराला आत्मविश्वास से ओतप्रोत हैं देवी के माध्यम से स्वच्छन्द भावाभिव्यक्ति कर उठते हैं:-

"होगी जय, होगी जय, हे पुरूषोत्तम नवीन,
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।"[४८]

निराला अपने कवि-कर्म में ईमानदार, स्वच्छन्द और भारतीय संस्कृति के अमर गायक रहे हैं। डॉ० भागीरथ मिश्र के अनुसार - "निराला ने लिखने के लिए नहीं लिखा जो भी लिखा है वह स्वानुभूत है। निराला के काव्य में तीन बातें अनुसरणीय हैं। कवि की ईमानदारी, स्वच्छन्दता और भारतीय संस्कृति का आधार। अपनी दूसरी बात के कारण वे अनेक प्रयोगशील कवियों से भिन्न हैं। निराला की तीन विशेषताएँ तीन अक्षरों की तीन धाराओं की त्रिवेणी है, जो निराला को काव्यतीर्थ बना डालती है। अतः उनका महत्त्व अक्षुण्ण है।"[४९] निरालाजी की लम्बी कविताएँ कवि की मौलिक कृति हैं, अनुकृति नहीं।

स्वच्छन्दतावाद का जो अबाध रूप उनकी लम्बी कविताओं में दिखाई पड़ता है उसकी तुलना इस युग के किसी दूसरे कवि से नहीं की जा सकती।

निराला की लम्बी कविताएँः अंलकार विधान

काव्य में सौन्दर्य सर्जना करने वाले प्रसाधनों में अलंकार ही सर्वोपरि हैं। निरालाजी की लम्बी-कविताओं में आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ भाव-संवेदना को प्रमुखता है, केवल भाषागत चमत्कृति ही नहीं। छायावादी-कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि कल्पना शक्ति द्वारा परिपुष्ट हुई है। अतः उनके काव्य में अलंकरण की बाह्य प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। निरालाजी की संवेदनशीलता ने सौन्दर्य-दृष्टि को परिपुष्ट किया है। अतः उनकी कविता में अलंकारों का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग देखा जा सकता है।

अलंकारों के बिना कविता-कामिनी का रूप विन्यास रसिकों के चित्त को लुभा ही नहीं सकता। वामन ने तो स्पष्ट घोषणा ही कर दी-'काव्यं ग्राह्यामलकारात'[५०] अर्थात काव्य का ग्रहण ही अलंकारों से होता है। परन्तु दण्डी आदि आचार्यों ने अलंकार को काव्य का शोभाकर धर्म माना है।[५१] डॉ० नगेन्द्र इसे काव्यशिल्प का पर्याय मानते हैं।[५२] डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल इस संदर्भ में अभिमत हैंः-''इससे अभिव्यक्ति में स्पष्टता और प्रभविष्णुता उत्पन्न होती है, भाषा का सौन्दर्य विकसित होता है और वक्ता तथा श्रोता-दोनों का ही मनोविनोद भी होता है अथवा मानसिक सुख मिलता है।''[५३] निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अलंकार काव्य भाषा का शोभाधायक तत्त्व है।

अलंकारों का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि भाषा का इतिहास। ऋग्वेद में इनका उद्‌भव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अपनी आन्तरिक भावनाओं का सादृश्य प्रकृति में, और प्राकृतिक सुषमा का सादृश्य जीवन में, उस आदि युग में ही अनुभव कर लिया गया था, जहां से भारतीय साहित्य की गंगा प्रवाहित हुई है। किन्तु 'अलंकार' शब्द का नामकरण आचार्य भरत के युग में हुआ। अलंकारों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गयी, पर मुख्य रूप से इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया गया- शब्दालंकार और अर्थालंकार, जहां ये दोनों हों वहां उभयालंकार और जहाँ अनेक अलंकार एक साथ होकर घुलमिल जाते हैं,

वहां संकर अलंकार होता है। जब अनेक अलंकार एक साथ होकर भी पृथक-पृथक प्रतीत हों तो वहां संसृष्टि अलंकार होता है। इनमें अर्थालंकार का सर्वाधिक महत्त्व है। अर्थालंकार के पुनः अनेक वर्ग हैं- सादृश्यमूलक, वैषम्यमूलक, न्यायमूलक, श्रृंखलाबद्धमूलक आदि। परन्तु इनमें सादृश्यमूलक अर्थालंकार ही मुख्य है, और उनमें भी उपमा और रूपक का विशेष स्थान है। यहाँ पर हम निरालाजी की लम्बी-कविताओं का अलंकार प्रयोग की दृष्टि से अध्ययन करेंगे।

निरालाजी ने अपनी लम्बी कविताओं को भाषा, रस, छन्द, ध्वनि आदि की विस्तृत प्रभावकारी योजना के साथ अलंकारों से भी अलंकृत किया है। निराला अर्थालंकारों में उपमा और रूपक के तथा शब्दालंकारों में अनुप्रास के विशेष प्रेमी हैं। उनकी अलंकार योजना पर प्रकाश डालते समय उक्त अलंकारों को विशेष रूप से चुना गया है, साथ ही कुछ अन्य अर्थालंकारों पर भी विचार किया गया है।

'राम की शक्ति पूजा' लम्बी कविता के आरम्भ में ही कवि ने रूपक और अनुप्रास की अनुपम छटा बिखेरी है:-

"रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर लिखा अमर,
रह गया राम रावण का अपराजेय समर,
आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-छिप्र-कर वेग-प्रखर,
शतशेल सम्वरणशील, नीलनभ गर्ज्जित स्वर।"[५४]

यहाँ ज्योति के पत्र पर अमर गाथा की रूपता स्थापित करते हुए रूपक अलंकार और 'र' तथा 'श' वर्ण की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। 'राम की शक्ति पूजा' में ही सांगरूपक के विराट और भव्य दर्शन होते हैं। भूधर में पार्वती का रूप देखना, चरण प्रान्त में गर्जन करते सिन्धु को सिंह मानना, दस दिशाओं को दस हाथ मानना, विराट रूपक का उत्कृष्ट रूप है:-

"देखा राम ने- सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर-स्कन्ध पर रहा दक्षिण हरि पर,
ज्योतिर्म्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र-सज्जित,

मन्दस्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित।''[५५]

'तुलसीदास' में तुलसी का नारी मोह के कारण हृदय में प्रेम-पुंज का आलोकित होना सुन्दर रूपक व उपमानों के साथ वर्णित है:-

''मृत्तिका एक कर सार-ग्रहण,
खुलते रहते बहु वर्ण, सुमन,
त्यों रत्नावली हार में बँध मन-चमका,
पाकर नयनों की ज्योति प्रखर,
ज्यों रविकर से श्यामल जलधर,
बहुवर्णों के भावों से भरकर दमका।''[५६]

जिस प्रकार मिट्टी से अनेक रंगों के फूल निकलते हैं वैसे ही रत्नावली के मोह से तुलसीदास में नव भाव जन्म ले रहे हैं। सूर्य किरणों से जैसे बादलों की कांति बढ़ती है वैसे रत्नावली के नयनों रूपी ज्योति से तुलसीदास का मन अनेक रंगीन भावनाओं से भरकर दमक उठा है। यहाँ रत्नावली के नयनों से किरणों की ज्याति की रूपता स्थापित की गई है। अतः उपमा और रूपक का सुन्दर उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किया है।

'कुकुरमुत्ता' में निराला ने परम्परागत उपमानों को त्यागकर नये उपमानों का प्रदर्शन किया है। 'कुकुरमुत्ता' के छत्र और डण्ठल को लेकर उन्होंने अनेक प्रत्यक्ष उपमा दी है:-

''सब जगह तू देख ले,
आज का फिर रूप पैराशूट ले,
उलट दे मैं ही जसोदा की मथानी
और भी लम्बी कहानी-
तीर से खींचा धनुष मैं राम का, काम का,
पड़ कंधे पर हूँ हल बलराम का।''[५७]

निराला जी का 'कुकुरमुत्ता' में व्यंग्य प्रधान अन्योक्ति अलंकार जगह-जगह दृष्टव्य हैं-

''अबे सुन वे गुलाब
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,

डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट।''[५८]

'सरोज स्मृति' में भी हमें अन्योक्ति का मौलिक रूप दृष्टिगोचर होता है-

गीते मेरी, तज रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय।''[५९]

आधुनिक हिन्दी कविता में पाश्चात्य अलंकारों की योजना के सम्बन्ध में डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी लिखते हैं, - ''आधुनिक हिन्दी कविता में भारतीय अलंकारों के अतिरिक्त पाश्चात्य अलंकार भी व्यवहृत हुए हैं। उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण मानवीकरण विशेषण-विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यंजना हैं। ये अलंकार भी भावाभिव्यंजन और वस्तु-व्यंजना में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुए हैं।''[६०] निरालाजी की लम्बी कविताओं में इन तीनों अलंकारों का स्वाभाविक तथा भावावेष्टित प्रयोग हुआ है। 'राम की शक्ति पूजा' में जहाँ ध्वन्यार्थ व्यंजना है वहीं 'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता में मानवीकरण का सुन्दर प्रयोग किया है। प्रस्तुत उदाहरण में अन्योक्ति अलंकार के साथ-साथ मानवीकरण का भी सुन्दर प्रयोग है-

''अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो-आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहाया जाड़ा घाम।
शाहों राजों, अमीरों का रहा प्यारा,
इसलिए साधारणों से रहा न्यारा।।''[६१]

यहाँ 'गुलाब' और 'कुकुरमुत्ता' के द्वारा कवि ने अन्य अर्थ की व्यंजना की है जिस कारण यहाँ अन्योक्ति अलंकार है और इनको मानवीकृत करके मानवीकरण अलंकार का प्रस्फुटन किया है।

'राम की शक्ति पूजा' लम्बी कविता उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक एवं अनुप्रास अलंकार से पूर्णतः गढ़ी हुई जान पड़ती है। कहीं-कहीं पर उत्प्रेक्षा और उपमा दोनों अलंकारों का सुन्दर प्रयोग एक साथ किया गया है। उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर उदाहरण देखिए, जब राम की जटा की लटें खुल रही हैं और पीठ पर, बाहों पर, वक्ष पर छितरा रही हैं तो ऐसा लगता है मानो एक ऊँचे दुर्गम पर्वत पर रात्रि का अंधकार एकाएक उतर आया है और इस अंधकार में कहीं दो ताराएँ केवल उद्‌भासित हो रही हों:-

"दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हो कहीं पार।।"[६२]

इस उत्प्रेक्षा में यहाँ राम की वास्तविकता के ऊपर ऐसी साभिप्राय कल्पना उत्प्रेक्षित की गई है जो राम के अचल धैर्य और संशय-दोनों को प्रस्तुत करने के लिए पर्वत और अंधकार का चित्र प्रस्तुत करके इन दोनों के संघात को आकार प्रदान करती है।

विषम मात्रिक छन्दों के संबंध में पं० जगन्नाथ प्रसाद भानु ने अपने 'छंद प्रभाकर' में लिखा है, "ना सम ना पुनि अर्धसम विषम जानिये छंद।"[६३] जो छंद सम मात्रिक चतुष्पदी नहीं हो और जिनमें अर्धसम मात्रिक छंदों का लक्षण भी नहीं मिलता हो उन अनियमित तथा संयुक्त छंदों को विषम छंद कहा जाता है। निराला जी के ऐसे अनेक छंद मिलते हैं जो विषम मात्रिक होते हुए भी सान्त्यानुप्रास भी हैं। इनके सम्बन्ध में निराला जी का वक्तव्य दृष्टव्य है, "इनमें लड़ियाँ असमान हैं, पर अन्त्यानुप्रास है। आधार मात्रिक होने का कारण ये गाई जा सकती हैं, पर संगीत अंग्रेजी ढंग का है, इस गीत को मैं मुक्त गीत कहता हूँ।"[६४] 'राम की शक्ति पूजा' और 'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविताओं में निरालाजी ने अन्त्यानुप्रास अलंकार का बार-बार प्रयोग किया है-

"ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक याद आया उपवन

विदेह का प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का-नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,
काँपते हुए किसलम,-झरते पराग-समुदय,-
गाते खग नव-जीवन-परिचय,-तरू मलय-वलय,-
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय,-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,-
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।''[६५]

यहाँ विद्युत-अच्युत, उपवन-मिलन, सम्भाषण-पतन, समुदय-वलय, स्वीय-तुरीय में अन्त्यानुप्रास का सुन्दर प्रयोग हुआ है। ऐसे भयानक संकट के समय राम के मानस-नेत्रों के सम्मुख पृथ्वी पुत्री कुमारी सीता की छवि सहसा इस प्रकार स्पष्ट हो उठी जैसे घने अन्धकार पूर्ण बादलों के मध्य बिजली चमक उठी हो। उपर्युक्त पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास अलंकार के साथ साथ रूपक और मानवीकरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है क्योंकि कुमारी सीता की छवि को (राम की सीता से प्रथम भेंट जनक जी की पुष्पवाटिका में) घने अंधकार पूर्ण बादलों के मध्य चमक रही बिजली से रूपता स्थापित कर रूपक अलंकार का और मानवीकृत रूप दिखाकर मानवीकरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। कुछ ही पंक्तियों में रूपक, उपमा, मानवीकरण और अन्त्यानुप्रास आदि का संयोग, हिन्दी काव्य जगत में अद्वितीय है।

'राम की शक्ति पूजा' में अलंकारों का प्रयोग पूर्ण सजगता के साथ किया गया है। यहाँ प्रस्तुत पंक्तियों में उत्प्रेक्षा, उपमा, सन्देह और अन्त्यानुप्रास, चार अलंकारों का प्रयोग एक साथ करके अपनी अनूठी शिल्पशक्ति का सुन्दर परिचय दिया है।

''युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु-युगल,
देखा कपि ने, चमके नभ में ज्यों तारा-दल-
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ,-
सोहते मध्य में हीरक-युग या दो कौस्तुभ।''[६६]

पहले चरणों पर ढुलक कर आयी हुई आँसू की दो बूँदों को तारादल के रूप में उत्प्रेक्षित किया गया है। फिर राम के चरणों की सत्ता को नकारते हुए उन्हें श्यामा के चरणों के रूप में देखा गया है जहाँ उपमा अलंकार की निष्पत्ति हुई है और अन्तिम पंक्ति में यह सन्देह व्यक्त किया गया है कि इन चरणों में ये जो दो चीजें झलक रहीं हैं, वे दो हीरे हैं या कौस्तुभ-मणि। युगल और दल, एवम शुभ और कौस्तुभ तुकान्त के साथ अन्त्यानुप्रास अलंकार का सौन्दर्य मुखरित हो रहा है। इस प्रकार कल्पना के आलंकारिक ये तीन स्तर इसीलिए रखे गए हैं ताकि हनुमान के चंचल चित्र का क्षण-क्षण बदलता हुआ आवेग ध्वनित हो सके।

निष्कर्षतः निराला जी की लम्बी-कविताओं में अलंकारों के संबंध में यह कहना आवश्यक है कि वे सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में सहायक बनकर ही आए हैं न कि बोझ बनकर। निराला की लम्बी कविताएँ अलंकार रत्नों की सुन्दर मंजूषाएँ हैं। लम्बी कविताओं में अलंकार भाषा की साधारण अर्थविधायिनी शक्ति को व्यापक प्रभावपूर्ण एवं अधिक प्रेषणीय बनाने में सक्षम होते हैं ओर उनका आधार दृष्टा कवि की अन्तर्दृष्टिमूलक कल्पना है।

निराला की लम्बी कविताएँः बिम्ब योजना

'बिम्ब' अंग्रेजी के 'इमेज' (Image) शब्द का समानार्थी है। इसका अभिप्राय है "मूर्तरूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना, प्रतिच्छायित करना या प्रतिबिम्बित करना"।[६७] डॉ० जयनाथ नलिन का भी ऐसा ही विचार हैः-"अनुभूति और चिन्तन का कोई रूपान्तर नहीं- वे अमूर्त हैं। उनको मूर्त रूप में उपस्थित करना बिम्ब-विधान कहलाता है। बिम्ब का अर्थ है मूर्तिकरण या अदृश्य का दृश्य रूप में प्रस्तुतिकरण।"[६८] अर्थात हम कह सकते हैं कि भाषा की चित्र-शक्ति को सामान्यतया बिम्ब-विधान कहा जाता है। हमारे आलोच्य कवि के काव्य में बिम्बों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

बिम्ब सबसे सरल शब्द है। सरल इस दृष्टि से कि रूपक, प्रतीक, विशेषण आदि में अर्थ की उतनी व्यापकता नहीं है जितनी बिम्ब में दीख पड़ती है। बिम्ब दर्पण में पड़ती हुई

उस छाया की तरह है जिसमें हम अपने चेहरे की रेखाओं से अधिक, उससे परे किसी सत्य को देखते हैं। सबसे सामान्य बिम्ब वह है जो दृश्य होता है। एक उत्तम कोटि का बिम्ब दृश्य वस्तुओं के माध्यम से अन्य ज्ञानेन्द्रियों को भी रसरलुत कर देता है। ऐन्द्रियता बिम्ब का सबसे पहला गुण है। यहां तक कि बौद्धिक स्तर पर निर्मित बिम्ब भी ऐन्द्रिय होते हैं। इसके आधार पर बिम्ब की परिभाषा इस प्रकार बनाई जा सकती है- 'काव्यगत बिम्ब वह शब्दचित्र है जो ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य रूप से समान्वित होता है।'

निराला की लम्बी कविताओं में बिम्ब बहुत भास्वर और स्पष्ट है। उन्होंने प्रकृति और लोकजीवन दोनों के बिम्ब ग्रहण किए हैं। नादप्रधान अथवा संगीत प्रधान बिम्ब 'राम की शक्ति पूजा' में आद्योपान्त देखे जा सकते हैं। इस वर्ग में बिम्बों का ग्रहण छंद के नाद-सौन्दर्य से होता है। यह विचित्र बात है कि दृश्य चित्रों को और अधिक गाढ़ा रंग देने में शब्दों का संगीत भी किसी न किसी रूप में सहायता पहुंचाता है। 'राम की शक्ति पूजा' का तो आरम्भ ही नाद सौन्दर्य से होता है -

''रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर लिखा अमर,
रह गया राम रावण का अपराजेय समर,
आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-छिप्र-कर वेग-प्रखर,
शतशेल सम्वरणशील, नीलनभ गज्जित स्वर,
प्रतिपल परिवर्तित व्यूह, भेद कौशल- समूह
राक्षस विरूद्ध प्रत्यूह क्रुद्ध कपि विषम हूह।।''[६६]

सामान्यतः देखा जाये तो नादानुप्रेरित अर्थ के अतिरिक्त कोई वस्तुगत अर्थ पकड़ में नहीं आयेगा। परन्तु कवि जिस ओजपूर्ण वातावरण की सृष्टि करना चाहता है उसको उपस्थित करने में यह चित्र पूरी तरह समर्थ है। नाद प्रधान चित्रों की सीमा यह है कि उनका उपयोग केवल विराट, अद्भुत वस्तुओं के वर्णन में ही किया जा सकता है।

युद्ध स्थल से लौटते हुए राम का यह बिम्बात्मक चित्र अपने भीतर प्राचीन महाकाव्यों का सा गहन और घनीभूत प्रभाव लिए हुए है -

'दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल

फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।'[७०]

कहीं-कहीं बड़े हल्के-फुल्के संदर्भ में निराला विराट चित्रों की कल्पना कर लेते हैं। इन चित्रों को कहीं से भी जोड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता। यह छायावादी युग की सामान्य विशेषता है किन्तु जिस प्रकार 'निराला' ने इसे प्रस्तुत किया है वह छायावाद में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण स्वच्छन्दतावादी युग में निराला है। उदाहरणस्वरूप 'राम की शक्ति पूजा' का एक अंश प्रस्तुत है-

''ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक याद आया उपवन
विदेह का प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का-नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,
काँपते हुए किसलम,-झरते पराग-समुदय,-
गाते खग नव-जीवन-परिचय,-तरू मलय-वलय।।''[७१]

यहाँ चित्रों की एक क्रमबद्ध श्रंखला है। 'राम' की तत्कालीन मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए कवि ने चित्रों में क्षिप्रता और एक प्रकार का ऐन्द्रिय आवेग सा भर दिया है। प्रत्येक बिंब पूरे अर्थ की पृष्ठभूमि और सजावट की सम्बद्धता में ही अपना अर्थ रखता है। अंधकार, विद्युत, उपवन, किसलय, पराग, खग, तरू-मलय-वलय आदि बहुत से ऐसे बिम्ब हैं जो किसी अन्य संदर्भ में प्रतीक हो सकते थे पर यहां उनका घनिष्ठ सम्बंध वाच्यार्थ से है, व्यंग्यार्थ से नहीं। अतः उनका ग्रहण बिम्ब के रूप में ही होगा किसी अन्य रूप में नहीं।

जिन बिम्बों के द्वारा हिन्दी में अद्वितीय बिम्ब विधायक कहलाए, वे हमें 'तुलसीदास' में मिलते हैं। चित्रकूट जाते समय पावन वन को देखते ही तुलसी के मन में नवप्रकाश का उदय होता है जैसे कोहरे के धूमिल पटल को चीर कर बाल रवि झाँक रहा हो -

"केवल विस्मित मन, चिन्त्य नयन,
परिचित कुछ, भूला ज्यों प्रियजन-
ज्यों दूर दृष्टि की धूमिल-तन तट-रेखा,
हो मध्य तरंगाकुल सागर,
निःशब्द स्वप्नसंस्कारागर,
जल में अस्फुट छवि छायाधर, यों देखा।"[७२]

यह एक चाक्षुण बिम्ब है इसमें मनोवैज्ञानिक संश्लिष्टता को आकार दिया गया है, अतः इसे मनोवैज्ञानिक बिम्ब भी कहा जा सकता है। यहां तरंगों के रूप में संस्कार जाग रहे हैं, विस्मृति का मोटा आवरण होने पर भी थोड़ा-थोड़ा आत्मबोध विद्यमान है। जिस कवि की जितनी सूक्ष्म दृष्टि होती है उसका अनुभव उतना ही विस्तृत एवं व्यापक होता है और उसके और प्रखर बिम्ब के निर्माण में ही निहित होती है। 'तुलसीदास' में तुलसी के अन्दर नारी-मोह के कारण प्रेम पुंज का आलोकित होना सुन्दर बिम्बों के साथ चित्रित है -

''मृत्तिका एक कर सार-ग्रहण,
खुलते रहते बहु वर्ण, सुमन,
त्यों रत्नावली हार में बँध मन-चमका,
पाकर नयनों की ज्योति प्रखर,
ज्यों रविकर से श्यामल जलधर,
बहुवर्णों के भावों से भरकर दमका।''[७३]

जिस प्रकार मिट्टी से अनेक रंगों के फूल निकलते हैं वैसे ही रत्नावली के मोह से तुलसीदास में नव-नव भाव जन्म लेते हैं। सूर्य किरणों से जिस प्रकार बादल की कांति बढ़ती है, वैसे ही रत्नावली के नयनों की ज्योति से तुलसीदास का मन अनेक रंगीन भावनाओं से भर कर चमक रहा है।

'तुलसीदास' निराला की प्रबन्धात्मक लम्बी कविता है। राम की शक्ति पूजा की तरह यह एक संघटित एवं संतुलित कृति है। इसका सम्पूर्ण कथानक एक वृहद बिम्ब कहा जा सकता है। इस लम्बी कविता में आरम्भ से अंत तक अनेक बिम्बों की श्रंखला मिलती है। जड़ वस्तुओं को चैतन्य रूप में देखने की प्रवृत्ति यद्यपि सभी छायावादी कवियों में है फिर

भी निराला इस कार्य में अधिक सफल हैं। एक उदात्त दृश्य-बिम्ब निम्न अवतरण में द्रष्टव्य है -

"देखा, वह नहीं प्रिया, जीवन
नतनयन भवन, विषण्ण आँगन,
आवरण-शून्य वे बिना-वरण मथुरा के
अपहृत-श्री, सुख-स्नेह का सद्म,
निःसुरभि, हंत हेमन्त-पद्म
नैतिक-नीरस, निष्प्रीति, छद्म ज्यों पाते।"

तुलसीदास की पत्नी रत्नावली के मायके चले जाने पर जड़ भवन की जिस विषादमयता, नीरसता तथा निर्जनता को कवि मूर्त करना चाहता है उसे संवेदना के एक गहरे स्तर से उठाता है। नतमयन-भवन, विषण्ण आंगन में की एक विशिष्ट सांस्कृतिक शैली की ओर भी संकेत करता है। इससे बिम्ब में और अधिक उदात्तता एवं भावस्वरता आई है।

सौन्दर्य के विराट चित्र खींचते समय निराला अनुभूति के आवेश एवं बल के कारण रेखाओं में सघनता भर देते हैं। महाकवि ने अत्यन्त कोमल रेखाओं के सहारे कुछ अत्यन्त सफल एवं सौन्दर्य-व्यंजक बिम्बों की अवतारणा की है। इन बिम्बों में यह तथ्य दर्शनीय है कि कवि में कलात्मक संयम रहा है। वे कथ्य का विस्तृत विवरण न देकर सामासिकता, उपचार वक्रता और विशेषणों के समुचित प्रयोग करते हुए दृश्य की अलग-अलग अंग-छटाओं को उभारकर पुनः मूल संवेदना के अनुरूप उसकी समन्वित सम्पूर्णता को प्रतिबिम्बित करते हैं। 'सरोज-स्मृति' में कवि ने इसी प्रकार का पूर्ण बिम्ब देने का प्रयास किया है-

"देखा विवाह आमूल नवल,
तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल।
देखती मुझे तू, हंसी मन्द,
होठों पर बिजली फँसी स्पन्द

उर में भर झूली छवि सुन्दर
प्रिय अशब्द श्रृंगार-मुखर
तू खुली एक उच्छ्वास-संग,
विश्वास-स्तब्ध बंध अंग-अंग,
नत नयनों से आलोक उतर
कांपा अधरों पर थर-थर-थर।"[७४]

निराला ने इस बिम्ब में सर्वप्रथम 'हंसी' को 'मन्द' बताया है तत्पश्चात उसकी उज्ज्वलता को उभारने के लिए 'होंठों में फंसी बिजली' से रूपक को आरोपित किया है। प्रिय की छवि का 'सुन्दर' फिर 'अशब्द-श्रृंगार-मुखर' आदि से संयुक्त कर पूर्णता प्रदान करने की चेष्टा की है। इस प्रकार कवि पहले एक संज्ञा लेता है, उस पर एक रूपक विशेषण रूप में आरोपित करता है। इस तरह बिम्ब परिष्कृति एवं पूर्णता को प्राप्त होता है।

निराला रंगों के जादूगर है 'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता में पर्याप्त वर्ण-वैविध्य प्राप्त है रंगों के सुन्दर प्रयोग से कवि ने इन्द्रधनुष को भी 'फेल' करते हुए नवीन बिम्ब को धरातल दिया है-

"और कितने फूल और फव्वारे कई,
रंग अनेकों-सुर्ख, धानी, चम्पई,
आसमानी, सब्ज, फीरोजी, सफेद,
जर्द, बादामी, बसन्ती, सभी भेद।"[७५]

यहाँ 'नव्वाब' के 'चमन' के फव्वारों के दस रंग बताए गए हैं- 'सूर्ख' (लाल), 'धानी', 'चम्पई', 'आसमानी', 'सब्ज' (हरा), 'फीरोजी', 'सफेद', 'जर्द' (पीला), 'बादामी' एवं 'बसन्ती'। इन रंगों से एक सुन्दर पारदर्शी बिम्ब बनता है। उपवन में झरने बह रहे हैं किन्तु उनमें धरती के इन्द्रधनुषी दस रंग खिले हैं-आकाश का सप्तरंगी इन्द्रधनुष उसके सामने नहीं ठहर सकता'।

'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति', एवं तुलसीदास आदि काव्यों में उच्च कोटि के संश्लिष्ट काव्य-बिम्बों की सृष्टि हुई है। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक बिम्ब प्रस्तुत करना महाप्राण निराला की पुष्ट बिम्ब योजना का प्रमाण है। इस दृष्टि से वे पूरे छायावादी और प्रगतिवादी युग में बेजोड़ हैं। किसी विद्वान ने कहा भी है- "सम्पूर्ण जीवन में विशाल-काव्य-सृष्टि की अपेक्षा एक सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत करना अधिक महत्वपूर्ण है।"

निराला की लम्बी कविताएँः भाषा और संगीतात्मकता

भाषा वह साधन है, जिसके माध्यम से मनुष्य आपस में अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। भाषा को विचारों का वाहन भी कहा गया है। भावों और विचारों की सम्प्रेषणीयता ही उसकी सफलता की कसौटी है। भावनासम्पन्न कवि के लिए भाषा सर्वोपरि है। कवि की अनुभूतियाँ तीव्र होने पर भी यदि भाषा समान न हो तो उसकी अनुभूतियों का कोई मूल्य न होगा।

आधुनिक पाश्चात्य आलोचक भाषा को काव्य का सर्वस्व मानते हैं। उनके अनुसार भाषा से भिन्न दर्शन, विचार भाव आदि का कोई भी अस्तित्व नहीं है। अतः काव्य में भाषा ही सब कुछ है। एलेन टेट के अनुसार -'काव्य का आधार भाव या विचार नहीं भाषा हैं।"[७६] डा० सियाराम तिवारी ने भारतीय आचार्यों के सिद्धान्तों का पुनर्विश्लेषण करके ऐसे तर्क प्रस्तुत किए हैं जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि काव्य भाषा से इतर कुछ भी नहीं है। वे भाषा और काव्य में कारण कार्य संबंध मानते हैं- "भाषा उपादान कारण है, कविता कार्य है। भाषा मृत्तिका है, काव्य उससे निर्मित घट है। जैसे बनाई हुई मिट्टी घड़ा बनती है वैसे ही सामान्य भाषा को एक विशेष आकृति में संरचित किया जाता है, तो वह संरचित भाषा काव्य की संज्ञा पाती है।[७७]

भाषा काव्य का साधन है अथवा साध्य - इस विवाद में पड़ने से विषयान्तर होने का भय रहता है। अतः यहाँ भाषा को उसी रूप में देखना समीचीन होगा जिस रूप में हमारे आलोच्य कवियों ने देखा है। निराला ने विषयानुसार भाषा पर बल देते हुए कहा है-''बड़े-बड़े साहित्यकारों ने प्रकृति के अनुकूल ही भाषा लिखी है। कठिन भावों को व्यक्त

करने में प्रायः भाषा भी कठिन हो गयी है। जो मनुष्य जितना गहरा है, वह भाव तथा भाषा की उतनी ही गंभीरता तक पैठ रखता है और पैठता है। साहित्य में भावों की उच्चता का ही विचार रखना चाहिए। भाषा भावों की अनुगामिनी है।"[७८] लम्बी कविताओं में निराला की भाषा के प्रधानतः निम्नलिखित रूप मिलते हैं -

१. जन सुलभ भाषा (अभिधा की प्रधानता)

२. महाकाव्योचित पांडित्यमयी भाषा

३. दुरूह और दीर्धसामासिक भाषा

४. मिश्रित भाषा

जन सुलभ भाषा अभिधा शब्दशक्ति में स्पष्ट होती है। वह मुक्त और खुली होती है, यहाँ अज्ञात जैसा कुछ नहीं होता। व्यवहारोपयोगी जनभाषा में शब्दों का अर्थ प्रायः सुनिश्चित होता है जबकि विशिष्ट भाषा के शब्द गहरे और विशेष अर्थ को प्रकट करने वाले होते हैं। व्याकरण की दृष्टि से जनभाषा नियमों को सरलता से छोड़ देती है। मुख-सुख के आधार पर वह व्याकरण से दूर प्रचलन या व्यवहार की दिशा में बढ़ती जाती है। दिनकर ने सुस्पष्ट जनभाषा का पक्ष लेते हुए कहा -

"सच्चाई की पहचान कि पानी साफ रहे,
जो भी चाहे ले परख जलाशय के तल को।
गहराई का वे भेद छिपाते हैं केवल
जो जानबूझ गंदला करते अपने जल को।"[७९]

जनसुलभ भाषा में, बनावट, बन्धन ओर चमत्कार प्रदर्शन का भाव नहीं होता। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जनभाषा के प्रबल समर्थक थे। निराला ने भी अपनी लम्बी कविताओं में इसका प्रयोग किया है। अपनी भावनाओं को बिना किसी माध्यम के जनसामान्य तक पहुंचाने के लिए जनसुलभ भाषा का प्रयोग बहुत उपयोगी होता है।

'कुकुरमुत्ता' में भाषा का यह रूप सर्वत्र देखा जा सकता है। शब्द अपने ठेठ के प्रयोग में भी कितना अर्थवान होता है इसके दर्शन 'कुकुरमुत्ता' की हर पंक्ति में होते हैं।

देशज, वर्जित और अकाव्यात्मक शब्दों का अनुपम काव्यात्मक प्रयोग इसमें मिलता है। भाषा को अनपढ़ जनता की बोली के निकट रखने की कोशिश झलकती है -

"एक थे नव्वाब,
फारस के मंगाये थे गुलाब।
बड़ी बाड़ी में लगाये
देशी पौधे भी उगाये
रखे माली कई नौकर
गजनबी का बाग मनहर
लग रहा था।

× × × × ×

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का, तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट।
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रक्खा, सहाया जाडा-घाम।"[८०]

'सरोज-स्मृति' लम्बी-कविता में भी बोलचाल की चलती हुई, सरल-स्वाभाविक भाषा का एक उदाहरण दर्शनीय है, जहां निराला की सासू-माँ उनके द्वितीय विवाह के प्रस्ताव पर बात करती हैं -

"फिर हाथ जोड़ने लगे, कहा,
वे नहीं कर रहे ब्याह, अहा,
है सुधरे हुए बड़े सज्जन।
अच्छे कवि, अच्छे विद्वज्जन
है बड़े नाम उनके। शिक्षित
लड़की भी रूपवती, समुचित

आपको यही होगा कि कहें

हर तरह उन्हें, वर सुखी रहें।"[८१]

महाकाव्योचित भाषा में भावावेग और भावगरिमा की प्रमुखता होती है जिससे उसमें कहीं-कहीं जटिलता भी आ जाती है। परन्तु उसका प्रभाव गहरा होता है। वह भाषा श्रोता या पाठक के मन में गूँजने लगती है। निराला की 'तुलसीदास' लम्बी कविता और 'राम की शक्ति पूजा' के कुछ भाग छोड़कर भाषा का यही रूप दिखाई देता है। इसमें हिन्दी की प्रचलित शब्दावली और तत्सम शब्दों का संतुलित सम्मिश्रण है। इस परिष्कृत एवं सुसंस्कृत भाषा के माध्यम से निराला ने माधुर्य एवं ओजगुण से युक्त कविताएँ की हैं -

"ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत

जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत

देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन

विदेह का, - प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन

नयनों का - नयनों से गोपन - प्रिय सम्भाषण, -

पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन, -

कांपते हुए किसलय, - झरते पराग-समुदय, -

गाते खग नव-जीवन-परिचय, तरू पलय-वलय, -

ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय, -ज्ञात छवि प्रथम स्वीय, -

जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।"[८२]

उपर्युक्त पंक्तियों में युद्ध के भयानक संकट में राम के मानस नेत्रों के सामने सीता की छवि नाच उठती है। वे सीता की माधुर्य युक्त स्मृतियों में खो जाते हैं। उनके मन में सीता-स्मृति यकायक ऐसे जगती है जैसे घने अन्धकार से पूर्ण बादलों के मध्य बिजली चमक उठी हो। युद्धभूमि में विषाद और ओज के साथ माधुर्य गुण को चमत्कारिक ढंग से पैदा कर निराला ने अपनी महाकाव्योचित भाषायी क्षमता का सुन्दर परिचय दिया है।

'तुलसीदास' लम्बी कविता में निराला की भाषा पूर्णतः महाव्योचित गरिमा को बना पाने पर सफल हुई है, जहाँ रत्नावली व्यंजना शब्द-शक्ति के साथ 'तुलसी' को फटकारते

हुए कहती है कि तुम स्वयं को राम का गुण-गायक कहते हो पर तुम राम के नहीं, काम के दास हो, तुम्हें अस्थि-चर्म से इतना प्रेम, यह तुम्हारी कैसी शिक्षा है? कैसा ज्ञान है? महाकाव्योचित व्यंजनों का अदभुत उदाहरण यहाँ निराला ने प्रस्तुत किया है:-

"धिक! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़-चाम।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।"[८३]

शाब्दिक मितव्ययता और अर्थ गौरव की दृष्टि से लम्बी कविताओं में निरालाजी ने बहुलताओं सामासिक शैली का प्रयोग किया है। उनकी समासबहुलता पदावली में नादसौन्दर्यपूर्ण संगीत की छटा अत्यन्त भानपूर्ण है, परन्तु संस्कृतनिष्ठ समास शैली में क्लिष्टता का दोष अवश्य है। जहाँ उन्होंने लम्बे-लम्बे समास रखे हैं, वहाँ भाषा निश्चय ही दुरूहता के दोष की लपेट में आ गई है। 'राम की शक्ति पूजा' से एक उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है:-

"अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर भङ्ग-भाव,
विद्धाङ्ग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रूधिर-स्राव।।"[८४]

वस्तुतः दुरूहता और सरलता का प्रश्न व्यक्ति सापेक्ष है। बिल्कुल अनपढ़ व्यक्ति के लिए जो कविता कठिन है, वही पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिए अति सरल हो सकती है। फिर भी मानना होगा कि 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' साधारण पाठकों के स्तर से ऊपर की चीज है।

कोई भी प्रगतिशील भाषा दूसरी भाषाओं से शब्दों के आदान-प्रदान किए बिना अधिक समय तक जीवित नहीं सह सकती। "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त को मानने वाले निराला ने भी अपनी लम्बी-कविताओं को दीर्घजीवी बनाने के उद्देश्य से विदेशी, तत्सम्, देशज भाषाओं के शब्दों को स्वीकार किया है। उर्दू, फारसी, अंग्रेजी के लोक

प्रचलित शब्दों को अपनी लम्बी कविताओं में समुचित स्थान दिया है। मूलतः निराला का झुकाव तत्सम शब्दों की ओर अधिक है और विदेशी शब्दों की ओर कम। निराला जी की 'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता में देशज और विदेशी शब्दों का आधिक्य है तो 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' में तत्सम (संस्कृतनिष्ठ) शब्दों पर ध्यान दिया है।

''राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर,
उद्धत-लंकापति मर्दित-कवि-दल बल-विस्तर,
अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर भङ्ग-भाव,
विद्धाङ्ग-बद्ध-कोदण्ड-युष्टि-खर-रूधिर-स्राव।।''[८५]

यहाँ सामासिकता काव्यगत अर्थ को सांदर्भिक गम्भीरता के साथ-साथ वह ऊर्जा और शक्ति भी देती है जो तत्सम शब्दावली अपने सांस्कृतिक स्रोतों से प्राप्त करती है।

कुछ स्थलों पर तत्सम शब्दावली की सामासिकता भाषा में सम्प्रेषण की दिशा को अवरूद्ध कर अनावश्यक जटिलता और दुरूहता उपस्थित करती है, यथाः-

''भारत के नभ का प्रभासूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य दिङ्मंडल।''[८६]

यहाँ 'दिङ्मण्डल' के साथ 'तमस्तूर्य' तत्सम शब्द का प्रयोग अर्थ की पकड़ को दुरूह बनाता है।

'कुकुरमुत्ता' छायावादी सुरूचि और अभिजात्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। उस समय के कवि 'कुकुरमुत्ता' के तीखेपन को झेल नहीं सके। रचनाकार मनःस्थिति से प्रेरित होकर रचना करता है। उस समय संभवतया निराला की मनः स्थिति रोमांटिक गम्भीरता के अनुकूल नहीं थी। यही निराला की आधुनिक मान्यताओं के बदलाव का संक्रान्तिकाल था। मिश्रित भाषा व्यंजना का 'कुकुरमुत्ता' सशक्त उदाहरण बनकर सामने आयाः-

''सर सभी का फाँसने वाला हूँ ट्रेप,
टर्की टोपी, दुपहिया या किश्ती-केप।
और जितने, लगा जिनमें स्ट्रा या मेट,

देख, मेरी नक्ल है अँगरेजी हेट।

घूमता हूँ सर चढ़ा,

तू नहीं, मैं ही बड़ा।''[८७]

× × × × ×

''चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर

बहार उसके पीछे जैसे भुक्खड़ फालोवर।

उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर-

आधुनिक पोयेट (Poet)

पीछे बाँदी बचत की सोचती

केपीटलिस्ट क्वेट।[८८]

यहाँ ट्रेप, केप, मेट, हेट, डिक्टेटर, फालोवर, पोयेट आदि अंग्रेजी विदेशी शब्दों का सहारा लेकर कवि ने 'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता का सृजन किया है।

निराला ने संगीत-क्षेत्र में भी क्रान्ति की। उन्होंने देखा कि ब्रजभाषा की परम्परागत संगीत पद्धति खड़ी बोली के अनुकूल नहीं है तो खड़ी बोली को उन्होंने नया संगीत-स्वरूप प्रदान किया। रूढ़ियों, श्रृंखलाओं, बन्धनों एवं जीर्णताओं को तोड़ फेंकने वाले व्यक्तित्व के धनी कवि ने संगीत के प्रति नवीन, मौलिक और प्रभावशाली दृष्टि अपनाई।

निराला की लम्बी-कविताओं की संगीतात्मकता का प्रमुख कारण ध्वन्यर्थ-व्यंजना है जिससे भाष तथा नाद की मैत्री का सुंदर निर्वाह हो पाता है। वस्तु की रूप-गुण-क्रिया को शब्दों द्वारा व्यक्त करने के साथ ही श्रेष्ठ कलाकार उस वस्तु की ध्वनि को भी शब्दों द्वारा व्यंजित करते हैं, भावानुशायी ध्वन्यात्मकता निराला की लम्बी-कविताओं की एक प्रमुख विशेषता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूल रूप से जन कवि होते हुए भी निराला ने सोष्ठव सम्पन्न प्रवाहमयी, दीर्घसामासिक एवं अलंकृत भाषा का प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि महाकाव्य के अनुकूल पांडित्यमयी भाषा भी उनकी पहुँच से बाहर नहीं है।

निराला ने युग-निर्माण की प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। केवल भाषा ही नहीं, निराला ने युग को चेतना, सामर्थ्य तथा गुणात्मक रूप से नूतन परिवेश प्रदान किया है। निराला का महत्त्व उनके युग में जितना विवेच्य नहीं उतना बदलते संदर्भ में है। किसी भी रचनाकार को केवल उसकी रचनाओं की संख्या और आकार के आधार पर मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। भाषा तथा विचारों की मौलिकता, या एक भी पंक्ति यदि नूतन अर्थ और गुणात्मकता प्रदान करने की क्षमता रखती है तो वही रचनाकार की अमरता के लिए पर्याप्त होगी।

*****

संदर्भ सूची

१. डॉ० सविता मोहन - समकालीन कहानीः कथ्य एवं शिल्प (पृ० १३४)

२. डॉ० प्रतिभा कृष्णबल - छायावाद का काव्य शिल्प, (पृ० ७३)

३. सं० डॉ० नगेनद्र - हिन्दी विश्वकोश (भाग-२३), पृष्ठ ५५

४. सं० डॉ० नगेनद्र - मानविकी पारिभाषिक कोशः (साहित्य खण्ड), पृष्ठ ६२

५. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त - साहित्य के शैली सिद्धान्त, पृष्ठ १६

६. डॉ० सत्यदेव चौधरी - भारतीय शैली विज्ञान, पृष्ठ २०

७. डॉ० नगेनद्र - शैली विज्ञान, पृष्ठ १७

८. वही० पृ० १७

९. वही० पृ० १७

१०. वही० पृ० १७

११. वही० पृ० १९

१२. डॉ० सत्यदेव चौधरी - भारतीय शैली विज्ञान, पृष्ठ २०

१३. डॉ० प्रतिभा कृष्णबल - छायावाद का काव्य शिल्प, (पृ० ७३)

१४. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ५८, ५९)

१५. डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव (निराला का काव्य, पृ० १६४)

१६. डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव (निराला का काव्य, पृ० १७८)

१७. 'निराला' - अनामिका (पृ० १६३)

१८. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ३९)

१९. 'निराला' - अनामिका (पृ० १३४)

२०. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ३)

२१. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - अनामिका (पृ० १२९)

२२. डा० धनंजय वर्मा, निराला काव्य और व्यक्तित्त्व, पृ० २०४

२३. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ३)

२४. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ३)

२५. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ४६)

२६. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ५७)

२७. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ५१)

२८. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० १२)

२९. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० १४)

३०. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ३).

३१. 'निराला' - अनामिका (पृ० १५०).

३२. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५०.

३३. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १६०-१६१.

३४. डॉ० कृष्णदेव झारीः युगकवि निराला, पृष्ठ २३८.

३५. डॉ० स्टाडर्डः रोमाण्टिक रिवाइवल (पृ० २२-२३).

३६. डॉ० के०के शर्माः रोमाण्टिक रिवाइवल (पृ० २५-२६).

३७. डॉ० एफ०एच० हेजः रोमाण्टिक रिवाइवल (पृ० २५-२६).

३८. डॉ० के०के० शर्माः रोमाण्टिक रिवाइवल (पृ० ३५-३६).

३९. डॉ० के०के० शर्माः रोमाण्टिक रिवाइवल (पृ० ४१).

४०. डॉ० शम्भूनाथ सिंहः छायावादी युग (पृ० १८).

४१. डॉ० कृष्णदेव झारीः युग कवि निराला (पृ० १५१).

४२. आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयीः नया साहित्य नये प्रश्न (पृ० १५१).

४३. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५९.

४४. 'निराला' - अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १३४.

४५. 'निराला' - अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १३३.

४६. 'निराला' - अनामिका (तुलसीदास) पृ० १९.

४७. 'निराला' - तुलसीदास - (पृ० ३९) भारती भण्डार, इलाहाबाद।

४८. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १६५

४९. डॉ० भागीरथ मिश्रः आलोचना अंक ३३, जून, १९६५ ई०, पृ० १६८.

५०. वामनः काव्यालंकार सूत्र (पृ० ४).

५१. दण्डीः काव्यादर्श (चौखम्बा) पृ० २७ (२/१).

५२. डॉ० नगेन्द्रः रससिद्धान्त, (पृ० ३२२).

५३. डॉ० रामप्रकाश अग्रवालः वाल्मीकि और तुलसी (पृ० ४५२).

५४. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १४८.

५५. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १६४-१६५.

५६. 'निराला' - अनामिका (तुलसीदास) पृ० ३०.

५७. 'निराला' - अनामिका (कुकुरमुत्ता) पृ० ३७.

५८. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ३६).

५९. 'निराला' - अनामिका, पृ० ११७.

६०. डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी- ''आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान'' (पृ० २९३).

६१. 'निराला', कुकुरमुत्ता, पृ० ३६, ४०.

६२. 'निराला', अनामिका (राम की शक्ति पूजा), पृ० १४९.

६३. पं० जगन्नाथ प्रसाद ''भानु'' - छन्द प्रभाकर, पृ० ९३.

६४. 'निराला', प्रबन्ध प्रतिमा, मेरे गीत और कला- पृ० २९९

६५. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५१.

६६. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५२-१५३.

६७. डॉ० हुकुमचन्दः महादेवी का काव्य-सौन्दर्य, (पृ० १२३).

६८. डॉ० जयनाथ नलिनः काव्य-पुरूष निराला, (पृ० १२३).

६९. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १४६.

७०. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १४८.

७१. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५१.

७२. 'निराला' - अनामिका (तुलसीदास) पृ० १६.

७३. 'निराला' - अनामिका (तुलसीदास) पृ० ३०.

७४. 'निराला' - अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १३२.

७५. 'निराला' - अनामिका (कुकुरमुत्ता) पृ० ३८.

७६. डॉ० सियाराम तिवारी - साहित्यशास्त्र और काव्यभाषा, पृ० ११६.

७७. डॉ० सियाराम तिवारी - साहित्यशास्त्र और काव्यभाषा, पृ० १.

७८. 'निराला':- प्रबन्ध-पद्म, पृ० २५.

७९. रामधारी सिंह 'दिनकर' - चक्रवात, पृ० ३४८.

८०. 'निराला' - अनामिका (कुकुरमुत्ता), पृ० ३७, ३९.

८१. 'निराला' - अनामिका (सरोज स्मृति), पृ० १२५.

८२. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा), पृ० १५१.

८३. 'निराला' - तुलसीदास - (पृ० ३९).

८४. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा), पृ० १४८.

८५. 'निराला' - अनामिका (राम की शक्ति पूजा), पृ० १४८.

८६. 'निराला' - तुलसीदास (पृ० ३).

८७. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ४८).

८८. 'निराला' - कुकुरमुत्ता (पृ० ५८).

अध्याय 6

'निराला' की लम्बी कविताओं का अन्य छायावादी लम्बी कविताओं से साम्य तथा वैषम्य

आधुनिक हिन्दी कविता में लम्बी कविता अपने काव्यगत औदात्य, मूल्यगत गरिमा, बिम्बों, विचारों और विवरणों की संतुलित प्रस्तुति तथा पद्धति सम्बन्धी वैशिष्ट्य के कारण विशेष स्थान की अधिकारी है। निरालाजी की लम्बी-कविताएँ अधिकतर सांस्कृतिक वस्तु-विषय और कथ्य प्रस्तुत करती हैं। अक्षय प्रतिभा के धनी निराला की सांस्कृतिक चेतना अनेक वस्तुभूमियों में अभिनव शिल्पसज्जा के साथ अभिव्यक्ति पाती रही हैं।

हिन्दी में लम्बी-कविता के इतिहास की शुरूआत कब से मानी जाय? क्लासिकल रचना विधान की जकड़बन्दी से मुक्त होने की छटपटाहट को कब से रेखांकित किया जाए? कहना दुरूह है। क्या सुमित्रानन्दन पंत की कविता 'परिवर्तन' (कविता संग्रह 'पल्लव' १६२३) से, जयशंकर प्रसाद की कविता 'प्रलय की छाया' (कविता संग्रह 'लहर' १६३३) से, अथवा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'राम की शक्ति पूजा' (कविता संग्रह 'अनामिका' १६३७) से। प्रारम्भ में लम्बी-कविताएँ महाकाव्यात्मक अपेक्षाओं से संबद्ध होकर ('प्रलय की छाया', 'राम की शक्ति पूजा') आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लेकर उदित हुई थीं। हाँ 'परिर्वन' प्रारम्भिक दौर की ऐसी कविता जरूर है जो किसी आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लिए बिना परिवर्तन संबंधी धारणा को आवेशपूर्ण ढंग से बिम्बात्मक रूप में अभिव्यक्त करती है। यह कविता कालक्रम की दृष्टि से नहीं अपने विन्यास की दृष्टि से भी हिन्दी की पहली लम्बी कविता मानी जा सकती है।

'परिवर्तन' कविता जीवन की उस वास्तविकता का प्रगीत है जो निष्ठुर है, जिसका ताण्डव-नर्तन विश्व का करूण विवर्तन है। चित्रमयी लाक्षणिक भाषा तथा रूपकों की गीतिमयता में जीवन, जगत और जीव के आध्यात्मिक स्वरूप की वास्तविकता अभिव्यक्ति पाती है-

''अचिर में चिर का अन्वेषण
विश्व का तत्त्वपूर्ण दर्शन।

× × × × × × ×

"यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरू,
अरे, जग है जग का कंकाल
वृथा रे, ये अरण्य चीत्कार
शांति सुख है उस पार।"[1]

परिवर्तन-सी यथार्थ, वैचिन्र्यपूर्ण, ओजमयी कविता न केवल जीवन की कठोरतम और कटुतम अनुभवों की व्यापक दृष्टि की साक्षी है, प्रत्युत वह प्रबुद्ध मानस की सम्यक संतुलित मनःस्थिति का भी बिंब है।

एक ही लोल लहर की छोर
उभय सुख-दुख, निशि भोर,
इन्हीं से पूर्ण त्रिगुण संसार
सृजन ही है, संहार"[2]

भाषा और भाष का ऐक्य ही 'परिवर्तन' का सौन्दर्य है। छन्दों का परिवर्तन 'परिवर्तन' के भावों को स्वाभाविक प्रवाह देता है। 'राम की शक्ति पूजा' की तरह 'परिवर्तन' की विशेषता मात्र वाणी का ओज और उसका उन्मुक्त विलास ही नहीं है बल्कि विश्व-वेदना की वह करूणतम अनुभूति है, जिसने आदि कवि वाल्मीकि को भी मुखर कर दिया था। 'परिवर्तन' अपने आप में परिपूर्ण है इसमें कवि ने एक गहन विषय को चिंतन और भाव, ज्ञान और विज्ञान के आवरण में जीवंत कर दिया है। यह पंत की दुखानुभूति की वह वाणी है जो मूक नहीं रह पाती। कवि की आंतरिक विह्वलता ही इसके स्वाभाविक प्रस्फुटन का स्रोत है। कवि ने विश्वजनीन विषय को अपनी सशक्त कला से प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय बना दिया है। परिवर्तन में जो सार्वभौम जीवंत तत्त्व मिलता है वह निःसंदेह अनुभूतिजनक है किन्तु वह निजी या व्यक्तिगत जीवन में घटित अनुभूति नहीं है, यह वह प्रेरणा-गर्भित अनुभूति है जिसके बिना श्रेष्ठ सृजन असम्भव है।

प्रसाद की लम्बी कविता 'प्रलय की छाया' भाव और कला दोनों दृष्टियों से उत्तम रचना है। इसमें गुजरात की रानी कमलावती के जीवन का चित्र और अन्तःकरण का विश्लेषण किया

गया है। यहाँ प्रसाद जी ने इतिहास की मूल घटनाओं में परिवर्तन न करते हुए रानी कमला के हृदय के अन्तर्द्वन्द्व को काफी तटस्थता से अंकित किया है। 'प्रलय की छाया' में लय का विधान पूरी कविता के नए-नए अर्थों को झलका देने में समर्थ है। डा० नित्यानंद तिवारी ने लय विधान के इस विशिष्ट स्वरूप की ओर, जिससे यह कविता बड़ी और लम्बी हो गई है, संकेत किया है-

''कई-कई लय की लंबी सांस इस कविता की अनुभूति को पर्त-दर-पर्त उस क्षमता से समृद्ध करने वाली है जो अर्थ को अधिक ऊर्जा सम्पन्न और संश्लिष्ट बनाती है। विरोधी और विषम अनुभवों की तनावपूर्ण ताकतों को एक साथ बाँधकर उनकी परस्पर टकराहट से काव्यार्थ को उभार और संभाल ले जाने का बहुत कुछ दायित्व इस कविता के लय विधान का है। पाठ प्रक्रिया के प्रति सचेत पाठक इस कविता के पहले सम्पर्क में ही (जो लय के साथ ही होता है) अनुभव कर लेता है कि इसमें देवसेना की ''चढ़कर मेरे जीवन रथ पर/प्रलय चल रहा अपने पथ पर', वाली ही पीड़ा छटपटा रही है। उसी पीड़ा, दुर्भाग्य ओर विडम्बना को इस कविता की लय रचती है। वह दो अलग भाव स्थितियों को एक साथ जोड़ती है, तानती है और खास बलाघात एवं तारत्व के आधार पर भाषा का भी गठन करती है।'' [३]

निराला की लम्बी कविता 'राम की शक्ति पूजा' में इस वैशिष्ट्य को मिथकीय संयोजन की उपस्थिति में उभर रही परस्पर गुंफित भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों में देखा जा सकता है पुराकथा का सर्जनात्मक विधान इस कविता में खंडकाव्य या महाकाव्य के रूप में न होकर, लम्बी-कविता के रूप में है। भावनाओं और मनोदशाओं के सानिध्य और टकराव से यह कविता लम्बी हो गई है। चरित्र और परिस्थिति के घात-प्रतिघात, राम के संशय और उद्विग्नता को उभारते हैं। राम की अंतरचेतना से जुड़े प्रसंग (सीता का स्मरण) स्थिति को गहरा देते हैं। कविता की आंतरिक सूत्रबद्धता बनाए रखने में छंद की गति और लय का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

निराला की लम्बी कविताओं के समकक्ष अन्य छायावादी लम्बी कविताअें में दो बातें अपेक्षित, साम्य रूप में जान पड़ती हैं। पहली बात यह कि इन लम्बी कविताओं कें विचार

और संवेग, विवरण और बिम्ब का संतुलन बना हुआ है। ये छायावादी लम्बी कविताएँ बिम्बों, विचारों और विवरणों को प्रस्तुत ही नहीं करतीं बल्कि उन्हें परस्पर सम्बद्ध भी करती हैं, उनमें संतुलन साधती हैं और उसे एक साथ अनेक अर्थों-आशयों से समृद्ध करती हैं। यही वजह है कि लम्बी-कविता केवल बिम्बधर्मी नहीं होती, न ही केवल भावधर्मी। लम्बी कविता में भाव, विचार, बिम्ब और विवरण एक दूसरे से अलग-थलग नहीं होते उनमें गहरा अन्तर्सम्बन्ध रहता है, जो हमें छायावादी लम्बी कविताओं में देखने को मिलता है। हाँ, यह जरूर है कि कभी बिम्ब कविता की धुरी बनकर भावों, विचारों और विवरणों को संयोजित करता है तो कभी विचार कविता के केन्द्र को संचालित करता हुआ भावों, बिम्बों और विवरणों को संगति प्रदान करता है। दूसरी बात यह है कि छायावादी लम्बी कविता की संरचना में तनाव, नाटकीयता और द्वन्द्वात्मकता का विशेष महत्त्व है। परत-दर-परत लिपटे हुए यथार्थ को कार्य-व्यापारों के नाटकीय और द्वन्द्वात्मक विधान द्वारा खोलने की प्रवृत्ति छायावादी लम्बी कविताओं में देखी जा सकती है। लम्बी कविताओं के मर्मज्ञ ज्ञाता डा० नरेन्द्र मोहन के अनुसार - ''यथार्थ के गतिशील रूपों को पकड़ने की क्षमता और सर्जनात्मक तनाव को एक लम्बे अरसे तक बनाए रहने की विशिष्टता इन लम्बी कविताओं की खास विशेषता है।''[4]

हम देखते हैं कि 'परिवर्तन', 'प्रलय की छाया', 'कुकुरमुत्ता', 'राम की शक्ति पूजा' लम्बी कविताओं में सामाजिक यथार्थ को ग्रहण करने की विशेष प्रवृत्ति काफी प्रबल है। केन्द्रीय स्थितियों, समस्याओं और पात्रों को इन कविताओं में इस ढंग से 'अभिव्यक्त' किया गया है कि उनके माध्यम से मानवीय और सामाजिक सरोकार के बिन्दु उभरकर सामने आये हैं। यद्यपि 'राम की शक्ति पूजा' और प्रसाद की 'प्रलय की छाया' आख्यान प्रधान लम्बी कविताएँ हैं, फिर भी 'परिवर्तन' एवं अन्य लम्बी कविताओं में मानवीय और सामाजिक सरोकार के बिन्दुओं को केन्द्र में रखकर काव्य-सृजन किया गया है।

छायावादी लम्बी कविताओं में वैषम्य की दृष्टि से हम पाते हैं कि पंत जी की 'परिवर्तन' लम्बी कविता में दो बातें स्पष्टतः स्वीकार की जा सकती हैं, एक, आत्मगत संवेदना-प्रेम, विरह, अवसाद का चित्रण करने वाला, दूसरा परिवर्तन के विराट बिंब को प्रस्तुत करने वाला।

'परिवर्तन' कविता में आत्मगत संदर्भ वृहत्तर संदर्भ की ओर संकेत तो करता है, पर उस संदर्भ में घुलता और रूपांतरित होता नहीं दिखता। आत्मगत अनुभूति परिवर्तन के विराट बिम्ब और उसकी सक्रिय सत्ता से चेतना के धरातल पर बेशक जुड़ी हुई हो, उसकी संवेदनात्मक और वैचारिक भूमिका में साझीदार नहीं है। अनुभूति और चिन्तन के इस अंतराल से कविता में शिथिलता आई है जिसे इस कविता के रचना विधान में स्पष्टतः देखा जा सकता है। लगता है जैसे यह एक कविता न होकर अलग-अलग कविताओं का समूह है- खास तौर से 'परिवर्तन' के विराट बिम्ब का चित्रण करने वाला अंश जो स्वतन्त्र कविताओं का सा आभास देता है।

बिंब विधान की दृष्टि से भी 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' के बिंब 'परिवर्तन' और 'प्रलय की छाया' में दिए गए बिम्बों की तुलना में अधिक व्यापक और गहराई लिए हुए हैं। प्रसाद जी ने प्रलय की छाया में लम्बी कविता का स्वरूप देने का प्रयास किया है परन्तु 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' में यह पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत अन्य छायावादी कविताओं के, व्यापक धरातल और विस्तृत फलक को लिए हुए है।

'प्रलय की छाया', 'परिवर्तन' और 'राम की शक्ति पूजा' उस दौर की कविताएँ हैं जब प्रबन्धात्मक रचना विधान को विशेष सम्मान प्राप्त था और उसके महत्त्व तथा प्रासंगिकता के बारे में किसी को सन्देह नहीं था। ये तीनों लम्बी कविताएँ उन कवियों द्वारा रचित हैं जो छायावादी कविता के शीर्षस्थ कवि हैं। इन कविताओं की रचना के दौरान ये कवि, निश्चय ही अपने रचनात्मक अभ्यासों और रचनाशील मानसिकता से जूझे होंगे और उन्हें अपने अभ्यस्त प्रगीतात्मक रूपविधान की सीमाओं से बाहर आने या ऊपर उठने के लिए रचनात्मक तौर पर संघर्षरत होना पड़ा होगा।

निराला जी की लम्बी कविताओं में उदात्तता का तत्त्व वाच्य अथवा व्यंग्य के रूप में अनिवार्यतः विद्यमान है। ''कुकुरमुत्ता'' लम्बी कविता में प्रत्यक्षतः उदात्तता का 'एन्टीक्लामेक्स' भासित होता है परन्तु उनका प्रेरक मूल विचार निश्चय ही उदात्त है। 'सरोज-स्मृति' आत्मसम्बद्ध वर्ग की लम्बी रचना है जिसमें कवि ने व्यक्तिगत जीवन की करूणा और विडम्बना को अभिव्यक्ति दी है। 'सरोज-स्मृति' में निराला जी का आत्मनिर्वासन विस्यमकारी

है। वस्तुभूमि के रूप में पुत्री के देहावसान का मर्मान्तक प्रसंग होते हुए भी इस लम्बी कविता में कवि, जीवन, सौन्दर्य और समाज के प्रति गहन प्रतिबद्धता का अनुभव कराता रहा है, जो लम्बी-कविता-जगत में बेजोड़ और अद्वितीय उदाहरण है। लम्बी कविताओं के माध्यम से छायावादी युग और समस्त हिन्दी काव्य-जगत को निराला जी की देन अनुपमेय कही जा सकती है।

मुक्त छंद के प्रवर्तक और प्रयोक्ता के रूप में भी निराला और उनकी लम्बी-कविताओं का विशिष्ट महत्त्व है। अभिव्यक्ति को पूर्णतर बनाने के लिए छायावादी कवियों ने छन्द के बन्धन से मुक्ति की आवश्यकता को अनुभव किया था किन्तु उसे चरितार्थ निराला ही कर सके, और लम्बी-कविताओं के सृजन में मुक्त छंद का सर्वप्रथम सफल प्रयोग करने वाले कवि निराला हैं। प्रसाद ने 'प्रलय की छाया', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' काफी बाद में लिखी हैं और पन्त ने तो 'छन्द के बन्ध' खुल जाने की उल्लसित घोषणा तब की जब निराला की लम्बी कविताओं एवम् अन्य कविताओं के माध्यम से मुक्त छन्द हिन्दी कविता की विशिष्ट अभिव्यंजना के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था।

छायावादी लम्बी-कविताओं का आद्योपान्त अध्ययन करने के बाद अंततोगत्वा हम कह सकते हैं कि निराला जी अपनी प्रातिनिधिक लम्बी कविताओं में लम्बी-कविताओं के रचना विधान के सशक्त प्रतिमान प्रस्तुत करते रहे हैं। 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता' एवम् 'सरोज स्मृति' उनके इस वैशिष्ट्य का उज्ज्वलतम निदर्शन हैं। अभिव्यंजना को अधिक समर्थ एवं सक्षम बनाने के लिए निराला जी ने लक्षणा एवं व्यंजना के माध्यम से नूतन प्रतीक-विधानों की रचना की। लम्बी कविताओं में निराला जैसा उत्कृष्ट बिम्ब-निर्माण समस्त छायावादी युग में अद्वितीय है।

*****

संदर्भ सूची

१. सुमित्रानन्दन पंतः पल्लव (परिवर्तन).

२. सुमित्रानन्दन पंतः पल्लव (परिवर्तन).

३. डा० नरेन्द्र मोहनः लम्बी कविताओं का रचना विधान (डा० नित्यानन्द तिवारी का लेख) पृ० ४०.४१.

४. डा० नरेन्द्र मोहनः लम्बी कविताओं का रचना विधान (डा० नित्यानन्द तिवारी का लेख) पृ० १०.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) आधार ग्रन्थ

1. अनामिका : भारती भण्डार, प्रयाग, 1968 ई0
2. कुकुरमुत्ता : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969 ई0
3. गीतिका : भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1972 ई0
4. तुलसीदास : भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1964 ई0
5. राग विराग : सं0 रामविलास शर्मा लोक भारती प्रकाशन, 1974 ई0

(ख) सहायक ग्रन्थ

1. आचार्य शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं0 2029 वि0
2. डा0 श्रीवास्तव जगदीश प्रसाद : निराला का काव्य, पुस्तक संस्थान, कानपुर 1997 ई0
3. डा पी0 जयरामन : महाकवि सुब्रमण्य 'भारती' एवं महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1966 ई0
4. डा0 झारी, कृष्णदेव : युग कवि निराला, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1969 ई0
5. डा0 नीहार, बुद्धसेन : विश्व कवि निराला, रीगल बुक डिपो, दिल्ली, 1975 ई0
6. डा0 वाजपेयी, नन्ददुलारे : कवि निराला : वाणी वितान प्रकाशन ब्रहम्नाल, वाराणसी, 1956 ई0
7. डा0 सिंह, बच्चन : क्रान्तिकारी कावे निराला, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, 196 ई0
8. डा0 सिंह, नामवर : छायावाद, राजकमल प्रकाशक प्रा0 लि0, दिल्ली, 1968 ई0
9. डा0 नलिन, जयनाथ : काव्य पुरूष निराला, आलोक प्रकाशन, कुरूक्षेत्र, 1970 ई0

10. डा0 श्रीवास्तव, कुमारी शान्ति : छायावादी काव्य और निराला, ग्रन्थम, कानपुर, 1996 ई0

11. डा0 शर्मा, रामविलास : निराला, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0, आगरा 1971 ई0

12. डा0 शर्मा, रामविलास : निरालः की साहित्य साधना, भाग एक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971 ई0

13. डा0 शर्मा, रामविलास : निराला की साहित्य साधना, भाग दो, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972 ई0

14. डा0 शर्मा, रामविलास : निराला की साहित्य साधना, भाग तीन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1976 ई0

15. डा0 शर्मा, धनंजय : निराला काव्य पुनर्मूल्यांकन, विधा प्रकाशन मन्दिर, दरियागंज, दिल्ली, 1973 ई0

16. डा0 शर्मा, उपेन्द्र कुमार : निराला और नजरूल, भवानी शंकर प्रकाशन, लोकमान्य स्ट्रीट, भिवानी, 1988

17. डा0यादव, भगवान देव : निराला काव्य का वस्तु तत्त्व, सहित्य रत्नालय, 37/50, गिलिस बाजार, कानपुर, 1979 ई0

18. डा0 मेहरोत्रा, बलदेव प्रसाद : कथाशिल्पी–निराला, लोक भारती प्रकाशन 15–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–1, जून 1984 ई0

19. डा0 शुक्ल, शकुन्तला : निराला की काव्य भाषा, वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन – 1980

20. डा0 मोहन, सविता : समकालीन कहानी : कथ्य एवं शिल्पु ग्रन्थायन, अलीगढ़ 1990

21. डा0 कृष्णबल, प्रतिभा : छायावाद का काव्य शिल्प, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1972 ई0

22. डा0 चन्द्रगुप्त, गणपति : साहित्य के शैली सिद्धान्त, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1971

23. डा0 चौधरी, सत्यदेव : भारतीय शैली विज्ञान, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1983

24. डा0 नगेन्द्र : शैली विज्ञान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1976

25. डा0 मिश्र, शिवकुमार : नया हिन्दी काव्य, अनुसंधान प्रकाशन कानपुर, 1962, ई0

26. डा0 भटनागर, रामरतन : निराला और नवजागरण, साथी प्रकाशन, सागर, 1965 ई0

27. डा0 टण्डन, प्रेमनारायण : निरालाः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1996

28. डा0 मोहन, नरेन्द्र : विचार और लहू के बीच, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 1982 ई0

29. डा0 सिंह, अजब : आधुनिक काव्य की स्वछन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1975 ई0

30. डा0 शुक्ल, केसरी नारायण : आधुनिक काव्यधारा नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, 1969 ई0

31. डा0 वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर : आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद इलाहाबाद यूनीवर्सिटी

32. डा0 मिश्र, भगीरथ : निराला काव्य का अध्ययन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1973 ई0

33. डा0 त्रिपाठी, राममूर्ति : रहस्यवाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966 ई0

34. डा0 शर्मा, राममूर्ति : युगकवि निराला, साहित्य निकेतन, कानपुर, 1970 ई0

35. डा0 शर्मा, कृष्णकान्त : छायावादी काव्य के बिम्ब–विधान, लोकवाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1977

36. डा मुदीराज, राशि : छायावाद का समाजशास्त्र, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988

37. डा0 भारती, धर्मवीर : सात गीत वर्ष, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी, 1959

38. श्री सिंह, दूधनाथ : निराला : आत्महन्ता आस्था, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1974 ई0

39. श्री मानव, विश्वम्भर : काव्य का देवता : निराला, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1964 ई0

40. श्री शर्मा, राजनाथ : निराला, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1974 ई0

41. श्री पाण्डेय, सुधाकर : निराला : साहित्य सन्दर्भ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग शक 1894

42. श्री मेघ, रमेश कुन्तल : आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली, 1969 ई0

43. श्री दरगन, रवीन्द्र नाथ : छायावादी काव्य की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1973 ई0

44. श्री सैनी, रामकुमार : साहित्य स्रष्टा निराला, पीपुल्स लिटरेसी 519, मटिया महल, दिल्ली, 110006, 1981 ई0

45. श्री दीक्षित, सूर्यप्रसाद : निराला की आत्मकथा, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, 1970 ई0

46. श्री मोहन, नरेन्द्र : समकालीन कविता के बारे में, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1994 ई0

47. श्री मोहन, नरेन्द : लम्बी कविताओं का रचना विधान, मेकमिलन, नई दिल्ली, 1977

48. श्री मोहन, नरेन्द : आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1972

49. श्री वास्तव, परमानन्द श्री : नई कविता का परिप्रेक्ष्य नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968

50. श्री "मुक्तिबोध" गजानन माधव : नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1971

51. श्री सिंह, अजब : नव–स्वच्छन्दतावाद, वाराणासी विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1987

52. श्री शर्मा, वीणा : निराला की काव्य साधना, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली, 1965

53. श्री मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद : रस–मिमांसा प्रचारिणी सभा, प्रथम संस्करण

54. श्री सिंह, केदारनाथ : आधुनिक कविता में विम्ब विधान भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण, 1971

55. श्री मोहन, नरेन्द तथा महीप सिंह (संपादक) : विचार कविता की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली 1973

56. श्री शर्मा, राजकिशोर : निराला : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, उदयाचल प्रकाशन, पटना, 1982 ई0

57. श्री प्रसाद, रत्न शंकर : प्रसाद ग्रन्थावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985

58. महाकवि तुलसीदास : रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2025 वि0

59. संपा0 डा0 नगेन्द्र : हिन्दी विश्वकोश (भाग–23) बी–आर0 पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली, 1986

60. संपा0 डा0 नगेन्द्र : मानविकी पारिभाषिक कोशः (साहित्य खण्ड)

61. संपा0 ओंकार शरद : निराला ग्रन्थावली, भाग एक न्यू बिल्डिंग, अमीनाबाद, लखनऊ, 1973 ई0

62. संपा0 ओंकार शरद : निराला ग्रन्थावली, भाग दो न्यू बिल्डिंग, अमीनाबाद, लखनऊ, 1973 ई0

63. संपा0 नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली, भाग दो, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 1980

64. संपा0 तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद : रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985

65. रेखा खरे : निराला की कविताएँ और काव्यभाषा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000

66. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, : राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 1979